निर्ग्रन्थ भजनावली

संग्रहकर्त्ता

श्रीमज्जैनाचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज सा० के सुशिष्य
स्व० मुनिश्री श्रीचन्दजी महाराज

सम्पादक

~~गजसिंह राठौड़~~
प्रेमराज बोगावत

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर – ३०२००३

द्वितीय सस्करण . ११०० (परिवर्तित एव परिवर्द्धित)
तृतीय सस्करण २०००

विक्रम २०४१
सन् १९८४

मूल्य १५ रुपये

मुद्रक
ऑल इण्डिया प्रेस
पाण्डिचेरी

सम्पादकीय

अनन्त काल से ससार सागर मे गोते खाता पग-पग पर समस्या व समाधान के चक्र मे पिसता मनुष्य बराबर विचार करता आ रहा है कि उसके इस मनुज देह धारण करने का वास्तव मे क्या प्रयोजन है और इसका समाधान भी उसे मुख्य रूप से दो प्रकार का मिलता आ रहा है।

एक दार्शनिक ने कहा कि खाओ, पीओ और मौज करो (यावज्जीवेत् सुख जीवेत्, ऋण कृत्वा घृत पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत)। इसके पक्ष मे इतनी युक्तिया प्रयुक्तिया दी गई कि इस देश के मनीषियो को इसे भी एक दर्शन कहकर पुकारना पडा। यही समाधान कुछ विकृत रूप मे आज पाश्चात्य सस्कृति प्रमुख रूप से दे रही है और इसीसे लुभायमान होकर आज इस निवृत्तिमूलक-सस्कृति-प्रधान देश का युवक-वर्ग भी उक्त भोग-विलास-प्रधान सस्कृति मे आकठ डूबता जा रहा है।

पर यह समाधान भारतीय आत्मतत्ववेत्ताओ, मनीपियो एव आप्त पुरुषो को कभी मान्य नही हुआ। उन्होने स्पष्ट एव निर्विवाद शब्दो मे लगातार इसका यही समाधान दिया कि—'पुव्वकम्मक्खट्ठाए इम देह समुद्धरे,, (पूर्व कर्मक्षयार्थ इम देह समुद्धरेत्) अर्थात् पूर्व जन्मो के उपार्जित कर्मो को क्षय करने के लिये इस देह को मनुज धारण करे। मानव देह धारण का यही एक प्रयोजन उन्हे मान्य है। अन्य सब प्रयोजन उनकी दृष्टि मे व्यर्थ है।

जिस तरह से धरती पर पाप-पुण्य, सत्कर्म-दुष्कर्म, सद्-असद् अनादि काल से विद्यमान है वैसे ही दो रूपो मे यह समाधान भी विद्यमान है। भारतीय दर्शन को, जिसमे जैन दर्शन का भी बहुत बडा योगदान है, यह दूसरा समाधान ही स्वीकार्य है।

मुमुक्षुजन के समक्ष पुन प्रश्न उठता है कि पूर्व जन्मो मे सचित कर्मो को कैसे क्षय किया जाय और कैसे यह ससार सागर पार किया जाय।

बहुत थोडे और नपे तुले शब्दो मे इसका भी समाधान इस देश के वीतराग आप्त पुरुषो ने दिया है —

> जम्मरणमरणजलोघ दुक्खयरकिलेसगोगवीचीय।
> इय ससार समुद्द तरति चउरगणावाए॥

अर्थात् यह ससार समुद्र जन्म-मरण रूप जल प्रवाह वाला, दुःख क्लेष एव शोक रूपी तरगों वाला है। इसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यग्तप रूप चतुरग नाव द्वारा मुमुक्षुजन पार करते है।

यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप कैसे प्राप्त किया जाय इसके अनेकानेक मार्ग सफल साधको ने बताये है। कुछ लम्बे, कुछ छोटे, कुछ सरल, कुछ दुरूह। सामान्यजनो के लिये प्रभु महावीर से शिष्यो ने पूछा कि भगवन्! उनके लिये सबसे सुगम मार्ग कौनसा है? प्रभु ने बडा सुन्दर समाधान दिया कि अगर सामान्यजन की सामर्थ्य नही है उग्र और छोटा मार्ग पकडने की तो वे प्रभु भजन स्तवन कीर्त्तन मे अपने को लगाए। शिष्यो ने फिर पूछा कि भगवन्! इसका क्या फल होगा। प्रभु ने इसका भी सीधा-सा सक्षिप्त उत्तर दे दिया —

> "थव थुई मगलेण नाण दसण चरित्त वोहिलाभ जणयइ
> नाण दसण चरित्त वोहि लाभ सम्पण्णे य ण जीवे
> अतकिरिय कप्पविमाणोववत्तय आराहण आराहेइ।"

अर्थात् प्रभु भजन स्तवन स्तुति मगल आदि करने से ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधिलाभ की प्राप्ति होती है। ऐसा बोधिलब्ध जीव या तो उसी भव मे मोक्ष पाता है या कल्प विमान मे उत्पन्न होकर आराधक होता है और थोडे भवों मे ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

साधारण मे साधारण मुमुक्षु भी इस लक्ष्य को प्राप्त कर सके इस निमित्त प्रभु भजन स्तवन, स्तुति मंगल एव स्वाध्याय योग्य शास्त्रो की कुछ सरल गाथाओ का सग्रह इस "निर्ग्रन्थ भजनावली" के माध्यम से प्रस्तुत

करते हुए हमे अत्यन्त हर्ष हो रहो है। साधको की रुचि को और सुझावो को ध्यान मे रखकर इस सस्करण मे काफी परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किया गया है। अनेको प्राकृत और सस्कृत भाषा के पाठो का हिन्दी अनुवाद देकर सामान्यजनों के लिये इसे बोधगम्य बनाया गया है।

आशा है जिज्ञासु साधकवृन्द इन आगमपाठो को एव अन्य अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल स्तवनो और स्तोत्रो को यथा सम्भव कठस्थ करके शुद्ध अन्त करण पूर्वक इनका शुद्ध उच्चारण एव उदात्त स्वर मे एकाग्रचित्त होकर पठन-पाठन एव मनन करेगे तो निश्चय ही वे एक अनुपम आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति एव बोधिलाभ प्राप्त करेगे।

गजसिंह राठौड
प्रेमराज बोगावत

बोधिरत्नम्
सी ११, मोती मार्ग,
बापूनगर, जयपुर–३०२००४
फोन ६१९२६

प्रकाशकीय

वैसे तो जैन जगत् के आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रभु भजन स्तवन स्तुति मगल आदि के लिये अनेको प्रकाशन विभिन्न सस्थानो द्वारा प्रचलित हुए हैं एव दिनो दिन हो रहे हैं। इनमे कई पुस्तकाकार है, कई गुटका के आकार मे हैं। सवो की अपनी-अपनी विशेषताए है।

इन सव प्रकाशनो को देखते हुए मण्डल की यह इच्छा हु कि कोई ऐसा प्रकाशन भी किया जाय जो वहुत वडा भी न हो पर उसमे स्वाध्याय के निमित्त कुछ शास्त्रीय सामग्री भी सम्मिलित हो, जो भी महत्त्वपूर्ण प्राकृत एव सस्कृत के स्तोत्र एव स्तुति पाठादि है उनका सरल हिन्दी अनुवाद भी साथ मे हो ताकि अधिमख्य साधक, जो सस्कृत प्राकृत भाषा के जानकार नही है, वे भी उन पाठो का अर्थ समझ जाए एव जीवन की अन्तिम समाधि क्रिया आदि से सम्वन्धित अधिकारी स्तर की जानकारी भी मुमुक्षुओ को आसानी से उपलब्ध हो। इस दिशा मे पूज्य गुरुदेव श्रीमज्जैनाचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज साहव के तपोनिष्ठ सुयोग्य सन्त श्री श्रीचन्दजी महाराज सा० की रुचि ने हमारा मार्गदर्शन किया एव स्थानकवासी जैन परम्परा के जाने माने ऐतिहासज्ञ विद्वज्जन एव सस्कृत-प्राकृत भाषा के विशेषज्ञ सर्वश्री गर्जासिहजी राठौड एव प्रेमराजजी वोगावत का सहयोग भी हमे अनायास मिल गया। जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत "निर्ग्रन्थ भजनावली" कुछ वर्ष पूर्व पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करने मे हम समर्थ हुए। जैन जगत् के आध्यात्मिक क्षेत्र मे हमारे इस प्रकाशन का आशा से अधिक यथेष्ट स्वागत हुआ। परि-णामस्वरूप अल्प समय मे ठी यह तृतीया सम्मुख प्रस्तुत करने मे हमे हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशा है साधक वृन्द इसका भी उसी उत्साह से स्वागत करेगे एव इसका पूरा-पूरा लाभ उठाएगे।

उमरावमल ढड्ढा
अध्यक्ष

टीकमचंद हीरावत
मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

तपोनिष्ठ श्री श्रीचन्दजी म.
का जीवन-परिचय

निर्ग्रन्थ भजनावली के सग्रहकर्ता तपोधनी भजनप्रेमी मुनिश्री श्रीचन्दजी म की अनुपस्थिति मे इसका तृतीय सस्करण प्रकाशित हो रहा है, अत यहाँ मुनिश्री का सक्षिप्त जीवन-परिचय की झाकी सामयिक होने से प्रस्तुत की जा रही है।

इनका जन्म तमिलनाडु प्रदेश के कावेरीपट्टणम् ग्राम मे हुआ था। इनके माता-पिता का नाम श्रीमती राजमम्मा देवी और श्री वैकटस्वामी नायडू था। वाल्यावस्था मे किसी कारण से वे तमिलनाडु से चलकर उत्तर भारत का प्रवास करते हुए भोपालगढ (जिला जोधपुर) के ठाकुर साहव के यहाँ पहुचे। सयोग से उस समय भोपालगढ मे विराजमान प्रात स्मरणीय वाल-व्रह्मचारी आचार्यप्रवर श्री हस्तिमलजी म सा के दर्शन एव उपदेश श्रवण का लाभ इन्हे मिला। यही से इनकी जीवन-दशा मे परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ मे ही सेवारत रहते हुए एव ज्ञानोपार्जन करते हुए वैराग्य की ओर उन्मुख हुए। पूज्य गुरुदेव के सामीप्य से इनमे यह प्रबल अभिलाषा हुई कि "मै भी मुक्तिमार्ग का पथिक वनू।" फलस्वरूप वैराग्य वासित मन होने से इन्होने कठोर साध्वाचार की शिक्षा आचार्यदेव से ग्रहण करनी प्रारभ की। भाषा-वैभिन्न्य और पूर्वाभ्यास न होने पर भी इन्होने सकल्पबल, प्रवल पुरुषार्थ और सतत साधना के कारण मन्दगति होने पर भी अच्छा ज्ञानाभ्यास किया।

दीक्षा ग्रहण की अभिलाषा सफल हो तत्पूर्व ही इनके पिता श्री वैकटस्वामी इनको वलपूर्वक मद्रास ले गये और इन्हे एक गुफा मे वद कर दिया। किन्तु एक दिन अवसर देख आप वहा से निकल गये और सीधे

गुरु-चरणो मे आ पहुंचे। इनका उत्कट वैराग्य और आचारनिष्ठा देखकर वि सं २०१६ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको जयपुर नगर मे पूज्य श्री हस्तिमलजी म सा ने इनको भागवती दीक्षा प्रदान कर अपना शिष्य घोषित किया।

दीक्षानन्तर आप ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साधना मे संलग्न हो गये। तपस्या के प्रति उत्कट प्रेम होने से आपने पाच-पाच उपवास (पचोला) की निरन्तर उग्र तपस्या करते हुए १८ वर्ष तक बैठे-बैठे ही निद्रा ली। इसी घोर तप एव साधना के कारण आप तपस्वी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तपस्वी श्रीचन्दजी म जहाँ-जहाँ भी पधारे वहाँ-वहाँ समाज मे आपने अपने त्याग एव साधनामय जीवन की विशिष्ट छाप अकित की। पूज्य आचार्यश्री के स्वाध्याय-सदेश को आपने राजस्थान के पूर्वी संभाग के ग्राम-ग्राम मे पहुचाने का और जनता को स्वाध्याय प्रेमी बनाने का प्रबल एव अथाक प्रयास किया। अपनी जन्मभूमि की जनता को भी धर्मोन्मुख करने की भावना से आपने सन् १९८० का चातुर्मास आचार्यश्री की छत्रछाया मे मद्रास मे किया। इसी चातुर्मास मे आपको शारीरिक अस्वस्थता ने अपने चगुल मे जकड लिया। विविध उपचार करने पर भी आप पूर्णत स्वास्थ्य लाभ प्राप्त नही कर सके। मद्रास चातुर्मास के पश्चात् आप गुरुदेव के साथ रायचूर एव जलगाव का चातुर्मास पूर्ण कर इन्दोर पधारे।

इन्दोर मे स्थिरता करते हुए आप अधिक अस्वस्थ हो गये और १३ जनवरी १९८३ को सेवाभावी चिकित्सको के अनुरोध पर उपचार हेतु आपको चिकित्सालय (अस्पताल) मे भर्ती भी करवाया और उपचार प्रारभ किये गये किन्तु आयुष्य की रेखा को कोई परिवर्तित नही कर सकता। फलत रुग्णता अधिक बढती गई। १६ जनवरी की रात्रि को ८ बजे आपने श्री शीतल मुनिजी से समाधि-मरण हेतु संथारा ग्रहण करवाने का अनुरोध किया। इसी रात्रि मे आपने १० ३० पर गुरुवर्य की अनुमति से आत्मालोचन हेतु स्वेच्छा से सस्तारक प्रत्याख्यान ग्रहण किया। असीम वेदना होते हुए भी आत्मरमण मे तल्लीन होते हुए, मरण-समाधि एव जिनेन्द्र भजनो को सुनते हुए अन्त मे १७ जनवरी १९८३ तदनुसार पौष शुक्ला तृतीया वि. स २०३९

सोमवार को प्रात पू ३० पर आपनि नश्वर देह का त्याग कर समाधि-मरण को प्राप्त किया।

आप प्रकृति से भजनानन्दी थे। जिनेन्द्र देव के गुणो से परिपूर्ण स्तोत्र, स्तवन एव भजनो के प्रति आपका विशेष आकर्षण था। भजन गाते-गाते आप भावविमोर हो जाते थे।

आपके द्वारा सकलित प्रस्तुत पुस्तक "निर्ग्रन्थ-भजनावली" के तृतीय सस्करण के प्रकाशन के समय तपस्वी मुनि श्री श्रीचन्दजी म को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ

प्राकृत

ॐ

मंगलसूत्र

(१)

१. णमो अरिहंताण । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

अर्हन्तों को नमस्कार । सिद्धों को नमस्कार । आचार्यों को नमस्कार । उपाध्यायों को नमस्कार । लोकवर्ती सब साधुओं को नमस्कार ।

२. एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।

यह पंच नमस्कार मन्त्र सब पापों का नाश करने वाला है और समस्त मंगलों में प्रथम मंगल है ।

३. चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

४. चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

५. चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि । सिद्धे सरणं पव्वज्जामि । साहू सरणं पव्वज्जामि । केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ

दशवैकालिक सूत्र

(२)

प्रथम–अध्ययन

१. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।

२. जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।

३. एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ।।

४. वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ।।

५. महुगार समा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो–त्ति बेमि ।

द्वितीय–अध्ययन

१. कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ ।।

२. वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से 'चाइ' त्ति वुच्चइ ।।

ॐ

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

(श्रुतकेवली श्री शय्यभव स्वामि विरचित)

दशवैकालिक सूत्र

(हिन्दी भावार्थ)

१. धर्म ही उत्कृष्ट मगल है, अहिंसा–संयम–तपोमय जो ।
देव भी उसको नमन करते धर्म मे जिसका सदा मन हो ।।

२. जैसे तरुवर के पुष्पो से भ्रमर रस पी जाता है ।
पुष्पो को पीड़ा नही देता, स्वयं तृप्त हो लेता है ।।

३. इसी तरह ये श्रमण कहाते, जो लोक मे हैं साधु सुगुण ।
पुष्पो से जैसे भ्रमर रस लेते, वैसे परदत्त अन्न वे करते मार्गण ।।

४. हम अपनाएंगे वृत्ति वही, जिसमे न किसी को हो पीडा ।
सहज बनाये भोजन मे, मधुकर सम करते हैं क्रीड़ा ।।

५. मधुकर सम प्रबुद्ध बुद्ध, आश्रय त्यागी जो होते है ।
नाना विध पिण्डों मे रत रह, शात दांत साधु वे कहलाते है ।।
—यह मै कहता हू ।

१. वह श्रमण धर्म कैसे पाले, जो काम त्याग नही करता है ।
पद पद पर पाता है विषाद, सकल्पो के वश जो रहता है ।।

२. जो वस्त्र गंध और आभूषण, प्रमदा अरु शयन आसन ।
परवश हो भोग नही सकता, 'त्यागी' न उसे कहते है जिन ।।

३. जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु 'चाइ' त्ति वुच्चइ ।।

४. समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नोवि अहंपि तीसे इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।

५. आयावयाही चय सोउमल्लं, कामेकमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ।।

६. पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ।।

७. धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।

८. अहं च भोगरायस्स, तं चासि अंधगवह्णिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ।।

९. जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धोव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ।।

१०. तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ।।

११. एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तमो–त्ति बेमि ।

तृतीय–अध्ययन

१. संजमे सुट्ठिअप्पाणं विप्पमुक्काण ताइणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गंथाणं महेसिणं ।।

३. पर उन कान्त प्रिय भोगो को, पाकर भी जो ठुकरा देता ।
स्व अधीन भोग का त्याग करे, त्यागी जग मे वही कहलाता ॥

४. समतापूर्वक विचरण करते, यदि चित्त श्रमण का विचलित हो ।
ना वह मेरी, ना मै उसका, यो सोच राग से उपरत हो ॥

५. कोमलता तज, कर आतापन, छोड़ काम, होगा दुख दूर ।
काटो द्वेष, राग को तज दो, इससे सुख होगा भरपूर ॥

६ धूम्र शिखा सी जलती ज्वाला मे, कर लेता है सहर्ष प्रवेश ।
किन्तु न पीता सर्प अगन्धन, वान्त गरल सह के भी क्लेश ॥

७. धिक्कार तुम्हे अपयशकामी !, जो दूषित जीवन चाहते जीना ।
वमन किये को पीना चाहते, इससे श्रेष्ठ है तुम्हे मर जाना ॥

८. मैं हू भोगराज की पुत्री, तुम अंधक वृष्णि कुल प्रसूत ।
होना न हमे है गन्धन सम, पालन कर सयम बन शुभ पूत ॥

९. जहाँ तहा देख नारी तन को, मन मे विकार तुम लाओगे ।
तो पवन प्रचालित हरित तुल्य, अस्थिर चित्त बन जाओगे ॥

१०. हितकर वचन सुन वे सब उस सयमी सुभाषिता के ।
अकुश से हस्ति वश हो त्यो धर्म मे पुनः सुस्थित हुए वे ॥

११ ऐसा ही करते विबुध प्रवर, पडित और विचक्षण बन ।
भोगो से विरत हो जाते, हुए जैसे वे उत्तम जन ॥
—यह मै कहता हू ।

१. सयम मे स्थित आत्मावाले, विप्रमुक्त और त्रायी के ।
उन निर्ग्रन्थ परम ऋषियो के, है वर्णन अनाचीर्ण पथ के ॥

२. उद्देसियं कीयगडं, नियाग अभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गंध मल्ले य वीयणे ।।

३. सन्निही गिही-मत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
संवाहणा दंत पहोयणा य, संपुच्छणा देह-पलोयणा य ।।

४. अट्ठावए य नाली य, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ।।

५. सेज्जायर-पिण्डं च, आसंदी पलियंकए ।
गिहंतर निसज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ।।

६. गिहिणो वेआवडिय, जाय आजीव वत्तिया ।
तत्ता निव्वुड भोइत्तं, आउरस्सरणाणि य ।।

७. मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अनिव्वुडे ।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ।।

८. सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमा-लोणे य आमए ।
सामुद्दे पंसुखारे य, काला-लोणे य आमए ।।

९. धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।
अंजणे दंतवणे य, गायब्भंग विभसणे ।।

२. औद्देशिक[1] कृतक्रीत[2] नियाग[3], अभ्याहृत[4] एवं निशा-अशन ।
स्नान गध माला धारण, सुख हेतु व्यजन का संचालन ॥

३. सनिधि[5] गृहस्थ पात्र मे भक्षण, राजन्य पिण्ड और क्षेत्र-अशन ।
संवाहन[6] और दंत शोधन, संप्रच्छन्न[7] निज देहालोकन ॥

४. नाली[8] से अष्टापद क्रीड़न[9], मुट्ठी से छत्र ग्रहण करना ।
चैकित्स्य उपानह का धारण, पावक का सज्वालन करना ॥

५. शय्यातर का पिण्ड और, वेत्रासन सुख पर्यंक-ग्रहण ।
वैठना गृहस्थ घर मे जाकर, करना शरीर का उद्वर्तन ॥

६. करना गृहस्थ जन की सेवा, और जाति वता भिक्षा अर्जन ।
अर्द्ध पक्व सेवन करना, या रोगावस्था मे क्रन्दन ॥

७. मूला सिंगवेर-सेवन[10], और इक्षुखण्ड जो ग्रहण करे ।
शूरण आदि सजीव मूल फल, तथा वीज का अशन करे ॥

८ सौवर्चल[11] सैन्धव और रूमा, सागर से निकले तथा लवण ।
ऊपर और काले लवणो का, मुनि करे सचित्त का है वर्जन ॥

९. रोग शान्ति हित धूप वमन, और वस्ति विरेचन का सेवन ।
अजन और दांतो का रगना, अभ्यंग तेल से तन-मर्दन ॥

---

१. साधु के निमित्त वनाया आहार २. साधु के लिए खरीदा आहार ३. निमन्त्रण से प्राप्त आहार ४ सामने लाकर दिया आहार ५. रात्रि मे आहारादि का सचय ६. शरीर की मालिश ७. गृहस्थ से कुशल पूछना ८. जूए के साधन ९. चौपड़ शतरंज आदि खेलना १०. अदरख ११. संचर नमक ।

१०. सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि अ जुत्ताणं, लहुभूय विहारिणं ॥

११. पंचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंच निग्गहणा धीरा, निग्गथा उज्जुदंसिणो ॥

१२. आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥

१३. परिसह–रिऊदंता, धूअमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥

१४. दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य ।
केइऽत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया ॥

१५. खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिणिव्वुडा–त्ति वेमि ।

चतुर्थ–अध्ययन

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—
इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं—समणेणं भगवया
महावीरेणं कासवेणं पवेइया—सुअक्खाया सुपण्णत्ता ।
सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ।

१०. इतने है ये अनाचीर्ण[1] पथ निर्ग्रन्थ श्रमण अति उत्तम के ।
सयम पथ मे जो जुडे हुये, लघुरूप विहारी जीवन के ॥

११. पचास्रव के परित्यागी, त्रिगुप्त जीव षट् पर-संयत ।
पचेन्द्रिय जयी धैर्यधारी, निर्ग्रन्थ मोक्ष पथ नयन निहित ॥

१२ लेते आतापन गर्मी मे, सर्दी मे वस्त्र रहित रहते ।
सयत और समाहित मुनि[2], वर्षा मे कच्छपवत् रहते ॥

१३. परिषह शत्रु का दमन करे, मोह त्यागी इन्द्रिय के विजयी ।
जो सभी दु.खो से मुक्ति हेतु, उद्यत रहते मुनि परमजयी ॥

१४ दुष्कर सयम का साधन कर, दुस्सह पीडाओ को सहकर ।
है जाते कई यहा से सुरपुर, एवं सिद्ध कई नीरज बनकर ॥

१५. सयम और तपस्या से, पूर्वार्जित कर्मो का क्षय कर ।
सिद्धि मार्ग को प्राप्त हुए, त्रायी[3] मुनि पूर्ण अमर बनकर ॥

१. सुना शिष्य ! मैंने उन प्रभु से, कैसा तारक कहा वचन ।
निश्चय ही इस प्रवचन मे, छ जीवनिकायो का वर्णन ॥

जो कश्यपवशी श्रमण वीर ने, भलीभाति बतलाया है ।
वह श्रेय धर्म-प्रज्ञप्ति मुझे, पढने मे मन को भाया है ॥

---

१. आचरण नही करने योग्य २. प्रशस्त समाधि वाले । ३. षट्काय के रक्षक ।

२. कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं-समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया-सुअक्खाया—सुपण्णत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती।

३. इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं-समणेणं—भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया—सुअक्खाया सुपण्णत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती।

तं जहा-पुढ़वि-काइया १, आउ-काइया २, तेउ-काइया ३, वाउ-काइया ४, वणस्सइ-काइया ५, तस काइया ६।

पुढ़वी चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ॥१॥

आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ॥२॥

तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ॥३॥

वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ॥४॥

वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं। तं जहा-अग्गबीया मूलबीया

२. षट्जीव निकाय नामवाला, अध्ययन कौन जो यहां कहा ?
भगवान् वीर उस काश्यप ने, समझाया जिसका मर्म महा ॥
अध्ययन धर्म प्रज्ञप्तिरूप, है प्रभु ने कथन किया जिसका ।
है श्रेयस्कर मेरे हित मे, मनोयोग से पढ़ना उसका ॥

३. निश्चय षट्जीव निकायरूप, यह वर्णन सुखद मनोरम है ।
उस श्रमणवीर प्रभु काश्यप ने, है कहा जिसे अति उत्तम है ॥
जिसको सम्यक् है बतलाया, एव आख्यान किया जिसका ।
अध्ययन धर्म प्रज्ञप्ति सदा, क्षेमकर है जन-जीवन का ॥

पृथ्वीकायिक जलकायिक, तेजस्कायिक भी जीव यहां ।
है वायु वनस्पतिकायिक फिर, त्रसकायिक ऐसे भेद जहां ॥

पृथ्वी को सचित्त बतलाया, है जीव पृथक् सत्ता-वाले ।
अगणित जीव, शस्त्र परिणित तज, सबके सब जीवन वाले ॥१॥

अप्कायिक भी जीव सहित है, पहले जैसे लक्षण वाले ।
वे ही अचित्त है जो हो जाते, शस्त्रो से आहत तन वाले ॥२॥

तेजस् या वायु वनस्पति के भी विविध जीव बतलाये हैं ।
वे जीव सहित, शस्त्रो से आहत को तजकर, कहलाये है ॥३-५॥

जो जीव वनस्पति कायिक है, उनके ये भेद निराले हैं ।
कुछ अग्रबीज कुछ मूलबीज, कुछ पर्वबीज तन वाले हैं ॥

पोरबीया खंधबीया बीयरुहा—सम्मुच्छिमो तणलया—वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेग–जीवा पुढ़ो सत्ता अन्नत्थ सत्थ–परिणएणं ।।५।।

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा–तं जहा–अंडया पोयया जराउया रसया–संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया जेसिं केसिं च पाणाणं—अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचिय पसारियं–रुयं भंतं तसियं पलाइयं–आगइ–गइ–विन्नाया, जे य कीड पयंगा जा य कुंथुपिवीलिया सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पंचिंदिया सव्वे तिरिक्ख जोणिया सव्वे नेरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया । एसो खलु छट्ठो जीव निकाओ 'तसकाउ त्ति' पवुच्चइ ।।६।।

इच्चेसिं छण्हं जीव निकायाणं—नेव सयं दंडं समारंभिज्जा–नेवन्नेहिं दंडं समारभाविज्जा—दंडं समारभंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं–मणेणं, वायाए—काएण न करेमि, न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि—अप्पाणं वोसिरामि ।।७।।

कुछ स्कन्ध बीज कुछ बीजरुहा, संमूर्च्छिम और तृणादिकाय ।
ये है सचित्त और बीजयुक्त, शस्त्रो से परिणित यदि हो न काय ।।५।।
ये जो अनेक चलने वाले, जगती मे त्रस कहलाते है ।
अंडज, पोतज, रसज, जरायुज, स्वेदज प्राणी होते है ।।
संमूर्च्छिम, उद्भिज्, उपपातिक, जिनके चेष्टा है जीवन मे ।
ज्ञातृ अपेक्षा से कितनी, होती है काय क्रिया इनमें ।।

सम्मुख आना पीछे जाना, संकोचन अंगो का करना ।
निज हाथ पांव को फैलाना, रुदन और भ्रमण ऐच्छिक करना ।।
होना उद्विग्न भयादि देख, स्वस्थान छोडकर भग जाना ।
यो इनके गमनागमनो से, सिद्ध इन्हे प्राणी कहना ।।
सब कीट पतगे जो प्राणी फिर, कुथु पिपीलिका तनवाले ।
है दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय सब, चतुरिन्द्रिय पच-इन्द्रिय वाले ।।
तिर्यक् योनिज और नारक भी, नर और देवगण भी सारे ।
सबमे है प्राण परमधर्मी, ये षट्निकाय त्रस तनवाले ।।६।।

ऐसे षट्कायिक जीवो को, हम दण्ड नही दे हित माने ।
फिर नही दिलाये पर से भी, देते को भला नही जाने ।।
हिंसा वर्जन जीवन भर, हमको करना है तन मन से ।
नही करे ना करवाये, करते को शुभ न कहे मन से ।।
ऐसे दण्डो से, हे गुरुवर! मै दूर स्वय अब होता हूं ।
निन्दा गर्हा करके इनका, त्याग हृदय से करता हूं ।।७।।

पढ़मं भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएण न करेमि, न कार–वेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ।।८।।

अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ— वेरमणं, सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंते— वि अन्ने न समणुजाणिज्जा ! जावज्जीवाए— तिविहं तिविहेणं मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दोच्च भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ।।६।।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा

प्रथम महाव्रत मे भदन्त !, प्राणातिपात विरमण होता ।
इसलिए सभी हिंसा कार्यो से, तोड़ रहा हूं मैं नाता ।।
हो सूक्ष्म तथा बादर या त्रस, स्थावर भी कोई जीव यदा ।
ना हिंसा करू न करवाऊं, करते अच्छा ना कहूं कदा ।।

तीन करण और तीन योग से, मन और वचन वा काया से ।
करूं न करवाऊ मैं हिंसा, भला नही जानू मन से ।।
होता हिंसा से पृथक् तथा, निन्दा गर्हा मैं करता हूं ।
प्रथम महाव्रत जीव घात से, अब मैं विरत हो जाता हूं ।।८।।

द्वितीय महाव्रत मृषावाद,– विरमण नामक कहलाता है ।
हे पूज्य ! सर्वथा मृषावाद का, इसमे वर्जन करना है ।।
क्रोध, लोभ, भय हास्य निमित्तक, झूठ नही मैं बोलूंगा ।
औरो से न कहाऊंगा, कहते को भला न मानूंगा ।।

त्रिविध करण और त्रिविध योग से, मन से तथा वचन तन से ।
कहूं न कहलाऊं मैं मिथ्या, भला नही मानूं मन से ।।
होता मिथ्या से अलग और, निन्दा गर्हा मै करता हूं ।
द्वितीय महाव्रत मृषावाद,– विरमण को धारण करता हूं ।।९।।

तृतीय महाव्रत चौर्य कर्म से, अब मै विरमण करता हूं ।
बिना दिये पर वस्तु को, मै ग्रहण भाव से तजता हूं ।।

नगरे वा रन्ने वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा, अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥१०॥

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेण वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । चउत्थे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ॥११॥

अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वं भते ! परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं

ग्राम नगर अदत्त वस्तु लेने का, थोड़ा अथवा अधिक वहुत ।
सूक्ष्म स्थूल निर्जीव तथा, चाहे हो चैतन्य सहित ॥
लूंगा अदत्त ना वस्तु कोई, औरो से नही लिवाऊगा ।
बिना दिये लेने वाले को, भला नही बतलाऊगा ॥
तीन करण और तीन योग से, मन से तथा वचन तन से ।
करू न करवाऊ करते को, भला न बोलूंगा मन से ॥
होना चोरी से पृथक् तथा, निन्दा गर्हा मै करता हूं ।
तृतीय महाव्रत चौर्य विरति से, सयम धारण करता हूं ॥
करता भदन्त ! मै चौर्य त्याग, उपरत इन सबसे होता हूं ।
अचौर्य महाव्रत पालन मे, अपने को अर्पण करता हू ॥१०॥

मैथुन विरमण है व्रत चौथा, मै तन मन से अपनाता हू ।
हे भदन्त ! सारे मैथुन से, निज मन दूर हटाता हूं ॥
देव मनुज या तिर्यंचो से, मैथुन सेवन करे नही ।
मैथुन कर्म ना करे करावे, अनुमोदन मन धरे नही ॥
तीन करण और तीन योग से, मन वचन तथा अपने तन से ।
करू न करवाऊ मै मैथुन, अनुमोदन न करू मन से ।
करता भदन्त ! मैथुन वर्जन, निन्दा गर्हा भी करता हू ।
मैथुन सेवन के महापाप से, दूर स्वय को करता हू ॥११॥

परिग्रह विरमण पचम व्रत को, मै पूर्ण रूप से अपनाता हूं ।
हे भदन्त ! सब तरह परिग्रह, से मन को दूर हटाता हूं ॥
चाहे थोड़ा या बहुत अधिक, अणु अथवा बादर परिग्रह हो ।

वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पचमे भंते! महव्वए— उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१२॥

अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं, सव्वं भते! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइम वा साइम वा नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ॥१३॥

इच्चेयाइ पंच महव्वयाइ, राइ–भोयण–वेरमणं–छट्ठाइं अत्त हियट्ठाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥१४॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय–पडिहय पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा

सचित्त अथवा अचित्त द्रव्य, लेना मन के अनुरूप न हो ।।
स्वयं परिग्रह ग्रहण करूं ना, औरो से ग्रहण कराऊं ना ।
तथा परिग्रह रखने वाले, को भी अच्छा मानूं ना ।।
जीवन भर तीन करण त्रियोगो से, मन से वचन तथा तन से ।
करूं न करवाऊं संग्रह को, भला नही जानूं मन से ।।
करता भदन्त ! सब उपधित्याग, निन्दा गर्हा मै करता हूं ।
परिग्रह विरमण व्रत पालन मे, मनको अब अर्पण करता हूं ।।१२।।

रजनी भोजन त्याग रूप, व्रत छट्ठे को अपनाता हूं ।
हे पूज्य ! रात्रि के भोजन को, अब मन से दूर हटाता हूं ।।
अशन पान खादिम या स्वादिम, स्वय नही मै खाऊंगा ।
और खिलाऊंगा न किसी को, खाते को भला न मानूंगा ।।
जीवन भर तीन करण त्रियोगो से, वचन तथा तन से मन से ।
करूं न करवाऊं निशि भोजन, भला नही जानूं मन से ।।
करता भदन्त ! निशि अशन त्याग, निन्दा गर्हा भी करता हूं ।
त्याग रात्रि-भोजन, व्रत-पालन मे मन अर्पित करता हूं ।।१३।।

पूर्व कथित ये पंच महाव्रत, छट्ठा रात्रि-भोजन-विरमण ।
अपने हित के लिए धारणकर, करता हूं मै जग विचरण ।।१४।।

संयत विरत और पापो का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ।।

आयावेज्जा न पयावेज्जा-अन्न आमुसंतं वा संफुसंतं वा आवीलतं वा पवीलंत अक्खोडतं वा पक्खोडतं वा आयावंतं वा पयावतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स-भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि-अप्पाणं वोसिरामि ।।१६।।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा-संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा-परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से अगणि वा इगालं वा मुमुरं वा अच्चि वा-जालं वा अलाय वा सुद्धागणि वा उक्कं वा-न उंजेज्जा न घटेज्जा न-भिंदेज्जा-न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा-अन्न न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निवावेज्जा अन्नं उजत वा घट्टंतं वा भिंदतं वा-उज्जालतं वा पज्जा-लंत वा निव्वावंत वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।।१७।।

प्रस्फोटन भी करे नही, आतप मे उनको रक्खे ना ।
इन सभी क्रिया करने वाले को, भला हृदय से जाने ना ।।

तीन करण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से ।
करूं न करवाऊ जीवन भर, अच्छा भी जानूं ना मन से ।।
होता हिंसा से दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हू ।
गर्हा करता गुरुदेव ! सदा, मै मन से इसको तजता हूं ।।१६।।

सयत विरत और पापो का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् मे स्थान लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव मे रहने का ।।
अग्निकाय में इगारक, मुर्मुर अर्चि या ज्वाला को ।
तेज करे ना तृणाग्रवर्ती, अनल जीव वध करने को ।।
नही बुझवावे औरो से, जलवाना आदिक करे नही ।
घर्षण या भेदन आदि क्रिया, जलवाये उसको कभी नही ।।
प्रज्वालन ना करवावे, और नही किसी से बुझवावे ।
अगारक भेदन छेदन भी, नही किसी से करवावे ।।
अनल जलाते भेदन करते, या घर्षण करते जन को ।
भला न समझे व्रती जीव, प्रज्वालक या निर्वापक को ।।
तीन करण या तीन योग से, मन और वचन तथा तन से ।
करूं न करवाऊ जीवन भर, भला नही मानू मन से ।।
होता उससे दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूं ।
गर्हा करता हूं पूज्य प्रभो !, मैं हिंसा मन से तजता हू ।।१७।।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे-दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से सिएण वा विहुणेण वा तालियंटेण वा पत्तेण पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुण-हत्थेण वा चेलेण वा चेल-कण्णेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वा वि पोग्गलं न फूमेज्जा न वीएज्जा-अन्नं न फूमावेज्जा न वीआवेज्जा—अन्नं फूमंतं वा वीयंतं वा न समणुजाणेज्जा—जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि-अप्पाणं वोसिरामि ॥१८॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे-दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसा-गओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से वीएसु वा बीय-पइट्ठेसु वा रूढ़ेसु वा रूढ़-पइट्ठेसु वा जाएसु वा जाय-पइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरिय पइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्न-पइट्ठेसु वा सचित्तेसु

संयत विरत और पापो का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् मे भाग लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का ।।
चवर पखे तालवृन्त या, पत्ते या वहु पत्तों से ।
शाखा डाली या शाखि खण्ड से, अथवा मयूर की पिच्छी से ।।
पाख समूहो से अथवा, अम्बर के झीने पल्ले से ।
हाथ और मुख के द्वारा, ऐसे ही पुट्ठे आदिक से ।।
अपने तन को या वाहर के, अशनादिक ठंडे करने को ।
फूक न मारे चवर आदि से, हवा करे ना औरों को ।।
फूक न मरवावे औरो से, तथा हवा ना करवावे ।
फूक, हवा करने वाले को, भला नही मन से माने ।।
तीन करण और तीन योग से, मन और वचन या काया से ।
करू ना करवाऊ जीवन भर, भला नही मानू मन से ।।
होता उससे दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूं ।
गर्हा करता हू पूज्य प्रभो !, मन से मैं हिंसा तजता हू ।।१८।।

सयत विरत और पापो का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् मे भाग लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव मे रहने का ।।
बीजों पर या वीज प्रतिष्ठित, आसन, शयन पदार्थों पर ।
अंकुरित वनस्पति या उन पर, रक्खे शयनादिक साधन पर ।।

वा सचित्त-कोल-पडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीएज्जा न तुयटेज्जा अन्नं न गच्छावेज्जा न चिट्ठावेज्जा न निसीयावेज्जा न तुयट्टावेज्जा-अन्नं गच्छंत वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुयट्टंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१९॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीड वा पयग वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा उरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलगंसि वा पाय-पुच्छणंसि वा रय-हरणंसि वा गुच्छगंसि वा उडुगसि वा दंडगसि वा पीढगसि वा फलगंसि वा तेज्जसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए—तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय-पमज्जिय-एगंतमवणेज्जा-नो णं संघायमावजेज्जा ॥२०॥

हरितों पर वा हरित प्रतिष्ठित, छिन्न हरित के भागो पर ।
गमन, स्थिति या उपवेशन, इन पर करना होता दुःख कर ॥
ऐसे न चलावे औरों को, बैठावे और न खड़ा करे ।
नही सुलावे परजन को, जीवो की रक्षा ध्यान धरे ॥
हरितों पर चलते या ठहरे, बैठे या सोते अन्यो को ।
भला न जाने विराधना, करने वाले प्राणी-गण को ॥
तीनकरण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से ।
करू न करवाऊं जीवनभर, भला नही मानू मन से ॥
कृत पापकर्म से हटता हू, आत्मा से निन्दा करता हूं ।
गर्हा करता गुरुदेव ! हृदय से, दोपों को मै अब तजता हू ॥१९॥

सयत विरत और पापों का, निपेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् मे भाग लिया ॥
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या गहरी निद्रा का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का ॥
कीट, पतगे, कुंथु चीटिया, हाथ पैर के भागो पर ।
जघा, भुजा, उदर, वक्षस्थल, सिर, पट और पात्र ऊपर ॥
कंवल, पद प्रोछन आदिक पर, रजोहरण या पूंजनी पर ।
स्थण्डिल पात्र दण्ड के ऊपर, चौकी वा पाटे के ऊपर ॥
शय्या सस्तारक अन्य तथा, ऐसे विध-विध उपकरणो पर ।
पहले कहे हुए प्राणी गण, काय तथा उपकरणो पर ॥
वार वार प्रतिलेखन कर, यतना से उनको दूर करे ।
बिना परस्पर टकराये, जीवों को ले एकान्त धरे ॥२०॥

१. अजयं चरमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ।।

२. अजय चिट्ठमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
वंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फल ।।

३. अजयं आसमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुयं फल ।।

४. अजय सयमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फल ।।

५. अजयं भुंजमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसई ।
बंधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फल ।।

६. अजय भासमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावय कम्मं त से होइ कडुयं फल ।।

७. कहं चरे ? कहं चिट्ठे ?, कहमासे ? कहं सए ? ।
कहं भुंजतो भासंतो, पाव-कम्मं न बंधइ ? ।।

८. जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जय भुंजतो भासंतो, पाव-कम्मं न बंधइ ।।

९. सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पाव कम्मं न बंधइ ।।

१०. पढ़म नाणं तओ दया, एव चिट्ठइ सव्व संजए ।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ सेय-पावग ।।

१. अयत्न से चलने वाला, प्राणी की हिंसा करता है ।
बांधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ।।

२. अयत्न से जो खड़ा रहे, प्राणी की हिंसा करता है ।
बाधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ।।

३. यत्न रहित बैठे कोई, प्राणी की हिंसा करता है ।
बाधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ।।

४. यत्न रहित सोनेवाला, प्राणी की हिसा करता है ।
बाधता पाप कर्मो को है, इससे कडबा फल मिलता है ।।

५ यत्न रहित खाने वाला, प्राणी की हिंसा करता है ।
बाधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ।।

६. यत्न रहित भाषण करता, प्राणी की हिंसा करता है ।
बाधता पाप कर्मों को है, इससे कड़वा फल मिलता है ।।

७. कैसे चले खड़ा हो कैसे ?, कैसे बैठे और शयन करे ?
कैसे खाते, भाषण करते ना पाप कर्म का बन्ध करे ?

८ यतना से चले खड़ा होवे, यतना से बैठे शयन करे ।
यतना से खाये बोले तो, ना पाप कर्म का बंध धरे ।।

९. सब जीवो मे आत्म बुद्धि, एव सब मे समदर्शी हो ।
आस्रव रोधी दान्त श्रमण के, न पाप कर्म का बधन हो ।।

१०. पहले ज्ञान दया पीछे, ऐसा सब मुनिजन कहते है ।
अज्ञानी क्या कर सकते ?, ना अच्छा बुरा समझते है ।।

११. सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ।।

१२. जो जीवे वि न याणइ, अजीवे वि न याणइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ।।

१३. जो जीवे वि वियाणइ, अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो सो हु नाहीइ संजमं ।।

१४. जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणइ ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।।

१५. जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणइ ।।

१६. जया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्ख च जाणइ ।
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।।

१७. जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ संजोगं, सब्भितर—बाहिरं ।।

१८. जया चयइ संजोगं, सब्भितर—बाहिर ।
तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ।।

१९. जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्टं, धम्म फासे अणुत्तरं ।।

२०. जया सवरमुक्किट्ठं, धम्म फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ।।

११. कल्याण कर्म सुनकर जाने, सुन पाप कर्म का ज्ञान करे ।
दोनो ही सुनकर समझे नर, फिर श्रेय कर्म मे ध्यान धरे ।।

१२. जो जीवो को नही जानता, फिर अजीव का ज्ञान नही ।
जीव अजीव बिना जाने, संयम का होता बोध नही ।।

१३. जानता यहा जो जीवो को, एवं अजीव को भी जाने ।
जो जीव अजीव युगल जाने, वही नर संयम को जाने ।।

१४. जब जीवों और अजीवो का, दोनों का ज्ञाता हो जाता ।
तब बहुविध गति सब जीवो की, वह बिना कहे अवगत करता ।।

१५. जब बहुविध गति सब जीवो की, साधक नर जान यहा लेता ।
तब पुण्य पाप और बध मोक्ष, इनका भी ज्ञान सहज होता ।।

१६. जब पुण्य पाप और बंध मोक्ष, इनको है सहज जान लेता ।
तब देव मानवी भोगों पर, तन मन से नही ध्यान देता ।।

१७. जब देव मानुषी भोगो पर, तन मन से नही ध्यान देता ।
तब बाह्याभ्यन्तर ममता को, वह सहज रूप से तज देता ।।

१८. जब बाहर भीतर की ममता, का त्याग सहज मे कर देता ।
तब मुण्डित होकर इस जग मे, साधुता प्राप्त है कर लेता ।।

१९. जब मुण्डित होकर इस जग मे, साधुता प्राप्त कर लेता है ।
तब उत्कृष्ट धर्म संवर के, पद को वह पा लेता है ।।

२०. जब उत्कृष्ट धर्म सवर के, पद को वह पा लेता है ।
तब आत्मिक अज्ञान जन्य, कर्माणु दूर कर देता है ।।

२१. जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ।
तया सव्वत्तग नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।।

२२. जया सव्वत्तगं नाणं दसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली ।।

२३. जया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।।

२४. जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्म खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।।

२५. जया कम्म खवित्ताणं सिद्धिं, गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ।।

२६. सुह सायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोअस्स, 'दुलहा सुगइ' तारिसगस्स ।।

२७. तवो गुण पहाणस्स, उज्जुमइ-खती-संजमरयस्स ।
परीसहे जिणंतस्स, 'सुलहा सुगइ' तारिसगस्स ।।

२८. पच्छा वि ते पयाया, खिप्प गच्छति अमर भवणाइं ।
जे सि पिओ तवो सजमो य, खति य बंभचेरं च ।।

२९. इच्चेय छज्जीवणिय, सम्मदिट्ठी सया जए ।
दुल्लह लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहिज्जासि ।।
—त्ति बेमि ।

—:०:—

२१. जब आत्मिक अज्ञान जन्य, कर्माणु दूर कर देता है।
तब सार्वत्रिक पूर्ण ज्ञान, और दर्शन को पा लेता है ॥

२२. जब सार्वत्रिक पूर्ण ज्ञान, और दर्शन को पा लेता है।
तब सब लोक अलोक जानकर, जिन केवली हो जाता है ॥

२३. जब सब लोक अलोक जानकर, जिन केवली हो जाता है।
तब योगो का रोधनकर, शैलेशी पद पा लेता है ॥

२४. जब योगो का रोधनकर, शैलेशी पद पा लेता है।
तब कर्मो का पूर्ण क्षपणकर, नीरज सिद्धि को पाता है ॥

२५. जब कर्मो का पूर्ण क्षपणकर, नीरज सिद्धि को पाता है।
तब लोकाग्र भाग सस्थित, शाश्वत शिव पद पा लेता है ॥

२६. सुख के स्वादी साता व्याकुल, निद्रा को आदर जो देते।
धावन प्रधान जो आरम्भी, वे श्रमण सुगति दुर्लभ पाते ॥

२७. तप गुण प्रधान ऋजु शुद्ध बुद्धि, जो क्षमा साधनारत मुनिवर।
जो परीषहो के जेता है, ऐसो की सद्गति है सुखकर ॥

२८. जिनको प्यारा तप सयम है, क्षान्ति और सत्-शीलप्रधान।
वे पीछे से भी आकर के, पा लेते है अमर विमान ॥

२९. इस प्रकार षट् जीव निकाय मे, समदृष्टि सदा शुभ यत्न करे।
दुर्लभ श्रमणधर्म पाकर, ना जीव विराधन कर्म करे ॥

—ऐसा मैं कहता हू।

—:०:—

उत्तराध्ययन-सूत्र

(भ० महावीर का अन्तिम उपदेश)

(३)

चौथा अध्ययन-असंस्कृत

१. असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिंति ।।

२. जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययंति अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्ठिए णरे वेराणुबद्धा णरयं उवेंति ।।

३. तेणे जहा संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि ।।

४. संसारमावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेंति ।।

५. वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउय दट्ठुमदट्ठुमेव ।।

६. सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवि, णो वीससे पंडिए आसुपण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंडपक्खी व चरेऽप्पमत्ते ।।

७. चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय वूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी ।।

उत्तराध्ययन–सूत्र

(भ० महावीर का अन्तिम उपदेश)

(३)

चौथा अध्ययन–असंस्कृत

१. छोड़ प्रमाद, जुड़े ना जीवन, जरसोपनीत का त्राण नही।
   यो जान प्रमादी हिंस्र-असयत, लेंगे किसकी शरण कही?

२. पाप–प्रवृत्ति से यदि कोई, मानव वैभव को पाता है।
   धन छोड़ वैर से बंधा देख लो, नरक लोक वह जाता है॥

३. ज्यों चोर सेंघमुख पर पकड़ा जाकर, निज कर्म वश काटा जाता।
   त्यों यह जीव उभय भव मे, कर्म भोगे विन छूट न पाता॥

४. स्व पर के कारण जो संसारी, साधारण कर्म कमाता है।
   कर्म भोग के समय कोई, वान्धव नही भाग बंटाता है॥

५. धन के विषयी को त्राण नही, इस भव मे अथवा पर भव में।
   बुझ गये दीपवत् अति मोही, देखे पथ भी न चले वन में॥

६. सुप्त जनो में भी ज्ञानी, प्रतिवुद्ध भरोसा करे नहीं।
   निर्बल शरीर क्षण बडा निष्ठुर, भारण्ड सम करे प्रमाद नही॥

७. मुनि चले दोष से शकित हो, थोडा भी दोष बन्धन समझे।
   हो लाभ जहाँ तक करे तन पोषण, विन लाभ देह का मोह तजे॥

८. छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खियवम्मधारी ।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ।।

९. स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं ।
विसीयइ सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए ।।

१०. खिप्पं ण सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।
समिच्च लोगं समया महेसी, आयाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो ।।

११. मुहं मुहं मोहगुणे जयंतं, अणेगरूवा समणं चरतं ।
फासा फुसंती असमंजसं च, ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से ।।

१२. मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं ।।

१३. जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्जदोसाणुगया परज्झा ।
एए अहम्मेत्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीर भेए–त्ति बेमि।।

नवमां अध्ययन–नमि प्रव्रज्या

१. चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि ।
उवसन्तमोहणिज्जो, सरइ पोराणियं जाइं ।।

२. जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो[1] अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमई णमी राया ।।

३. सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु णमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ।।

---

१. 'सय सं बुद्धो' यह पाठान्तर भी है ।

८. इच्छानिरोध से मुक्ति मिले, ज्यों शिक्षित हय कवचधारी।
पूर्व वर्ष चल अप्रमत्त हो, शीघ्र मुक्ति ले व्रतधारी॥

९. जो पूर्व नही मिलता पीछे भी, निश्चय यह शाश्वत वाद कहे।
पर शिथिल आयु मे काल जनित, तनभेद देख मन खेद लहे॥

१०. शीघ्र विवेक न पा सकता, उठ अतः काम सुख त्याग करो।
यह लोक जान समभाव रमो, आत्मार्थी जागृत हो विचरो॥

११. बार बार मोहादि जीतते, उग्र विहारी मुनि जन को।
विविध विषय परिषह दु.ख देते, मन से न सत सोचे उनको॥

१२. अनुकूल स्पर्श मन ललचाते, वैसे मे मन ना प्रीति धरे।
कर क्रोध दूर और मान हटा, माया सेवे ना लोभ करे॥

१३. परवादी सधेय–आयु को, राग द्वेषवश हो कहते।
धर्म शून्य उनका मन तज, गुण अर्जन अन्तिम दम करते॥

नवमां अध्ययन–नमि प्रव्रज्या

१. अमर लोक से च्युत होकर, नमि ने नर भव मे जन्म लिया।
उपशान्त मोह के होने से, निज पूर्व जन्म का स्मरण किया॥

२. पूर्व जन्म की स्मृति से नमि को, श्रेष्ठ धर्म का बोध हुआ।
राज्य भार सुत को देकर, गृहस्थ धर्म से निवृत्त हुआ॥

३. सुर लोक सरीखे भोगों का, अन्त.पुर मे उपभोग किया।
धर्म बुद्ध हो नमि राजा ने, उन भोगों से मन को हटा लिया॥

४. मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिणिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं ।।

५. कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि ।
तइया रायरिसिम्मि, णमिम्मि अभिणिक्खमंतम्मि ।।

६. अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जाठाणमुत्तमं ।
सक्को माहणरूवेणं, इमं वयणमब्बवी–

७. 'किण्णु भो अज्ज ! मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला ।
सुव्वं ति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ?'

८. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

९. 'मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्तपुप्फफलोवेए, बहूणं बहूगुणे सया ।।

१०. वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो ! खगा' ।।

११. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

१२. 'एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मन्दिरं ।
भयवं अंतेउरं तेणं, कीस णं णावपेक्खह ?'

१३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी देविंदं इणमब्बवी—

४. जनपद युत प्रिय मिथिलानगरी, सेना रनिवास तथा परिजन ।
सब छोड़ शान्ति पथ पर निकल पड़े, एकान्तवास मे स्थिर कर मन ॥

५. मिथिला मे कोलाहल छाया, जब नमि प्रव्रज्या हेतु चला ।
सब राज विभव तज राजर्षि, संयम पथ पकडा बहुत भला ॥

६. ज्ञानादि गुणो की उच्च भूमि पर, उद्यत हो नमि ने गमन किया ।
विप्ररूपधारी सुरपति ने तब, निकट पहुच यों कथन किया ॥

७. राजर्षि ! आज इस मिथिला के, महलो मे पुर के घर-घर मे ।
दारुण कोलाहल व्याप रहा, क्यो बाल वृद्ध सब के स्वर मे ?

८. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुति गोचर कर ।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥

९. था एक वृक्ष मिथिला–पुर में, सुन्दर शीतल छाया वाला ।
फल पुष्प पत्र से लदा हुआ, खग गण सेवित बहुगुण वाला ॥

१०. हे विप्र ! एक दिन हवा चली, वह सुन्दर वृक्ष तब उखड़ गया ।
उसके आश्रित पक्षी रोते है, जिनका सुनीड़ है उजड़ गया ॥

११. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि–वचन श्रुति गोचर कर ।
देवेन्द्र नमि को यों बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

१२. पवन प्रसारित अग्नि से यह, जल रहा तुम्हारा मन्दिर है ।
हे नाथ ! नही क्यों देख रहे, अन्त.पुर भी जलने पर है ॥

१३. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र–वचन श्रुति गोचर कर ।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर ॥

१४. 'सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, ण मे डज्झइ किंचणं ।।

१५. चत्तापुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं ण विज्जई किंचि, अप्पियं पि ण विज्जए ।।

१६. बहु खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ' ।।

१७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

१८. 'पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य ।
उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया' ।।

१९. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

२०. 'सद्धं णगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं ।
खंति णिउणपागारं तिगुत्तं दुप्पधंसयं ।।

२१. धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए ।।

२२. तवणारायजुत्तेणं भित्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए' ।।

१४. हम सुख से वसते जीते हैं, ना यहाँ हमारा कुछ भी है।
मिथिला के जलने से मेरा, जलता न यहां पर कुछ भी है॥

१५. पत्नी पुत्रादिक के त्यागी, व्यवसाय विरत जो भिक्षुक है।
प्रिय अप्रिय कुछ भी नही वहा, मिट गई मन की चाह जिनकी है॥

१६. है वहुत भद्र उस मुनिवर के, भिक्षाजीवी अनगारी के।
सर्व – सग से विप्रमुक्त, एकान्तरूप सुखधारी के॥

१७. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्पि–वचन श्रुतिगोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर॥

१८. राजन्! परकोटा पुरद्वार, खाई शतमारक अस्त्र वना।
फिर चाहो तुम मुनि बन जाना, एकान्त तपी और शुद्ध मना॥

१९. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र–वचन श्रुतिगोचर कर।
नमि देवेन्द्र से यो वोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर॥

२०. श्रद्धा नगर अर्गला[1] तप सयम, शान्ति का दृढ़ प्राकार[2]।
मन वाणी काया से गोपित, रक्षा का मुनि करे विचार॥

२१. धनुप पराक्रम का करके, ईर्या को उसकी डोर करे।
धृति को मूठ वनाकर उसकी, वाँध सत्य से जोर धरे॥

२२. तप का तीर चढा धनु ऊपर, कर्मो का कंचुक भेद चले।
हो मुक्त श्रमण इस समरागण से, ससार भ्रमण का अन्त करे॥

---

१. आगल २. परकोटा

२३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

२४. 'पासाए कारइत्ताणं वड्ढमाणगिहाणि य।
बालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया'॥

२५. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

२६. 'संसयं खलु सो कुणइ, जो मग्गे कुणइ घरं।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं'॥

२७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसीं, देविंदो इणमब्बवी—

२८. 'आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे।
णगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया'॥

२९. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

३०. 'असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पउंजइ।
अकारिणोत्थ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो'॥

३१. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

३२. 'जे केइ पत्थिवा तुज्झं, णाणमंति णराहिवा।
वसे ते ठावइत्ता णं, तओ गच्छसि खत्तिया'!

२३. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि-वचन श्रुति-गोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यों बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

२४. बनवाओ प्रासाद भूप ! और वर्द्धमान सुन्दर शाला।
हो चन्द्रशाल उज्ज्वल शीतल, फिर मुनि होकर पकड़ो माला ॥

२५. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र-वचन श्रुति-गोचर कर।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

२६. संशय निश्चय वह करता है, जो पथ ही मे बनवाता घर।
जाने की इच्छा जहाँ वहाँ, बनवाये शाश्वत अपना घर ॥

२७. यह हेतु और कारण प्रेरित, सुरराज अर्थ ऐसा सुनकर।
राजर्षि नमि को इस प्रकार, बोले फिर वचन भाव से भर ॥

२८. चोर लुटेरों गठकट्टो से, नागर जन को निर्भय करना।
करके कल्याण नगर का तुम, फिर भिक्षापथ पर पग धरना ॥

२९. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥

३०. बहुत वार मानव भ्रमवश, गलत दण्ड दे जाते हैं।
दण्डित होते है निरपराध, दोषी पूरे बच जाते है ॥

३१. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्गि-वचन श्रुतिगोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

३२. हे नरपति ! तेरे सन्मुख जो, भूपाल नही आकर नमते।
वश में पहले उनको करके, भले लगोगे अन्तःपुर तजते ॥

३३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

३४. 'जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

३५. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ ?
अप्पाणमेवअप्पाणं,[1] जइत्ता[2] सुहमेहए ॥

३६. पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं' ॥

३७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

३८. 'जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया' !

३९. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

४०. 'जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ, अदित्तस्स वि किंचणं' ॥

४१. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

---

१. 'अप्पणाचेव अप्पाणं' ऐसा पाठ भी कुछ प्रतियों में मिलता है ।
२. 'जिणित्ता' पाठान्तर भी है ।

३३. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र–वचन श्रुतिगोचर कर।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, वाणी ज्ञानामृत से भर कर॥

३४. दुर्जय रण मे दस लाख सुभट, पर हँसते विजय मिलाता है।
स्वयं को एक विजय करता, वह परम जयी कहलाता है॥

३५. कर युद्ध स्वय से बाहर मे लडने से क्या फल मिलता है।
अन्तर्मन से दुर्भाव जीत, मानव हर्षित मन रहता है॥

३६. इन्द्रिय पॉच, क्रोध माया मद, लोभ दोष को जान लिया।
दुर्जय आत्मविजय कर निजको, जीते सब जग जीत लिया॥

३७. यह हेतु और कारण प्रेरित. राजर्षि–वचन श्रुतिगोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर॥

३८. विपुल यज्ञ का यजन करा, दे भोज्य श्रमण और ब्राह्मण को।
दो दान, भोग और यज्ञ करो, फिर पाना नृप! मुनि जीवन को॥

३९ यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ ऐसा सुनकर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, फिर वचन अमूल्य ज्ञान से भर॥

४०. दस लाख गाय जो मास मास, देता सयम से हो सूना।
दे दान नही कुछ भी पर है, सयम का मूल्य सदा दूना॥

४१. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर॥

४२. 'घोरासमं चइत्ताणं, अण्णं पत्थेसि आसमं।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा!'

४३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

४४. 'मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए।
ण सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं'॥

४५. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

४६. 'हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं।
कोसं च वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया'!

४७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

४८. 'सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया॥

४९. पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं णालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे'॥

५०. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

४२. करके तुम त्याग गृहस्थाश्रम, अन्याश्रम की क्यों चाह करो।
घर में ही पौषधरत रहकर, राजन् ! सेवा का भाव धरो ॥

४३. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥

४४. जो बाल मास का तप करके, भोजन कुशाग्र भर है करता।
श्रुत चरणधर्म की कलाषोडसी, भी वह प्राप्त नही करता ॥

४५. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

४६. सोना चादी मणि मुक्ता फल, कास्यादि वस्त्र वाहन सुखकर।
इनसे निज कोष बढा राजन् !, पीछे मुनिव्रत को धारण कर ॥

४७. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

४८. सोने चांदी के गिरि निश्चय,
कैलाश तुल्य अगणित पाले।
फिर भी न लुब्ध को जरा तोष,
इच्छा अनन्त नल विस्तारे ॥

४९ जो चावल से भरी धरा यह, स्वर्ण और पशुओ के संग।
है न एक के लिये बहुत, यह सोच धरें हम तप मे रग ॥

५०. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी से यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥

५१. 'अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा !
असते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि' ।।

५२. एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

५३. 'सल्लं कामा विस कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे भोए पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ।।

५४. अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया गईपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं' ।।

५५. अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं ।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं—

५६. 'अहो ! ते णिज्जओ कोहो, अहो ! माणो पराइओ ।
अहो ! ते णिरक्किया माया, अहो ! लोहो वसीकओ ।।

५७. अहो ! ते अज्जवं साहु, अहो ! ते साहु मद्दवं ।
अहो ! ते उत्तमा खंती, अहो ! ते मुत्ति उत्तमा ।।

५८. इहसि उत्तमो भंते, पच्छा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धि गच्छसि णीरओ' ।।

५९. एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदइ सक्को ।

६०. तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुण्डलतिरीडी ।।

५१. आश्चर्य ! बडे उन्नत क्षण मे, नृप ! त्याग भोग का करते हो।
असत् काम की वाछा से, सकल्पाहत तुम रहते हो ॥

५२. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥

५३ है काम शल्य और विष भारी, आशीविषवत् जीवन-हारी।
विन भोगे जाते दुर्गति मे, कामेच्छा ऐसी दुखकारी ॥

५४. है क्रोध नीच पद पहुँचाता, अभिमान अधमगति देता है।
माया से सद्गति रुकती है, लोभी दोनो भव खोता है ॥

५५. विप्र-रूप को छोड अमरपति, इन्द्ररूप धारण करके।
करते हुए स्तवन अभिवादन, इन मधुर स्वरो मे गा करके ॥

५६. अहो ! क्रोध को जीता तुमने, किया पराजित तुमने मान।
अहो ! छोड़ दी माया तुमने, वश मे किया लोभ शैतान ॥

५७ अहो ! श्रेष्ठ है आर्जव तेरा, मार्दव भी है हितकारी।
सर्वोत्तम है क्षमा तुम्हारी, लोभ-त्याग विस्मयकारी ॥

५८. इस भव मे तुम उत्तम हो, पर भव मे भी होगे उत्तम।
कर्म धूलि से रहित सिद्धि, पद पाओगे तुम पावनतम ॥

५९. यो करते हुए स्तवन सुरपति ने, उत्तम श्रद्धा से महिमा की।
करके प्रदक्षिणा बार बार, वन्दना नमी नरपति की की ॥

६०. चक्र और अकुश चिह्नित, मुनि के चरणो मे नमन किया।
ललित चपल-कुण्डल किरीटधर, शक्र स्वर्ग मे लौट गया ॥

६१. णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ॥

६२. एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से नमि रायरिसि-त्तिबेमि॥

दसवां अध्ययन–द्रुम पत्रक

१. दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

२. कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

३. इह इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

४. दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए॥

५. पुढविकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

६. आउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

७. तेउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

६१. प्रत्यक्ष शक्र से प्रेरित हो, नमि ने संयम मन रमा लिया।
तजकर भवनादिक वैदेही, श्रामण्य भाव मन अटल किया ॥

६२. संबुद्ध विचक्षण पंडितजन, जग में ऐसा ही करते हैं।
हो दूर भोग से नमि नृपवत्, वे संयम पथ पर चलते हैं ॥

दसवां अध्ययन–द्रुम पत्रक

१. ज्यों रजनीगण के जाने पर, तरु-पत्र पुराने जाते झर।
वैसे नश्वर मानव-जीवन, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२. कुश–नोक[1] लटकते ओसविन्दु, कुछ देर ठहरते ज्यों उस पर।
वैसे मानव का जीवन है, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३. यह अल्पकाल की आयु और, जीवन वहु विघ्नों का है घर।
कर दूर पुराकृत कर्म धूलि, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

४. चिर काल तक भी सव जीवों को, मानव जीवन है दुर्लभतर।
होते हैं कर्म-विपाक तीव्र, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

५. पृथ्वी के भव मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

६. अप्काय योनि मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल तक जीवन धर कर।
बसता वह काल असंख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

७. तेजकाय भव जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

---

१. घास की नोक

८. वाउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

९. वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालमणंतदुरंतयं समयं गोयम ! मा पमायए ।।

१०. बेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

११. तेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं सखिज्जसन्निय, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

१२. चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

१३. पंचिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
सत्तट्ठभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

१४. देवे नेरइए य गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
इक्केक्कभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

१५. एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

१६. लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरियत्तणं पुणरवि दुल्लहं ।
बहवे दस्सुया मिलक्खुया, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

८. वायुकाय मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

९. हरितकाय भव जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल अनन्त वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१०. दो इन्द्रियकाय पहुँच प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता सख्यामित[1] काल वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

११. त्रीन्दियकाय पहुँच प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता सख्यामित काल वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१२. चतुरिन्द्रिय योनि मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता सख्यामित काल वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१३. पचेन्द्रिय भवमे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
सात आठ भव ग्रहण करे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मत कर ॥

१४ देव नरक गति मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल तन धारण कर।
एक एक भव ग्रहण करे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१५. यो कर्म शुभाशुभ से प्राणी, भवभव मे भटके तन धर कर।
विपयो मे भूला भान फिरे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१६. दुर्लभ मानव भव पाकर भी, आर्यत्व मिलाना दुर्लभतर।
है दस्यु म्लेच्छ[2] क्रोड़ो ही नर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

---

१. संख्यात　　　　　२. चौर—अनार्य

२०. न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो॥

२१. समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥

२२. कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्से कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

२३. उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई॥

२४. सारं दंसणनाणं, सारं तव नियम सीलं।
सारं जिणवरधम्मं, सारं संलेहणा मरणं॥

२५. मज्जं विसयकसाया, निद्दा विकहा य पंचमी भणिया।
एए पंच पमाया, जीवा पाडंति संसारे॥

२६. लब्भंति विमला भोए, लब्भंति सुर सम्पया।
लब्भंति पुत्तमित्तं च एगो धम्मो न लब्भइ॥

२७. रागो य दोसो वि य कम्मबीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं, दुक्खं च जाईमरणं वयंति॥

२८. दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं॥

२९. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेन्ति भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंति परित्त संसारी॥

२०. शिर मुण्डन से होते न श्रमण, ओंकार जपे ना द्विज होते।
वनवास मात्र से होते न मुनि, कुश वल्कल से न तापस होते ॥

२१. समता धारण से श्रमण कहाते, है ब्रह्मचर्य से सद्ब्राह्मण।
ज्ञानाराधन से मुनि होता, तापस होता करे तप साधन ॥

२२. कर्मो से ब्राह्मण होता है, कर्मों से क्षत्रिय कहाता है।
है वैश्य कर्म से ही होता, और शूद्र कर्म से बनता है ॥

२३. भोगो से बन्धन होता है, होता न बन्धन जो भोग रहित।
भोगी संसार भ्रमण करता, होता विमुक्त जो भोग रहित ॥

२४. ज्ञान दर्शन सार है, सार है तप नियम और शील।
जिनवर धर्म ही सार है, सार है संलेखणापूर्वक मरण ॥

२५. मद्य विषय कषाय, निद्रा और पंचम है विकथा कही।
ये पांच प्रमाद कहलाते जो संसार भ्रमण के कारण हैं सही ॥

२६. सरल है प्राप्त करना उत्तमोत्तम कामभोग एवं देव सम्पद्।
पुत्र मित्र भी सरल है प्राप्त करना पर कठिन है प्राप्त करना धर्मसंपद ॥

२७. हैं रागद्वेष दो कर्म बीज, और कर्म मोह से होता है।
है जन्म मरण का मूल कर्म, जन्म मरण दुख कहलाता है ॥

२८. जिसको न मोह है दुख मिटा, नष्ट मोह तृष्णा न जिसे।
तृष्णा मिटी तो लोभ नही, जब लोभ गया कुछ भी न उसे ॥

२९. जिनवाणी मे अनुरक्त, अरु जिन वचनों पर जो चलते हैं।
निर्मल क्लेष रहित हो वे, सीमित भवसागर हो रहते हैं ॥

(८)

सम्यक्त्व का स्वरूप और फल

१. अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं॥

२. कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे॥

३. जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं।
भावेण सद्दहन्ते, अयाणमाणेवि सम्मत्तं॥

४. सव्वाइं जिणेसर भासिआइं, वयणाइं नन्नहा हुंति।
इअ बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स॥

५. अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं।
तेसिं अवड्ढपुग्गल, परियट्टो चेव संसारो॥

६. गहिऊण य सम्मत्तं, सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ, सावय ! दुक्खक्खयट्ठाए॥

७. ते धण्णा सुकयत्था, ते सूरा तेवि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं॥

८. किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा एगकाले।
सिज्झिहहि जे भविया, तं जाणह सम्मत्त माहप्पं॥

(९)

सामायिक का स्वरूप एवं फल

१ जस्स समाहिओ अप्पा, संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ।।

२. जो समो सव्व भएसु, तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ।।

३. मण-वय-तणुहिं करणे, कारवणम्मि य सपावजोगाणं ।
जं खलु पच्चक्खाणं, तं सामाइयं मुहुत्ताईं ।।

४. सामाइयम्मि उ कए, समणो व्व सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ।।

५. जीवो पमायबहुलो, बहुसो वि य बहुविहेसु अत्थेसु ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइय कुज्जा ।।

६. दिवसे दिवसे लक्ख, देइ सुवण्णस्स खंडिय एगो ।
एगो पुण सामाइय, करेइ ण पहुप्पए तस्स ।।

७. सामाइयं कुणन्तो समभाव, सावओ य घडियदुग ।
आउं सुरेसु बंधइ, इत्तियमित्ताइ पलियाइ ।।

८. बाणवई कोडीओ लक्खा गुणसट्ठि सहस्स पणवीस।
णवसय पणवीसाए, सतिहा अडभागपलियस्स[1] जुयलं॥

९. तिव्वतम तवमाणो, जं न वि निट्ठवइ जम्मकोडीहिं।
तं समभावियचित्तो, खवेइ कम्मं खणद्धेणं॥

१०. जे के वि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति।
ते सव्वे सामाइयमाहप्पेण भणेयव्वं॥

(१०)

सिद्ध एवं वीर-वन्दना

१. सिद्धाणं – बुद्धाणं, पारगयाणं परंपारगयाणं।
लोगग्गमुवगयाणं, नमो सया सव्व-सिद्धाणं॥

२. जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजली नमंसंति।
त देव देव-महियं, सिरसा वन्दे महावीरं॥

३. इक्को वि णमोक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स।
ससार – सागराओ, तारेई नर व नारिं वा॥

---

१. विशुद्ध भाव से एक सामायिक करने वाला व्यक्ति एक पल्योपम के ८ भागों मे से तीन भाग सहित ९२, ५९, २५, ९२५ पल्योपम के देवायुष्य का बन्ध करता है।

संस्कृत

(१)

मंगल–पाठ

१. अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिन कुर्वन्तु वो मगलम् ॥

२. वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर वुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्त्तिकान्तिनिचयो, भो वीर ! भद्रं दिश ॥

३. ब्राह्मी चन्दनवालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता, सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरि दिनमुखे कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥

४. मंगलं भगवान् वीरो मगलं गौतमप्रभुः।
मंगलं स्थूलिभद्राद्याः जैनधर्मोऽस्तु मगलम् ॥

५. सर्वमंगल-मांगल्यं, सर्वकल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥

६. अर्हन्तो ज्ञान-भाजः सुरवर-महिताः, सिद्धि-सौधस्थ-सिद्धाः।
पंचाचार प्रवीणाः प्रगुण गणधराः पाठकाश्चागमानाम् ॥

लोके लोकेश-वन्द्याः, सकल यतिवराः साधु धर्माभिलीनाः ।
पंचाप्येते सदाप्ताः विदधतु कुशल विघ्ननाशं विधाय ।।

७. संसार-दावानल-दाह-नीरं, सम्मोह-धूलीहरणे समीरम् ।
माया-रसा-दारण-सार-सीरं, नमामि वीरं गिरिसार-धीरम् ।।

८. भावावनाम-सुर-दानव मानवेन-,
चूला-विलोल-कमलावलि-मालितानि ।।
सम्पूरिताभिनत-लोक-समीहितानि,
कामं नमामि जिनराज-पदानि तानि ।।

९. तज्जयति परं ज्योतिः, समं समस्तैरनन्त-पर्यायै. ।
दर्पणतल इव सकला, प्रतिफलति पदार्थ-मालिका यत्र ।।

१०. मोक्ष मार्गस्य नेतार, भेत्तार कर्म-भूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व-तत्वानां, वन्दे तद्गुण-लब्धये ।।

११. दिक्-कालाद्यनवच्छिन्नानन्त-चिन्मात्र-मूर्तये ।
स्वानु-भूत्येक-मानाय, नमः शान्ताय तेजसे ।।

१२. अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ।।

१३. नमः श्री वर्द्धमानाय, निर्द्धूत-कलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्-विद्या दर्पणायते ।।

१४. भवबीजांकुर-जनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।

१५. तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्, यावन्निर्वाण-सम्प्राप्तिः ।।

१६. शास्त्राभ्यासो जिन-पतिनुतिः सगतिः सर्वदाऽऽर्यैः ।
सत्साधूनां गुण-गण-कथा, दोष-वादे च मौनम् ।।

१७. शिवमस्तु सर्वजगतः परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।।

१८ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुख भाग् भवेत् ।।

१६. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ।।

२०. अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीड़नम् ।।

२१. विरम विरम संगान्मुंच मुंच प्रपंचम् ।
विसृज विसृज मोह, विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।।
कलय कलय वृत्तं, पश्य पश्य स्वरूपम् ।
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्द - हेतोः ।।

२२. अतुलसुखनिधानं ज्ञानविज्ञानबीजम् ।
विलयगतकलक शान्तविश्वप्रचारम् ।।
गलितसकलशंक विश्वरूपं विशालम् ।
भज विगत-विकारं स्वात्मनात्मानमेव ।।

२३. यदि विषय-पिशाची निर्गता देहगेहात् ।
सपदि यदि विदीर्णो मोहनिद्रातिरेकः ।।
यदि युवतिकरके निर्ममत्वं ते प्रपन्नो ।
झटिति ननु विधेहि ब्रह्मवीथिविहारम् ।।

२४. मूढ जहीहि धनागमतृष्णां, कुरु सद्बुद्धि मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्त, वित्त तेन विनोदय चित्तम् ।।

२५. अर्थमनर्थ भावय नित्य, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः, सर्वत्रैषा विहिता रीतिः ।।

२६ काम क्रोधं लोभ मोह, त्यक्त्वात्मान भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढाः, ते पच्यन्ते नरक निगूढाः ।।

२७. त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णु. व्यर्थ कुप्यसि सर्व-सहिष्णुः ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ।।

२८. नलिनीदलगतसलिल तरल, तद्वज्जीवितमतिशय चपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमान-ग्रस्त, लोक शोकहत च समस्तम् ।।

(२)

श्री जिन-पञ्जर स्तोत्र

(आचार्य श्री कमलप्रभ)

१. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अर्हद्भ्यो नमो नमः
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सिद्धेभ्यो नमो नमः
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं आचार्येभ्यो नमो नमः
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं उपाध्यायेभ्यो नमो नमः
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हंगौतमस्वामिप्रमुखसर्वसाधुभ्यो नमो नमः ।।

२. एष पंच नमस्कारः सर्व – पाप – क्षयंकरः ।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं भवति मंगलम् ।।

३. ॐ ह्रीं श्रीं जये विजये, अर्हं परमात्मने नमः ।
कमलप्रभ-सूरीन्द्रो, भाषते जिनपंजरम् ।।

४. एकभक्तोपवासेन त्रिकालं यः पठेदिदम् ।
मनोभिलषितं सर्वं, फलं स लभते ध्रुवम् ।।

५. भूशय्या – ब्रह्मचर्येण, क्रोध – लोभ – विवर्जितः ।
देवताग्रे पवित्रात्मा, षण्मासैर्लभते फलम् ।।

६. अर्हन्तं स्थापयेन्मूर्ध्नि, सिद्धं चक्षुर्ललाटके ।
आचार्यं श्रोत्रयोर्मध्ये, उपाध्यायं तु नासिके ।।

७. साधुवृन्द मुखस्याग्रे, मनःशुद्धिं विधाय च ।
सूर्य – चन्द्र – निरोधेन, सुधीः सर्वार्थसिद्धये ।।

८. दक्षिणे मदन – द्वेषी, वामपार्श्वे स्थितो जिनः ।
अङ्ग – सन्धिषु सर्वज्ञः, परमेष्ठी शिवंकरः ।।

९. पूर्वाशां च जिनो रक्षेद्, आग्नेयीं विजितेन्द्रियः ।
दक्षिणाशां परं ब्रह्म, नैऋतीं च त्रिकालवित् ।।

१०. पश्चिमाशां जगन्नाथो, वायव्यां परमेश्वरः ।
उत्तरां तीर्थंकृत् सर्वामीशानेऽपि निरञ्जनः ।।

११. पातालं भगवानर्हन्नाकाशं पुरुषोत्तमः ।
रोहिणी – प्रमुखादेव्यो रक्षन्तु सकलं कुलम् ।।

१२. ऋषभो मस्तकं रक्षेद् अजितोऽपि विलोचने।
सम्भवः कर्णयुगलेऽभिनन्दनस्तु नासिके॥

१३. ओष्ठौ श्रीसुमती रक्षेद् दन्तान् पद्मप्रभो विभुः।
जिह्वां सुपार्श्वदेवोऽयं तालु चन्द्रप्रभाऽभिधः॥

१४ कण्ठं श्री सुविधी रक्षेद् हृदयं जिनशीतलः।
श्रेयांसो बाहु युगलं, वासुपूज्यः कर – द्वयम्॥

१५. अंगुलीर्विमलो रक्षेद् अनन्तोऽसौ नखानपि।
श्रीधर्मोऽप्युदरास्थीनि श्री शान्तिर्नाभिमण्डलम्॥

१६. श्री कुन्थुर्गुह्यकं रक्षेद्, अरो लोमकटीतटम्।
मल्लिरुरुपृष्ठमंशं, पिण्डिकां मुनिसुव्रतः॥

१७. पादांगुलीर्नमी रक्षेत्, श्री नेमिश्चरणद्वयम्।
श्री पार्श्वनाथः सर्वांग, वर्धमानं चिदात्मकम्॥

१८. पृथ्वी – जल तेजस्क-वाय्वाकाशमयं जगत्।
रक्षेदशेषपापेभ्यो, वीतरागो निरंजनः॥

१९. राजद्वारे श्मशाने च, संग्रामे शत्रु-संकटे।
व्याघ्र - चौराग्नि - सर्पादि - भूत - प्रेत - भयाश्रिते॥

२०. अकाले मरणे प्राप्ते, दारिद्र्यापत्समाश्रिते।
अपुत्रत्वे महादुःखे, मूर्खत्वे रोग-पीड़िते॥

२१. डाकिनी – शाकिनी – ग्रस्ते, महाग्रह – गणार्दिते।
नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये व्यसने चापदि स्मरेत्॥

२२. प्रातरेव समुत्थाय, यः स्मरेज्जिनपञ्जरम् ।
तस्य किंचिद् भयं नास्ति, लभते सुखसम्पदः ।।

२३. जिनपंजर नामेदं यः स्मरेदनुवासरम् ।
कमल-प्रभसूरीन्द्रश्रियं स लभते नरः ।।

२४. प्रातः समुत्थाय पठेत् कृतज्ञो,
यः स्तोत्रमेतज्जिन–पंजरस्य ।
आसादयेत् सः कमलप्रभाख्यो,
लक्ष्मीं मनोवाञ्छितपूरणाय ।।

२५. श्री रुद्रपल्लीय-वरेण्य-गच्छे,
देव प्रभाचार्य-पदाब्ज-हंसः ।
वादीन्द्र-चूड़ामणिरेष जैनो,
जीयादसौ श्री कमल-प्रभाख्यः ।।

(३)

सोलह सती स्तोत्र

१. आदौ सती सुभद्रा च, पातु पश्चात्तु सुन्दरी,
ततश्चन्दनबाला च, सुलसा च मृगावती ।

२. राजीमती ततश्चूला, दमयन्ती ततः परम्.
पद्मावती शिवा सीता, ब्राह्मी पुनश्च द्रौपदी ।

३. कौशल्या च ततः कुन्ती, प्रभावती सतीवरा,
सतीनामांक – यंत्रोऽयं चतुस्त्रिंशत् समुद्भवः।

४. यस्य पार्श्वे सदा यन्त्रो, वर्तते तस्य साम्प्रतम्,
भूरिनिद्रा न चायाति, नायान्ति भूतप्रेतकाः।

५. ध्वजायां नृपतेर्यस्य, यन्त्रोऽयं वर्तते सदा,
तस्य शत्रुभयं नास्ति संग्रामेऽस्य जयः सदा।

६. गृहद्वारे सदा यस्य यन्त्रोऽयं ध्रियते वरः,
कार्मणादिकतन्त्रैश्च, न स्यात् तस्य पराभवः।

७. स्तोत्रं सतीनां सुगुरुप्रसादात्, कृतं मयोद्योत-मृगाधिपेन,
यः स्तोत्रमेतत् पठति प्रभाते, स प्राप्नुते शं सततं मनुष्यः।

श्री सती–यंत्र

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

(४)

भवपाश–मोचक–स्तोत्र

(गजसिंह राठोड़)

१. तीर्थेश्वरस्य वीरस्य, कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
स्वरूपं बिम्बितं मेऽस्तु, मुक्तिदं हृदि सर्वदा ।।

२. नाथस्त्वमसि मे वीर ! सर्वस्वश्च प्रियोऽसि मे ।
शरणं सर्वभावेन, त्वां प्रपन्नोस्मि पाहि माम् ।।

३. भवाटव्यामटंतं माम्, भयत्रस्तमितस्ततः ।
भवभूरिभराक्रान्तं, त्रायस्व करुणानिधे !

४. उन्मज्जन्तं निमज्जन्तं, भवाम्भोधौ पुनः पुनः ।
निरालम्बावलम्बेश ! पाहि माम् त्राहि पाहि माम् ।।

५. भेदय भवपाशानि, छेदयाशेषसंशयान् ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, प्रभो ! तद्धाम देहि मे ।।

६. जन्म-मृत्यु-जराव्याधीन्, नाशयार्त्तस्य मूलतः ।
ध्रुवां शुभां शिवां सिद्धिं, विभो देहि प्रसीद मे ।।

७. यावत् शुद्धश्च बुद्धश्च, निष्कलंको निरामयः ।
भवामि न विभो तावत्, भक्ति मह्यं प्रदेहि ते ।।

८. तवैवास्तु सदा ध्यानं, हृदि मे निखिलेश्वर !
स्मृतिश्चाव्याहता मेऽस्तु, त्वदीयैव भवे भवे ।।

९. भवे भवे च मे लक्ष्यं, भवानेवास्तु सर्वशः ।
काय॔ ममास्तु प्रत्येकं, तव प्राप्त्यैरहर्निशम् ।।

१०. भवे भवे दिवारात्रं, निश्चलं सुसमाहितम् ।
संपृक्तं वै मनो मेऽस्तु, तीर्थेश ! त्वयि सर्वदा ।।

११. तादात्म्यं शाश्वतं मेऽस्तु, वीरेणाद्वैतरूपकम् ।
द्वैतभावं च वीरे मे, शीघ्रमेव विनश्यतु ।।

१२. सोऽहं सोऽहं ध्रुवं सोऽहं, सोऽहमस्मि न संशयः ।
दुःखमज्ञानजं सर्वं, चिदानन्दोऽहमन्यथा ।।

(५)

श्री वज्रपञ्जर स्तोत्रम्

श्री नमस्कार महामंत्र का विधिपूर्वक जप करने वालों को जप के प्रारंभ में इस स्तोत्र द्वारा मुद्राओं सहित अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये। मुद्राओं को गुरुजनों से सीख लेना चाहिये। आत्मरक्षा पूर्वक जप करने से अनेक लाभ होते हैं।

१. ॐ परमेष्ठि नमस्कारं, सारं नव-पदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र-पञ्जराभं स्मराम्यहम्॥

२. ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितम्।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपटं-वरम्॥

३. ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षाऽतिशायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढम्॥

४. ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयोः शुभे।
एसो पंच णमोक्कारो, शिला-वज्रमयी तले॥

(५)

श्री वज्रपंजर स्तोत्र

१. नवपदरूप जगत् का सारभूत यह परमेष्टि नमस्कार आत्म-रक्षा हेतु वज्र-पंजर के समान है—मैं इसका स्मरण करता हूं।

२. 'ॐ नमो अरिहताणं' यह मंत्र मुकुट रूप मे मस्तक पर स्थित है, ऐसा जानना चाहिये (बोलते समय मस्तक को हाथ से स्पर्श करना चाहिये) 'ॐ नमो सव्वसिद्धाण' यह मत्र मुख पर श्रेष्ठ वस्त्र रूप मे स्थित है–ऐसा जानना चाहिये (बोलते हुये मुख को हाथ से छूना चाहिए)।

३. 'ॐ नमो आयरियाण' मत्र को अतिशायी अगरक्षक रूप मे जानना चाहिये (बोलते हुए शरीर पर हाथ का स्पर्श करना चाहिए) 'ॐ नमो उवज्झायाण' मंत्र को दोनो हाथो मे स्थित मजबूत शस्त्र के रूप मे समझना चाहिये (बोलते हुए दोनो हाथो मे शस्त्र पकडने जैसी चेष्टा करनी चाहिए)।

४. 'ॐ नमो लोएसव्वसाहूण' मंत्र को पदत्राण के रूप मे समझना चाहिये (बोलते हुए दोनो हाथो से पावो को छूना चाहिये)। 'एसो पच णमुक्कारो' मंत्र को पादतल मे स्थित वज्र की शिला समझना चाहिए (बोलते हुए आसन को हाथ से स्पर्श करके मन मे विचार करना चाहिये कि मैं वज्र शिला पर बैठा हू—अत भूमि अथवा पाताल-लोक से मुझे कुछ भी विघ्न नही हो सकता)।

५. सव्व पावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो वहिः ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिराङ्गार खातिका ।।

६. स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढ़मं हवइ मंगलं ।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे ।।

७. महाप्रभावा – रक्षयं, क्षुद्रोपद्रव – नाशिनी ।
परमेष्टिपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः ।।

८. यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्टि-पदैः सदा ।
तस्य न स्याद् भयंव्याधि - राधिश्चापि कदाचन ।।

५ 'सव्व पावप्पणासणो' मत्र को चतुर्दिश स्थित वज्रमय दुर्ग जानना चाहिए (बोलते हुए यह विचार करना चाहिये कि मेरे चारो ओर वज्र का कोट है। दोनो हाथो से चारो ओर कोट की कल्पना करते हुए अगुली फिरानी चाहिये)। 'मगलाण च सव्वेसि' मत्र को खैर की लकडी के अगारो की खाई के समान समझना चाहिये (बोलते हुए विचार करना चाहिये कि वज्र-कोट के बाहर चारो ओर खाई है,जिसमे अगारे भरे है)।

६. 'पढम हवइ मगल' मत्र को दुर्ग के वज्रमय किवाड समझने चाहिये (बोलते हुए विचार करना चाहिये कि वज्रमय कोट पर आत्म-रक्षा हेतु वज्रमय ढक्कन है, इस पद के अन्त मे 'स्वाहा' मत्र को भी जोड लेना चाहिये)।

७. परमेष्टि पदो से प्रकट हुई महाप्रभावशाली यह रक्षा सब उपद्रवो का नाश करने वाली है, ऐसा पूर्वाचार्यो ने कहा है।

८ जो व्यक्ति इन परमेष्टि पदो द्वारा निरन्तर आत्म-रक्षा करता है, उसे किसी भी प्रकार का भय, शारीरिक व्याधि और मानसिक पीडा कभी भी नही होती—यह मत्र सभी उपद्रवो का निवारण करने वाला है।

—:o:—

समय कम है। गन्तव्य दूर है। रास्ता लम्बा है। विघ्न-बाधाओ से भरा हुआ। मन सकल्प-विकल्पो मे उलझा हुआ। मात्र श्री पच-परमेष्ठी नमस्कार का भक्ति-भाव एव निष्ठापूर्वक निरन्तर जाप ही मन पर विजय प्राप्त कराएगा। कम समय को सार्थक करेगा। गन्तव्य तक ले जाएगा। लम्बे मार्ग को छोटा बनाएगा। सब विघ्न-बाधाओ को दूर करेगा।

(६)

श्री भक्तामर स्तोत्र

१. भक्तामर - प्रणत - मौलिमणि - प्रभाणा—
मुद्योतकं दलित - पापतमो वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा—
वालंबनं भवजले, पततां जनानाम् ॥

२. यः संस्तुतः सकल-वाङ्मयतत्त्वबोधा—
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोक - नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त - हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि, त प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥

३. बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थित - मिन्दुबिम्ब—
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥

४ वक्तु गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।

(६)

भक्तामर स्तोत्र

॥ दोहा ॥

आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धर्म धुरन्धर परम गुरु, नमो आदि अवतार ॥

॥ चौपाई ॥

१. सुर नत मुकुट रतन छवि करें,
अन्तर पाप तिमिर सब हरैं ।
जिन पद वन्दो मन वच काय,
भव जल पतित उधारन सहाय ॥

२. श्रुति पारग इन्द्रादिक देव,
जाकी स्तुति कीनी कर सेव ।
शब्द मनोहर अर्थ विशाल,
तिस प्रभु की वरनो गुणमाल ॥

३. विबुध वद्य पद मैं मति हीन,
होय निलज्ज स्तुति मनसा कीन ।
जल प्रतिविम्ब बुद्ध को गहै ?
शशि मण्डल बालक ही चहै ॥

४. गुण समुद्र ! तुम गुण अविकार,
कहत न सुरगुरु पावे पार ।

कल्पान्तकालपवनोद्धत – नक्र – चक्रं,
को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

५. सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥

६. अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारु – कलिकानिकरैकहेतुः ॥

७. त्वत्संस्तवेन भवसंतति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त - लोकमलिनील - मशेष - माशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव – शार्वरमंधकारम् ॥

८. मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफल – द्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥

९. आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त – दोष,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।

प्रलय पवन उद्धत जलजन्तु,
जलधि तिरै को भुज बलवन्तु ॥

५ सो मैं शक्ति हीन स्तुति करूं,
भक्ति भाव वश कछु नहिं डरूं ।
ज्यो मृग निज सुत रक्षण हेत,
मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥

६. मैं शठ सुधी हसन को धाम,
मुझ तव भक्ति बुलावे राम ।
ज्यो पिक अम्ब कली प्रभाव,
मधु ऋतु मधुर करे आराव ॥

७. तुम जस जंपत जिन छिन माहिं,
जन्म जन्म के पाप नसाहिं ।
ज्यो रवि उदय फटे तत्काल,
अलि-वत् नील निशा-तम जाल ॥

८. तुम प्रभावतै करहुं विचार,
होसी यह स्तुति जन मन हार ।
ज्यो जल कमल पत्र पै परै,
मुक्ताफल की द्युति विस्तरै ॥

९. तुम गुण महिमा हरत दुख दोष,
सो तो दूर रहो सुख पोष ।

दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥

१०. नात्यद्भुतं भुवनभूषण – भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः ।
तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥

११. दृष्ट्वा भवंतमनिमेश ! विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति – दुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥

१२. यः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक – ललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥

१३. वक्त्रं क्व ते सुरनरारगनेत्रहारि,
निश्शेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम् ।
विम्बं कलंक - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम् ॥

१४. सम्पूर्णमंडल – शशांक – कलाकलाप–
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयंति ।

पाप विनाशक है तुम नाम,
कमल विनाशी ज्यो रविधाम ।।

१०. नहिं अचंभ जो होहिं तुरन्त,
तुमसे तुम गुण वरणत संत ।
जो अधीन को आप समान,
करै न सो निंदित धनवान ।:

११. इक टक जन तुमको अवलोय,
और विषै रति करे न सोय ।
जो कीन्है खीर जलधि जलपान,
सो क्यो खार नीर पीवै मतिमान ।।

१२. प्रभु तुम वीतराग गुण लीन,
जिन परमाणु देह तुम कीन ।
हैं इतने ही ते परमाणु,
यातै तुम सम रूप न औरु ।।

१३. कहां तुम मुख अनुपम अविकार,
सुर नर नाग नयन मनहार ।
कहा चन्द्र मण्डल सकलंक,
दिन मे ढाकपत्र–सम रक ।।

१४. पूरन चन्द्र जोति छविवत,
तुम गुण तीन जगत लघत ।

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।

१५. चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि–
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलित कदाचित् ?

१६. निर्धूमवर्त्तिरपवर्जित — तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ।।

१७. नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति ।
नाम्भोधरोदर – निरुद्ध – महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ।।

१८. नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाँकबिम्बम् ।।

१९. किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु – दलितेषु तमस्सु नाथ !

एक नाथ त्रिभुवन आधार,
तिन विचरत को सके निवार ।।

१५. जो सुरतिय विभ्रम आरम्भ,
मन न डिग्यो तुम ता न अचभ ।
अचल चलावैं प्रलय समीर,
मेरु शिखर डगमगे न धीर ।।

१६. धूमरहित बाती गत-नेह,
प्रकाशैं त्रिभुवन घर येह ।
वातगम्य नाहि परचड,
अपर दीप तुम जलो अखड ।।

१७. छिपहु न लुपहुं राहु की छांहि,
जग प्रकाशक हो छिन माहि ।
घन अनवर्त्त दाह विनिवार,
रवि तैं अधिक धरौ गुणसार ।।

१८. सदा उदित विदलित-तम मोह,
विघटित मेघ राहु अवरोह ।
तुम मुख कमल अपूर्व चन्द,
जगत विकाशी जोति अमन्द ।।

१९. निशदिन शशि रवि को नही काम,
तुम मुख चंद हरै तम धाम ।

निष्पन्नशालिवनशालिनि जीव – लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभार – नम्रैः ?

२०. ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥

२१. मन्ये वरं हरिहरादय एव - दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥

२२. स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

२३. त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पंथाः ॥

२४. त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वर – मनन्तमनंगकेतुम् ।

जो स्वभावतै उपजै नाज,
सजल मेघ तै कौनहु काज ॥

२०. जो सुबोध सोहे तुम मांही,
हरि हर आदिक मे सो नाहि ।
जो दुति महारतन मे होय,
कांच खण्ड पावै नहि सोय ॥

(नाराच छंद)

२१. सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ।
कछु न तोहि देख के जहां तुही विसेखिया,
मनोग चित्तचोर और भूल हू न देखिया ॥

२२. अनेक पुत्रवन्तिनी नितविनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और माततें प्रसूत हैं ।
दिशा धरन्त तारिका अनेक कोटि को गिनै,
दिनेश तेजवन्त एक पूर्व ही दिशा जनै ॥

२३. पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो,
कहैं मुनीश अन्धकार नाश को सुभान हो ।
महन्त तोहि जानिके न होय वश्य कालके,
न और मोहि मोख पंथ देव तोहि टालके ॥

२४. अनन्त नित्य चित्तके अगम्य रम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ।

योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥

२५. बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय - शंकरत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

२६. तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय,
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय ।
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि - शोषणाय ॥

२७. को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वंसंश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्तविविधाश्रय — जातगर्वैः,
स्वप्नांतरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥

२८. उच्चैरशोक — तरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
बिंबं रवेरिव पयोधर - पार्श्ववर्ति ॥

२९. सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।

महेश कामकेतु जोग-ईश जोग ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञान रूप शुद्ध संतमान हो ।।

२५. तूंही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमाणतैं,
तूंही जिनेश शंकरो जगत्त्रयैं विधानतैं ।
तूंही विधाता है सही सुमोख पंथ धारतैं,
नरोत्तमो तूंही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं ।।

२६. नमन करूँ जिनेश ! तोहि आपदा निवार हो,
नमन करूँ सुभूरि भूमि लोक के शृंगार हो ।
नमन करूँ भवाब्धि नीर राशि शोष हेतु हो,
नमन करूँ महेश तोहि मोख पथ देतु हो ।।

(चौपाई)

२७. तुम जिन पूरण गुण गण भरे,
दोष गर्व करि तुम परिहरे ।
और देवगण आश्रय पाय,
सुपन न देखे तुम फिर आय ।।

२८. तरु अशोक तर किरण उदार,
तुम तनु शोभित है अविकार ।
मेघ निकट ज्यो तेज फुरन्त,
दिनकर दिपैं तिमिर हरन्त ।।

२९. सिंहासन मणि किरण विचित्र,
तापर कंचन वर्ण पवित्र ।

बिंबं वियद्विलसदंशुलता - वितानं,
तुंगोदयाद्रि - शिरसीव सहस्ररश्मेः ॥

३०. कुंदावदात - चलचामर - चारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम् ।
उद्यच्छशांक - शुचिनिर्झर - वारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥

३१. छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकर - प्रतापम् ।
मुक्ताफल - प्रकरजाल - विवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥

३२. गंभीर - तार - रवपूरित - दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसंगम - भूतिदक्षः ।
सद्धर्मराज - जयघोषण - घोषकः सन्,
खे दुंदुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥

३३. मंदार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
संतानकादिकुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा ।
गंधोदबिंदु - शुभमंद - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥

३४. शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रय - द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।

तुम तनु शोभित किरण विथार,
ज्यों उदयाचल रवि तमहार ॥

३०. कुन्द पुहुपसित चमर ढरन्त,
कनक वर्ण तुम तनु शोभंत।
ज्यों सुमेरु तट निर्मल कान्ति,
झरना झरैं नीर उमगांति ॥

३१. ऊँचे रहें सुर-दुति लोप,
तीन छत्र तुम दीपैं अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहैं,
मोती झालर सों छवि लहैं ॥

३२. दुन्दुभि शब्द गहर गभीर,
चहुं दिश होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन जन शिव संगम करैं,
मानों जय जय रव उच्चरैं ॥

३३. मन्द पवन गन्धोदक इष्ट,
विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट।
देव करैं विकसित दल सार,
मानों द्विज पंकति अवतार ॥

३४. तुम तन-भामंडल जिन चन्द,
सब दुति वन्त करत है मन्द।

प्रोद्यद् – दिवाकर – निरंतर भूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ।।

३५. स्वर्गापवर्गगममार्गं — विमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्त्वकथनैक — पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व–
भाषास्वभाव – परिणामगुणैः प्रयोज्यः ।।

३६. उन्निद्रहेम – नवपंकज – पुंजकांती–
पर्युल्लसन्नख – मयूख - शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।

३७. इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ।।

३८. श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल —
मत्त - भ्रमद् भ्रमरनाद - विवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत — मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।

कोटि शंख रवि तेज छिपाय,
शशि निर्मल निशि करे अछाय ॥

३५. स्वर्ग मोक्ष मार्ग सकेत,
परम धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध,
सब भाषा गर्भित हित साध ॥

(दोहा)

३६. विकसित सुवरन कमल दुति, नख दुति मिल चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहँ धरैं, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥

३७. ऐसी महिमा तुम सिवाय, और धरैं नहि कोय।
सूरज मे जो जोति है, नहि तारागण मे होय ॥

(छप्पय)

३८. मद अवलिप्त कपोल मूल अलिकुल झंकारै,
तिन सुनि शब्द प्रचण्ड, क्रोध उद्धत अति धारै।
काल वरन विकराल, काल वत् सनमुख आवै,
ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावे।
देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन,
विपत्तिरहित सम्पत्ति सहित, वरतै भक्त अधीन ॥

३९. भिन्नेभ-कुम्भ - गजदुज्ज्वल - शोणिताक्त–
मुक्ताफलप्रकर - भूषित - भूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ।।

४०. कल्पांतकाल - पवनोद्धत - वह्निकल्पं,
दावानल ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।

४१. रक्तेक्षणं समदकोकिल - कंठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक–
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ।।

४२. वल्गत्तुरंग - गजगर्जित - भीमनाद–
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूख शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु–भिदामुपैति ।।

३९ अति मद मत्त गयंद, कुम्भथल नखन विदारै,
मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै।
बाकी दाढ़ विशाल– वदन मे रसना लोलै,
भीम भयकर रूप देखि, जन थर हर डोलै।
ऐसे मृगपति पग तले, जो नर आयो होय,
शरण गहे तुम चरन की, बाधा करै न सोय।

४०. प्रलय पवन कर उठी, आग जो तास पटंतर,
बमैं फुलिग शिखा उतग, पर जलै निरन्तर।
जगत समस्त निगल्ल, भस्म करदेगी मानों,
तडतडाट दव–अनल, जोर चहुं दिशा उठानो।
सो इक छिनमे उपशमैं, नाम–नीर तुम लेत,
होय सरोवर परिनमैं, विकसित कमल समेत ॥

४१. कोकिल कठ समान, श्याम तन क्रोध जलता,
रक्तनयन फुङ्कार, मार विषकण उगलता।
फण को ऊँचा करै, वेग ही सन्मुख धाया,
तब जन होय निशक, देख फणपति को आया।
जो चापै निज पावतै, व्यापै विष न लगार,
नाग दमन तुम नामकी, है जिनके आधार ॥

४२. जिस रण माहिं भयानक, शब्द कर रहे तुरगम,
घन सम गज गरजहिं, मत्त मानो गिरिजगम।
अति कोलाहल माहि, बात जहँ नाहिं सुनीजै,
राजन को प्रचण्ड देख, बल धीरज छीजै।
नाथ तिहारे नामतै, सो छिन माहिं पलाय,
ज्यों दिनकर प्रकाशतै, अन्धकार विनशाय ॥

४३. कुन्ताग्रभिन्नगज - शोणित - वारिवाह–
वेगावतार - तरणातुरयोध - भीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा–
स्त्वत्पाद – पंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ।।

४४. अम्भोनिधौ क्षुभित – भीषण – नक्रचक्र–
पाठीन – पीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रंगत्तरङ्ग - शिखरस्थित - यानपात्रा–
स्त्रास विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।।

४५. उद्भूतभीषणजलोदर – भारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत – जीविताशाः ।
त्वत्पाद – पंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा–
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ।।

४६. आपाद - कंठ - मुरुश्रृंखलवेष्टितांगा–
गाढं बृहन्निगडकोटि - निघृष्टजंघाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवन्ति ।।

४३. मारे जहाँ गयंद, कुम्भ हथियार विदारे,
उमगे रुधिर-प्रवाह, वेग जल से विस्तारे।
होय तिरन असमर्थ-महा योद्धा वल पूरे,
तिस रण मे जिन तोय भक्त-जे है नर सूरे।
दुर्जय अरि कुल जीतके, जय पावै निकलक,
तुम पद पकज मन बसै, ते नर सदा निशंक ॥

४४. नक्र चक्र मगरादि-मच्छ करि भय उपजावै,
जामे बड़वा अग्नि, दाहतै नीर जलावै।
पार न पावै जासु, थाह नहिं लहिये जाकी,
गरजै अति गभीर, लहर की गिनति न ताकी।
सुख सो तिरै समुद्र को, जे तुम गुण सुमराहिं,
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं ॥

४५. महा जलोदर-रोग, भार पीडित नर जे हैं,
वात पित्त कफ कुष्ठ, आदि जे रोग गहै हैं।
सोचत रहैं उदास, नाहि जीवन की आशा,
अति घिनावनी देह, धरै दुर्गन्ध निवासा।
तुम पद पंकज धूल को, जो लावै निज अग,
ते नीरोग शरीर लही, छिन मे होंहि अनग ॥

४६. पांव कठते जकरि, बाँध साँकल अति भारी,
गाढी वेडी पैरमाही, जिन जाघ विदारी।
भूख प्यास चिंता शरीर, दुःख से विलबिलाने,
शरण नाहि जिन कोय, भूप के बन्दीखाने।
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहि,
छिन मे ते सम्पत्ति लहै, चिन्ता भय विनसाहि ॥

४७. मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
सग्राम - वारिधि - महोदर - बंधनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥

४८. स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मयारुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥

—:०:—

(७)

श्री कल्याण-मन्दिर स्तोत्र

[आचार्य श्री सिद्धसेन]

१. कल्याण मन्दिरमुदारमवद्य - भेदि,
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रि - पद्मम् ।
संसार—सागर - निमज्जदशेष - जन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥

४७. महामत्त गजराज, और मृगराज दावानल,
फणपति रण प्रचड, नीर निधि रोग महाबल।
बन्धन के ये भय आठ, डरकर मानों नाशै,
तुम सुमरत छिनमांही, अभय थानक परकाशै।
इस अपार ससार मे, शरण नाहि प्रभु कोय,
यातै तुम पद भक्त को, भक्ति सहाई होय।।

४८. यह गुण माल विशाल, नाथ ! तुम गुणन सवारी,
विविध वर्णमय पुष्प, गू थि मैं भक्ति विथारी।
जे नर पहरै कठ, भावना मन में भावैं,
मान तु ग ते निजाधीन, शिव लक्ष्मी पावै।
भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत,
जे नर पढ़ै सुभावसौ, ते पावै शिव खेत।।

(७)

कल्याण-मन्दिर स्तोत्र

(दोहा)

परम ज्योति परमात्मा, परम ज्ञान-परवीन।
वन्दू परमानन्दमय, घटघट अन्तर लीन।।

(चौपाई १५ मात्रा)

१. निर्भय-करन परम परधान।
भवसमुद्र-जल तारन यान।।
शिवमन्दिर अघ हरत अनिंद।
वन्दहूं पास-चरन अरविंद।।

२. यस्य स्वयं सुर – गुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर् न विभुर् विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय – धूमकेतोस्–
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।

३. सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप–
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मेः ?

४. मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्–
मीयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशिः ?

५. अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य – गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ?

६. ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित – कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ।।

२. कमठ-मान-भजन वर वीर।
गरिमा-सागर गुन-गभीर ।।
सुर-गुरु पार लहै नहिं जास।
मै अजान जपूं जस तास ।।

३. प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह।
क्यो हम सेती होय निवाह ।।
ज्यो दिन अन्ध उल्लू को पोत।
कहि न सकै रविकिरन-उद्योत ।।

४. मोह-हीन जाने मन माहि।
तौहु न तुम गुन वरने जाहिं ।।
प्रलय पयोधि करै जल बौन।
प्रगटहिं रतन गिने तिहिं कौन ।।

५. तुम असख्य निर्मल गुणखान।
मै मतिहीन कहू निज वान ।।
ज्यो बालक निज बांह पसार।
सागर परिमित कहै विचार ।।

६. जे जोगीन्दर करहिं तप खेद।
तऊ न जानहिं तुम गुन-भेद ।।
भक्ति-भाव मुझ मन अभिलाख।
ज्यो पछी बोलै निज भाख ।।

७. आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत – पान्थजनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ।।

८. हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तो क्षणेन निविड़ा अपि कर्म–बन्धाः ।
सद्यो भुजंगममया इव मध्यभाग—
मभ्यागते वनशिखंडिनि चन्दनस्य ।।

९. मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रै रुपद्रवशतैस् त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो–स्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानः ।।

१०. त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ।।

११. यस्मिन् हर-प्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ?

७. तुम जस महिमा अगम अपार।
नाम एक त्रिभुवन-आधार।।
आवै पवन पद्मसर होय।
ग्रीषम-तपन निवारै सोय।।

८. तुम आवत भविजन-घटमांहि।
कर्म-निबंध शिथिल ह्वै जाहिं।।
ज्यो चन्दनतरु बोलहिं मोर।
डरहिं भुजंग लगे चहु ओर।।

९. तुम निरखत जन दीनदयाल।
सकट तैं छूटैं तत्काल।।
ज्यो पशु घेर लेहिं निशि चोर।
ते तज भागहिं देखत भोर।।

१०. तुम भविजन-तारक किमि होंहि।
ते चितधार तिरहिं ले तोहिं।।
यह ऐसे कर जान स्वभाव।
तिरहिं मसक ज्यों गर्भित बाव।।

११. जिहँ सब देख किये वश वाम।
तैं छिन में जीत्यों सो काम।
ज्यों जल करे अगनिकुल-हान।
बडवानल पीवै सो पान।।

१२. स्वामिन्ननल्प – गरिमाणमपि प्रपन्नास्,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ?
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ।।

१३. क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ?
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ?

१४. त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज – कोशदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य संभवि पदं ननु कर्णिकायाः ।।

१५. ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ।।

१६. अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ?
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ।।

१२. तुम अनन्त गिरवा गुण लिये ।
क्यो कर भक्ति धरौ निज हिये ।।
ह्वै लगि रूप तिरहि ससार ।
यह प्रभु-महिमा अगम अपार ।।

१३. क्रोध-निवार कियो मन शात ।
कर्म-सुभट जीते किहि भात ।।
यह पटंतर देखहु संसार ।
नील बिरछ ज्यौ दहै तुसार ।।

१४. मुनिजन हिये कमल निज टोहि ।
सिद्ध रूप-सम ध्यावहिं तोहि ।।
कमलकरणिका विन नहिं और ।
कमलबीज उपजन की ठौर ।।

१५. जब तुम ध्यान धरै मुनि कोय ।
तब विदेह परमातम होय ।।
जसे धातु शिलातनु त्याग ।
कनकस्वरूप भयो तपि आग ।।

१६. जाके मन तुम करहु निवास ।
विनसि जाय क्यो विग्रह तास ।।
ज्यों महन्त बिच आवे कोय ।
विग्रह-मूल निवारै सोय ।।

१७. आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या,
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ?

१८. त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ।
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो,
नो गृह्यते विविध – वर्णविपर्ययेण ?

१९. धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा—
दास्तां जनो, भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ?

२० चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव,
विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ?
त्वद्-गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ।।

२१. स्थाने गभीरहृदयोदधि – सम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसम्मदसंगभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ।।

१७. करहिं विबुध जे आतमध्यान ।
तुम प्रभाव तै होय निदान ।।
जैसे नीर सुधा अनुमान ।
पीवत विष विकार की हान ।।

१८. तुम भगवन्त विमल गुणलीन ।
समल रूप मानहिं मतिहीन ।।
ज्यों पीलिया रोग दृग गहै ।
वर्ण विवर्ण शंख सो कहै ।।

(दोहा)

१९ निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भयो अशोक ।
ज्यो रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ।।

२० सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेठ वीट मुख सोहि ।
त्यो तुम सेवत सुवन जन, बन्ध अधोमुख होहि ।।

२१. उपजी तुम हिय-उदधितें, वानी सुधा - समान ।
जिह पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपद थान ।।

२२. स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि – पुंगवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्ध – भावाः ।।

२३. श्यामं गभीर – गिरमुज्ज्वलहेमरत्न–
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैश्–
चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ।।

२४. उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर् बभूव !
सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ?

२५. भो भो ! प्रमादमवधूय भजध्वमेन–
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ।।

२६. उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ताकलाप – कलितोल्लसितातपत्र–
व्याजात् त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ।।

२२. कहहिं सार तिहु लोक को, ये सुर - चामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमैं, तिहुँ गति ऊरध होय ।।

२३. सिंहासन गिरि मेरु-सम, प्रभु-धुनि गर्जन घोर ।
श्यामसुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ।।

२४. छविहत होत अशोक दल, तुम - भामण्डल देख ।
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विसेख ।।

२५. सीख कहै तिहुँ लोक को, यह सुर-दुन्दुभि-नाद ।
शिव-पथ सारथवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ।।

२६. तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्ता-गण छवि देत ।
त्रिविध रूप धर मनु शशि, सेवत नखत समेत ।

२७. स्वेन प्रपूरित – जगत्त्रय – पिण्डितेन,
कान्ति – प्रताप – यशसामिव संचयेन।
माणिक्य – हेम – रजतप्रविनिर्मितेन,
साल–त्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥

२८. दिव्यस्त्रजो जिन ! नमत्–त्रिदशाधिपाना–
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव॥

२९. त्वं नाथ ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि,
यत् तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव – निपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाकशून्यः॥

३०. विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ! दुर्गतस्त्वं,
किं वाऽक्षर - प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतु॥

३१. प्राग्भार-संभृत-नभांसि रजांसि रोषा–
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायाऽपि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा॥

(पद्धरि छन्द)

२७. प्रभु ! तुम शरीर-दुति रतन-जेम ।
परताप-पुंज जिम शुद्ध हेम ॥
अति धवल सुजस रूपा-समान ।
तिनके गढ़ तीन विराजमान ॥

२८. सेवहिं सुरेन्द्र कर नमत भाल ।
तिन सीस-मुकुट तज देहि माल ॥
तुम चरण लगत लहलहै प्रीति ।
नहिं रमहि और जन सुमन-रीति ॥

२९. प्रभु भोग-विमुख तन कर्मदाह ।
जन पार करत भव-जल निवाह ॥
ज्यों माटी-कलश सुपक्क होय ।
ले भार अधोमुख तिरहि तोय ॥

३०. तुम महाराज ! निर्धन निराश ।
तज विभव-विभव सब जग-विकाश ॥
अक्षर स्वभाव सुलिखे न कोय ।
महिमा भगवन्त अनन्त सोय ॥

३१. कर कोप कमठ निज वैर देख ।
तिन करी धूलि बरषा विसेख ॥
प्रभु ! तुम छाया नहिं भई हीन ।
सो भयो आप लंपट मलीन ॥

३२. यद्गर्जदूर्जित - घनौघमदभ्र - भीमं,
भ्रश्यत् - तडिन्मुसलमांसल - घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ।।

३३. ध्वस्तोर्ध्वकेश - विकृताकृति - मर्त्यमुण्ड–
प्रालम्बभृद् - भयद् - वक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याऽभवत् प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ।।

३४. धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत् - पुलक - पक्ष्मल - देहदेशाः,
पाद-द्वय तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ।।

३५. अस्मिन्नपार - भववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवण - गोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ?

३६. जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव !
मन्ये मया महितमीहितदान - दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ।।

३२. गरजत घोर घन अन्धकार।
चमकंत विज्जु जल मूसलधार॥
बरसंत कमठ धर ध्यान रुद्र।
दुस्तर करत निज भव-समुद्र॥

(वास्तु छन्द)

३३. मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि,
भेजे तुरन्त पिशाचगण नाथ पास उपसर्ग-कारण;
अग्नि-झाल झलकत मुख, धुनि करत जिमि मत्तवारण!
कालरूप विकराल तन, मुण्डमाल तिहँ कठ।
ह्वै निशक वह रक निज, करै कर्म दृढ गठ॥

(चौपाई १५ मात्रा)

३४. जे तुम चरणकमल तिहुँ काल।
सेवहि तज माया जजाल॥
भाव भगति मन हरष अपार।
धन्य धन्य तिन जग अवतार॥

३५. भवसागर मे फिरत अजान।
मैं तुझ सुजस सुन्यो नहिं कान॥
जो प्रभु नाम-मन्त्र मन धरै।
तासो विपत-भुजगम डरै॥

३६. मनवाछित फल जिन-पद माहि।
मैं पूरब भव सेये नाहि॥
माया-मगन फिर्यो अज्ञान।
करहि रंक जन मुझ अपमान॥

३७. नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्ध - गतयः कथमन्यथैते ॥

३८. आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥

३९. त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय,
दुःखांकुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥

४०. निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादितरिपु - प्रथितावदातम् ।
त्वत्पाद - पंकजमपि प्रणिधानवन्ध्यो,
वध्योऽस्मि चेद् भुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ॥

४१. देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तुसार !
संसार-तारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः ॥

३७. मोह-तिमिर छायो द्दग मोहि।
जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि ।।
तो दुर्जन मुझ सगति गहै।
मर्म छेद के कुवचन कहैं ।।

३८. सुन्यो कान जस पूजे पाय।
नैनन देख्यो रूप अघाय।
भक्तिहेतु न भयो चित चाव।
दुख-दायक किरिया बिन भाव ।।

३९. महाराज ! शरणागत पाल।
पतित उधारन दीन-दयाल ।।
सुमरन करहुँ नमाय निज शीश।
मुझ दुख दूर करहु जगदीश !

४०. कर्म-निकन्दन महिमा सार।
अशरण शरण सुजस विस्तार ।।
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय।
तो मुझ जन्म अकारथ जाय ।।

४१. सुर-गण-वन्दित दयानिधान।
जग-तारण जगपति जग-जान ।।
दुख-सागर तैं मोहि निकासि।
निर्भय थान देहु सुखरासि ।।

४२. यद्यस्ति नाथ ! भवदंघ्रिसरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-संचितायाः ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥

४३. इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलककंचुकितांगभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्या,
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥

४४. जननयनकुमुदचन्द्र !
प्रभास्वराः स्वर्ग - सम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया,
अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥

—:०:—

नमस्कार महा-मन्त्र कहता है—

"तुम सब तुम्हारे 'अहं' को मुझ पर भेंट चढ़ा दो—मैं तुम्हें 'अर्हं' बना दूंगा ।

४२. मैं तुम-चरणकमल गुन गाय।
बहुविधि भक्ति करी मन लाय॥
जन्म जन्म प्रभु पाऊँ तोहि।
यह सेवा-फल दीजै मोहि॥

(दोधकांत बेसरी छन्द)

४३. इहि विधि श्री भगवन्त,
सुजस जे भविजन भाषहिं।
ते जन पुण्य – भण्डार,
संचि चिर पाप प्रणासहिं॥

४४. रोम रोम हुलसत अंग,
प्रभु – गुण मन ध्यावहिं।
स्वर्ग – सम्पदा भोगि वेग,
पंचम – गति पावहिं॥

यह कल्याणमन्दिर कियो,
कुमुदचन्द्र की बुद्धि।
भाषा कहत 'बनारसी',
कारण समकित शुद्धि॥

(८)

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र

(शार्दूल विक्रीड़ित छन्द)

१. किं कर्पूरमयं सुधारसमयं, किं चन्द्ररोचिर्मयं,
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारुण्यकेलीमयम्।
विश्वानन्दमयं महोदयमयं शोभामयं चिन्मयं,
शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपतेर्भूयाद्भवालम्बनम्॥

२. पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाशमापूरयन्,
दिक्चक्रं क्रमयन् सुरासुरनरश्रेणिं च विस्मापयन्।
ब्रह्माण्डं सुखयन् जलानि जलधेः फेनच्छलाल्लोलयन्,
श्रीचिन्तामणि-पार्श्वसंभवयशो हंसश्चिरं राजते॥

३. पुण्यानां विपणिस्तमोदिनमणिः कामेभ कुम्भे सृणिः,
मोक्षे निस्सरणिः सुरद्रुकरिणि ज्योतिः प्रकाशारणिः।
दाने देवमणिर्नतोत्तमजनश्रेणिः कृपा सारिणिः,
विश्वानन्दसुधाघृणिर्भवभिदे श्रीपार्श्वचिन्तामणिः॥

४. श्री चिंतामणि पार्श्वविश्वजनतासंजीवनस्त्वं मया,
दृष्टस्तात ! ततः श्रियः समभवन्नाशक्रमाचक्रिणम्।
मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर्बहुविधं सिद्धं मनोवांछितं,
दुर्दैवं दुरितं च दुर्दिनभयं कष्टं प्रणष्टं मम॥

(८)

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र

१. जिन का शरीर अहा ! कर्पूर जैसा श्वेत, अमृत जैसा मिष्ट, चन्द्र की कान्ति जैसा शीतल और प्रकाशित, सुन्दर मोटी मणि जैसा तेजस्वी, करुणा की भूमिका रूप, समग्र विश्व को आनन्दमय, महा उदय वाला, शोभावाला, सचित स्वरूप, शुक्ल ध्यान मे निमग्न है ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान् संसार के आधार रूप हो ।

२. पाताल में प्रवेश किय हुए भी, पृथ्वी को उज्वल करता हुआ, आकाश में सर्वत्र व्याप्त, दिशाओ के चक्र को उल्लघित करता हुआ, देव दानवो को विस्मित करता हुआ, तीनो जगत को सुख देता हुआ, समुद्र मे श्वेत फेन के बहाने शोभायमान होकर जल को कम्पित करता हुआ श्री पार्श्वनाथ चिन्तामणि का यश रूपी हंस चिरकाल तक शोभित रहे ।

३. पुण्य का हाट (भण्डार) रूप, पाप रूपी अधकार मे सूर्यरूप, विषयरूपी हाथी को वश करने मे अंकुशरूप, मोक्ष मे गमन करने के लिए निस्सरणि रूप, आत्मज्ञान रूपी ज्योति को प्रकाशित करने मे अरणि के वृक्ष के समान, दान देने मे इन्द्र के समान, श्री पार्श्वनाथजी के आगे नमन करने वाले सज्जन पुरुषो के लिए कृपा की नदी के समान, विश्व मे आनन्दरूपी अमृत की तरग के समान श्रीपार्श्व चिंतामणि भगवान् संसार समुद्र का नाश करने वाले है ।

४. हे तात ! समस्त विश्व के जीवरूप, सच्चिदानद श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ ! जब से मुझे आपके दर्शन हुए है, तब से ही इन्द्र देव तथा चक्रवर्ती पर्यन्त की समृद्धि मुझे प्राप्त हो गई है, मेरे हाथो मे मुक्ति रूपी देवी क्रीडा करती है, मेरी विविध प्रकार की मन की अभिलाषाएं सिद्ध हो गई, और मेरे दुर्दैव, मेरे पाप, मेरे दुःख तथा मेरी दरिद्रता का समूल नाश हो गया है ।

५. यस्य प्रौढतम-प्रतापतपनः प्रोद्दामधामा जगज्–
जंघालः कलिकाल – केलिदलनो मोहान्धविध्वंसकः।
नित्योद्योतपदं समस्तकमलाकेलिगृहं राजते,
स श्रीपार्श्वजिनो जने हितकरश्चिन्तामणिः पातु माम् ॥

६. विश्वव्यापितमो हिनस्ति तरणिर्बालोऽपि कल्पांकुरो,
दारिद्र्याणि गजावलीं हरिशिशुः काष्ठानि वह्नेः कणः।
पीयूषस्य लवोऽपि रोगनिवहं यद्वत्तथा ते विभो!
मूर्तिः स्फूर्तिमती सती त्रिजगती-कष्टानि हर्तुं क्षमा ॥

७. श्रीचिन्तामणिमन्त्रमोंकृतियुतं ह्रींकारसाराश्रितं,
श्रीमर्हन् नमिऊणपासकलितं त्रैलोक्यवश्यावहम्।
द्वेधाभूतविषापहं विषहरं श्रेयःप्रभावाश्रयं,
सोल्लासं वसहाङ्कितं जिन फुल्लिङ्गानन्ददं देहिनाम् ॥

८. ह्रीं श्रींकारवरं नमोऽक्षरपरं ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्वमधिपं चिन्तामणिसंज्ञकम्।
भाले वामभुजे च नाभिकरयोर्भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चादष्टदलेषु ते शिवपदं द्वित्रैर्भवैर्यान्त्यहो ॥

५. अतिशय प्रतापवान् सूर्यरूप, अति उत्कृष्ट जगत्रूपी धाम को तथा कलिकाल की महिमा को दहन करने वाला, मोहरूपी अन्धकार को नाश करने वाला, समस्त प्रकार की समृद्धि धारण करने वाला, और जिसका पद हमेशा शोभित रहता है, ऐसे भगवान् जगत के जीवो का हित करने वाले श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मेरी रक्षा करो ।

६. जिस तरह सूर्य वाल्यावस्था मे रहता हुआ भी विश्व मे व्याप्त अन्धकार का नाश करता है, कल्पवृक्ष का एक ही अकुर दरिद्रता का नाश करने मे समर्थ है, सिह का एक छोटा शावक ही हाथियो के समूह का नाश कर देता है, अग्नि का एक सूक्ष्म कण लकडियो के समूह को भस्म कर डालता है, अमृत की एक ही वून्द रोग को समूल नष्ट कर देती है; उसी तरह हे विभो ! मनुष्य की मति मे स्फुरणा करने वाली आपकी मूर्ति तीनो लोको के दु ख दूर करने मे समर्थ है ।

७. ॐ शब्द की आकृतिवाला ह्री कार से युक्त श्री अर्हन्नमिऊण के मन्त्र से बद्ध हुआ तीनो लोको को अपनी आज्ञा मे चलाने वाला, विषयरूपी जहर का नाश करनेवाला, कल्याणकारक प्रभाववाला, व, स, ह, इत्यादि अक्षरो से युक्त, ऐसा मनुष्य मात्र को आनन्द रूप श्री चिन्तामणि नाम का मन्त्र है ।

८. जो योगी हृदय कमल मे धारण करके कपाल मे, वाम भुजा मे, दाहिनी भुजा मे, इसके वाद आठ दलो मे ध्यान घरते है, वे दो-तीन भवो के बाद मोक्ष धाम को प्राप्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नही है ।

(स्रग्धरा छन्द)

९. नो रोगा नैव शोका, न कलहकलना, नारि-मारिप्रचारा,
नैवाधिर्नासमाधिर्न च दरदुरिते दुष्टदारिद्रता नो।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो, न हरि-करि-गणा व्याल-वैतालजालाः,
जायन्ते पार्श्वचिंतामणिनतिवशतः प्राणिनां भक्तिभाजाम् ।।

(शार्दूल विक्रीड़ित छन्द)

१०. गीर्वाणद्रुम - धेनु - कुम्भमणयस्तस्याङ्गणेरिङ्गिणो-,
देवा दानवमानवाः सविनयं तस्मै हितध्यायिनः ।
लक्ष्मीस्तस्य वशाऽवशेव गुणिनां ब्रह्माण्डसंस्थायिनी,
श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथमनिशं संस्तौति यो ध्यायति ।।

११. इति जिनपतिपार्श्वः पार्श्व पार्श्वाख्ययक्षः,
प्रदलितदुरितौघः प्रीणितप्राणिसार्थः ।
त्रिभुवन - जन -वांच्छादान - चिन्तामणीकः,
शिवपद - तरुबीजं बोधिबीजं ददातु ।।

(६)

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

१. यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।

९. जो भक्तिमान् प्राणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ में अपना ध्यान लगाते हैं, उनको रोग, शोक, क्लेश, अशान्ति, भय, पाप, दारिद्र, शत्रु द्वारा उत्पन्न व्याधि तथा शाकिनी, भूत, पिशाच आदि हाथी तथा सिह आदि दुःखरूप हो ही नही सकते ।

१०. जो प्राणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की हमेशा स्तुति करता है तथा ध्यान धरता है, उसके घर आंगन में रागादि आनन्द हुआ करते हैं, उसको कल्पवृक्ष, कामधेनु, पारसमणि इत्यादि अलौकिक पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं, देव-दानव और मनुष्य शुद्ध विनय से उसके हित का ही चितवन किया करते हैं, गुणवान पुरुषो को इस ब्रह्माण्ड मे प्राप्त हुई समस्त लक्ष्मी उसके वश में हुआ करती है ।

११. इस तरह जिनपति पार्श्वनाथ जिन के पास रहने वाला पार्श्व नाम का यक्ष है, जिसके पाप कर्म नष्ट हो गये हैं, जिस भगवान् ने जन-समुदाय को सन्तुष्ट किया है और जो तीनों लोको की इच्छा पूर्ण करने में चिन्तामणि के समान है, वे भगवान् मोक्ष पद रूपी वृक्ष की बीजरूप समकित मुझे प्रदान करे ।

(६)

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

१ जिन्हो की प्रज्ञा मे मुकुर–सम चैतन्य जड़ भी,
सदा ध्रौव्योत्पादस्थितियुत सभी साथ झलकें ।

जगत् साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

२. अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्दरहितं,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि ।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

३. नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट – मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

४. यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः ।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाज किमु तदा ?
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

५. कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर् ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवर–सिद्धार्थ–तनयः ।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भवरागोऽद्भुतगतिर्,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

६. यदीया वाग्गंगा विविध नय-कल्लोल–विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।

जगत्साक्षी मार्ग–प्रकटन–विधाता तरणि ज्यों,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हो ।।

२. जिन्हों की नेत्राभा अचल, अरुणाई-रहित हो,
सुझाती भक्तों को हृदयगत क्रोधादि-शमता ।
विशुद्धा सौम्या आकृति अमित ही भव्य लगती,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हो ।।

३. नमस्कर्ता इन्द्र-प्रभृति अमरो के मुकुट की,
प्रभा श्रीपादाम्भोरुह-युगल-मध्ये झलकती ।
भव-ज्वालाओ का शमन करते वे स्मरण से,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हो ।।

४. जिन्हो की अर्चा से मुदित-मन हो दर्दुर कभी,
हुआ था स्वर्गी तत्क्षण सुगुण-धारी अति सुखी ।
शिवश्री के भागी यदि सुजन हो तो अति कहा,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हो ।।

५. तपे सोने-जैसे तनु-रहित भी ज्ञान-गृह है,
अकेले नाना भी जनि-रहित सिद्धार्थ-सुत है ।
महाश्री के धारी विगत-भव-रागी अति-गति,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हो ।।

६. जिन्हो की वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
न्हिलाती भक्तो को विमल अति सद्ज्ञान जल से ।

इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

७. अनिर्वारोद्रेकस् त्रिभुवनजयी कामसुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशमपदराज्याय स जिनः,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

८. महामोहातंक – प्रशमनपराऽऽकस्मिक – भिषग्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मङ्गल-करः ।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।
यः पठेच्छ्रुणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम् ॥

(१०)

श्री परमात्म द्वात्रिंशिका

(आचार्य अमितगति)

१. सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
विलष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव !

अभी भी सेते हैं बुद्ध जन महाहंस जिसको,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

७. त्रिलोकी का जेता मदन भट जो दुर्जय महा,
युवावस्था में भी विदलित किया ध्यान-बल से ।
महा–नित्यानन्द-प्रशम पद पाया जिन-पति,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

८. महा–मोहातंक-प्रशम करने मे विषग हैं,
बिना इच्छा बन्धु, प्रथित जगकल्याण कर हैं ।
सहारा भक्तो के भवभय-मृतो के, वर गुणी,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हो ।।

महावीराष्टक स्तोत्र यह, भक्तिवश भागेन्दु ने रचा ।
इसे जो पढ़ेगा या कि सुनेगा, यह परमगति को प्राप्त होगा ।।

(१०)

श्री परमात्म द्वात्रिंशिका

१. हे देव ! मैं समस्त जगत के जीव मात्र से मैत्री, गुणीजनों के साथ हृदय मे प्रेम और जो इस संसार में रोग, शोक, भूख, पिपासादि बाधाओं से पीड़ित हैं उनके लिए अतरंग मे दया भाव, जो विपरीत स्वभाव वाले दुर्जन, क्रूर, कुमार्गी, मिथ्यात्वी पुरुष हैं, उनके साथ माध्यस्थभाव चाहता हूं ।

२. शरीरतः कर्त्तुमनन्त शक्ति,
विभिन्नमात्मानमपास्त दोषम्।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्ग यष्टि,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ।।

३. दुःखे सुखे वैरिणि बंधु वर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष ममत्व बुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ !

४. मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव,
स्थिरौ निखाताविव विम्विताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमो धुनानौ हृदि दीपकाविव ।।

५. एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः,
प्रमादतः संचरता यतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीड़िता,
ममास्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ।।

६. विमुक्तिमार्ग प्रतिकूलवर्त्तिना,
मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपन,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं विभो !

२. हे जिनेन्द्र ! आपकी परम कृपा से मुझ मे ऐसी शक्ति पैदा हो कि जिस प्रकार म्यान से तलवार अलग हो जाती है उसी प्रकार मेरी इस अनन्त शक्तिशाली, निर्दोष, शुद्ध, वीतराग आत्मा को मैं इस नश्वर शरीर से अलग कर दूँ ।

३. प्रभो ! समस्त ममत्व बुद्धि को त्याग कर मेरा मन दुःख में, सुख मे, वैरियो अथवा बन्धु समूह मे; इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग मे; गृह मे, वन में हमेशा समभाव को धारण करे ।

४. हे मुनिराज ! अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले दीपक के समान, आपके दोनो चरण-कमल मेरे हृदय मे सर्वदा ही इस प्रकार स्थित रहें कि मानो मेरे हृदय मे लीन हो गये हो, कील गये हो, स्थिर हो गये हों, बैठ गये हो तथा चित्र के समान बिम्बित हो गये हो ।

५. देव ! यदि मुझ से प्रमाद पूर्वक इधर-उधर चलते हुए एकेन्द्रियादि प्राणी नाश किये गये हो, खण्डित किये गये हो, मसल दिये गये हो, पीड़ित किये गये हो तो मेरा यह सारा दुष्कर्म मिथ्या होवे ।

६. प्रभो ! मै मोक्ष मार्ग से विपरीत चलने वाला हू, दुर्बुद्धि हू, चार कषाय, पाच इन्द्रियो के वश होकर मेरे द्वारा जो कुछ चारित्र की निर्मलता का विनाश किया गया हो, वह मेरा दुष्कृत नाश होवे ।

७. विनिन्दनालोचन गर्हणैरहं,
मनोवचः काय कषाय निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भवदुःख कारणं,
भिषग्विषं मंत्र गुणैरिवाखिलम् ॥

८. अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं स्वचरित्र कर्म्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥

६. क्षति मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्त्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥

१०. यदर्थ मात्रा पदवाक्यहीनं,
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवल बोध लब्धिम् ॥

११. बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः,
स्वात्मोपलब्धिः शिव सौख्य सिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तुदाने,
त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि !

७. संसार के दुःखो का कारण भूत जो कुछ भी पाप मैंने मन, वचन, काय और कषायो के द्वारा किया हो, उसको मैं अपनी निन्दा, आलोचना और गर्हा करके इस प्रकार नष्ट करता हूं कि जिस प्रकार वैद्य समस्त विष को मन्त्र के गुणो से दूर कर देता है।

८. हे जिनदेव ! मैंने दुर्बुद्धि से प्रमादवश अपने उत्तम चरित्र में जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचारादिक दोष लगाये हैं, उनकी शुद्धता के लिए मैं पश्चात्ताप करता हूं।

९. प्रभो ! मन की निर्मलता मे क्षति होना अतिक्रम है, शील वृत्ति का उल्लंघन करना व्यतिक्रम है, विषयों मे प्रवर्त्तन करना अतिचार है और विषयो मे अत्यन्त आसक्त होना अनाचार है। इस प्रकार आचार्य कहते हैं।

१०. मेरे द्वारा प्रमादवश यदि अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से न्यूनाधिक जो कुछ भी वचन कहा गया हो तो सरस्वती देवी क्षमा करके मुझे केवल ज्ञान की प्राप्ति कराए।

११. हे देवी ! तुम इच्छित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान हो अतः मैं तुझे नमस्कार करता हूं। तेरे ही प्रसाद से मुझे ज्ञान, समाधि, परिणामो की निर्मलता और आत्म-स्वरूप की प्राप्ति तथा शिव सुख की सिद्धि होवे।

१२. यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैर्,
यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रैः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१३. यो दर्शन - ज्ञान - सुख - स्वभावः,
समस्त संसार – विकार बाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्म – संज्ञः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१४. निषूदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगि–निरीक्षणीयः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१५. विमुक्ति मार्ग–प्रतिपादको यो,
यो जन्म–मृत्युर्व्यसनाद् व्यतीतः।
त्रिलोकलोकी सकलोऽकलंकः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१६. क्रोडीकृताशेष – शरीरि वर्गा,
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरीन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१२. जो परमात्मा बडे-बड़े ऋद्धिधारी मुनीन्द्रो के समूह द्वारा स्मरण किया जाता है, जिसकी सब बडे-बडे छ: खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती आदि मनुष्य और देवेन्द्र स्तुति करते है और जिसकी महिमा द्वादशाग रूप वेद व बडे-बड़े पुराणो, शास्त्रो ने गाई है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय मे आकर विराजमान हो ।

१३. जो अनन्त दर्शन, ज्ञान, अनन्त सुखरूप स्वभाव को धारण करने वाला है, जो सम्पूर्ण ससार के विकार पैदा करने वाले परमाणुओ से रहित है; जो परमोत्कृष्ट ध्यान के द्वारा जानने योग्य है तथा जिसका नाम परमात्मा है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय मे विराजमान हो ।

१४. जो जगत् के दु:ख समूह को नष्ट करता है, जो इस जगत् मे सर्व पदार्थो को देखता है, जो अन्तरंग मे प्राप्त है और जो ध्यानियो द्वारा देखने योग्य है, वह देवाधिदेव मेरे अन्तरङ्ग मे विराजमान हो ।

१५. जो मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाला है, जो जन्म-मरण रूप कष्टों से दूर है, जो तीन लोक को देखने वाला है, देह व कर्म कलंक से रहित है, वह देवो का देव मेरे हृदय मे विराजमान हो ।

१६. जिन रागादि दोषो को समस्त प्राणी धारण किये हुए हैं, उन रागादि दोषो, स्पर्शादि पाच इन्द्रियो तथा मन से जो रहित है, जो ज्ञानमय और अविनाशी है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय मन्दिर मे विराजे ।

१७. यो व्यापको विश्वजनीन-वृत्तिः,
सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१८. न स्पृश्यते कर्मकलंक दोषैर्,
यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

१९. विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमय-प्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

२०. विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

२१. येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा,
विषाद-निद्रा-भयशोक-चिन्ताः।
क्षय्योऽनलेनेव तरु-प्रपंचस्,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

१७. जो तीनों जगत के पदार्थों को देखने वाले ज्ञान की अपेक्षा से समस्त लोक के पदार्थों मे व्याप्त है, सिद्ध हैं, बुद्ध है और कर्म बन्धनो का जिसने नाश कर दिया है जिसका भव्य जीव ध्यान करते हैं और जो उनके समस्त विकारो को नष्ट कर देता है वह देवाधिदेव मेरे हृदय मे विराजमान हो।

१८. जिस प्रकार अन्धकार सूर्य की किरणो का स्पर्श नही कर सकता, उसी प्रकार जो परमात्मा कर्म रूपी दोषो से नही स्पर्श किया जाता, जो कर्म रूपी अजन से रहित है, जो वस्तु स्थिति की अपेक्षा नित्य और गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक है, द्रव्यापेक्षा एक है मैं उस आप्त देव की शरण मे जाता हूं।

१६. जिस भगवान के विराजमान रहने पर तीन लोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य भी प्रकाशित नही होता। ऐसे अपनी आत्मा में स्थित ज्ञान रूप प्रकाशमय सच्चे देव की मैं शरण मे जाता हूं।

२०. अवलोकन करने पर जिनके ज्ञान मे यह जगत् अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देता है अर्थात् जिसके ज्ञान मे इस संसार के हर एक पदार्थ अलग-अलग स्पष्ट झलकते है, ऐसे शुद्ध कल्याण-स्वरूप, शान्त आदि अन्तरहित आप्त देव की मैं शरण लेता हूं।

२१. जिस प्रकार वृक्ष के समूहो को अग्नि भस्म कर देती है, उसी प्रकार जिस परमात्मा ने काम, अभिमान, मूर्च्छा, खेद, निद्रा, भय, शोक और चिन्ता को नष्ट कर दिया है उस आप्त देव की शरण मे प्राप्त होता हूं।

२२. न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितः ।
यतो निरस्ताक्ष – कषायविद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥

२३. न संस्तरो भद्र ! समाधि–साधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिश,
विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम् ॥

२४. न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाऽहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र ! मुक्त्यैः ॥

२५. आत्मानमात्मन्यविलोक्यमानस्,
त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र,
स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥

२६. एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा,
विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥

२२. सामायिक के लिए विधान से न तो पत्थर को ही आसन माना है, न घास को, न पृथ्वी को और न काष्ठ की चौकी आदि को। इसलिए जिस आत्मा ने काम-कषाय रूपी शत्रु को नष्ट कर डाला है वह निर्मल आत्मा ही विद्वानों द्वारा आसन माना गया है।

२३. हे भव्य ! वास्तव में समाधि (सामायिक) का साधन न तो सन्थारा ही है, न लोगों की पूजा और न संघ का सम्मेलन ही है। इसलिए तूं सम्पूर्ण बाहिर की वासनाओ को छोड़ कर आत्मा मे लवलीन हो।

२४. मेरी आत्मा से बाहर के जो कुछ भी पदार्थ है वे मेरे नही है और मैं भी उनका कभी नही हूं। हे भद्र ! इस बात का निश्चय कर बाह्य सम्बन्धी बातो को छोड़ कर मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वथा ही अपनी आत्मा मे स्थिर हो।

२५. अपने को अपने मे अवलोकन करने वाला तूं दर्शन, ज्ञानमय और निर्मल है। जहां कोई साधु अपने चित्त को एकाग्र कर ध्यान मे स्थिर होता है, वहां वह समाधि को प्राप्त करता है।

२६. मेरी आत्मा सदा एक, कभी विनाश को प्राप्त नही होने वाली, निर्मल और केवल ज्ञान स्वरूप है और मेरी आत्मा से बाहर के समस्त पदार्थ अपने ही कर्मों से हुए है, वे अविनाशी नही हैं, उनकी अवस्था बदलती रहती है।

२७. यस्यास्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्द्ध,
तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः ?
पृथक् कृते चर्मणि रोमकूपाः,
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर-मध्ये ।

२८. संयोगतो दुःखमनेकभेदं,
यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।
ततस्त्रिधाऽसौ परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ।।

२९. सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं,
संसार कान्तार निपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो,
निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ।।

३०. स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ।।

३१. निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ।।

२७. जिस आत्मा की शरीर के साथ भी एकता नहीं है, उस आत्मा की पुत्र, स्त्री, मित्रादि के साथ कैसे एकता हो सकती है ? यदि शरीर पर से चमड़ा दूर कर दिया जाय तो उस शरीर मे रोमो के छेद कहां ठहर सकते है ? वे तो शरीर के आश्रय मे ही रहते है, बिना शरीर छेद नही रहते।

२८. संसार रूपी वन मे यह देही बाहर के पदार्थों के सम्बन्ध से नाना प्रकार के दुःखो को पाता है। इसलिए अगर जीव इन बाह्य पदार्थों के सयोग जनित दुःखो से निवृत्ति अर्थात् मुक्ति चाहता है तो यह जीव इस सयोग को मन, वचन, काया से छोड दे।

२९. संसार रूपी वन मे भटका देने वाले समस्त विकल्प समूह को दूर करके तूं अपनी आत्मा को सबसे भिन्न देखता हुआ, परमात्म तत्व के चिन्तन मे लवलीन हो।

३०. आत्मा पूर्व काल से जो कुछ भी कर्म करता आ रहा है, उसका शुभाशुभ फल स्वय वही पाता है। यदि कर्म के बिना दूसरे का दिया फल प्राप्त होने लगे तो यह स्पष्ट है कि अपने आपका किया हुआ कर्म फल व्यर्थ ही हो जाय।

३१. जीव अपने किए हुए कर्मो का ही फल पाता है। अपने उपार्जित कर्मों को छोड़ कर कोई भी किसी को कुछ नही देता, इस प्रकार का विचार करते हुए 'दूसरा देता है' ऐसी बुद्धि त्याग कर स्व मे एकाग्रचित होना योग्य है।

३२. यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः,
सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।
शाश्वदधीतो मनसि लभन्ते,
मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ।।

(११)

रत्नाकर पंचविशतिका (पच्चीसी)

१. श्रेयः श्रियां मङ्गल – केलिसद्म !
नरेन्द्र – देवेन्द्र – नताङ्घ्रिपद्म !
सर्वज्ञ ! सर्वातिशय – प्रधान !
चिरं जय ज्ञान – कला निधान !

२. जगत्त्रयाधार ! कृपावतार !
दुर्वार – संसार – विकार – वैद्य !
श्री वीतराग ! त्वयि मुग्धभावाद्,
विज्ञ ! प्रभो ! विज्ञपयामि किंचित् ।।

३. किं बाललीलाकलितो न बालः,
पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः ?
तथा यथार्थं कथयामि नाथ ?
निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ।।

४. दत्तं न दानं, परिशीलितं च,
न शालि शीलं, न तपोऽभितप्तम् ।

३२. जो जीव अमितगति (ग्रन्थकर्त्ता) आचार्य द्वारा वन्दनीय (तथा अमितगति अपार ज्ञान वाले गणधरादिको से वन्दनीय) सबसे अलग और अतिशय प्रशसा योग्य परमात्मा का अपने हृदय मे निरन्तर ध्यान करते है, वे उत्कृष्ट मोक्ष-लक्ष्मी को पाते है।

(११)

रत्नाकर पंचविंशतिका (पच्चीसी)

१. शुभकेलि के आनन्द के घन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से पूजितचरण गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो सब से सदा ससार मे,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में॥

२. संसार-दु:ख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जयश्रीश ! रत्नाकर प्रभो ! अनुपम कृपा-अवतार हो।
गतराग ! है विज्ञप्ति मेरी मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योकि प्रभो ! तुम विज्ञ हो, मुझको अभयवर दीजिए॥

३. माता-पिता के सामने बोली सुना कर तोतली,
करता नही क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावली।
अपने हृदय के हाल को वैसे यथोचित रीति से—
मैं कह रहा हूं, आपके आगे विनय से प्रीति से॥

४. मैंने नही जग मे कभी कुछ दान दीनो को दिया,
मैं सच्चरित्र भी हूं नही, मैंने नही तप भी किया।

शुभो न भावोऽप्यभवद् भवेऽस्मिन्,
विभो ! मया भ्रान्तमहो ! मुधैव ॥

५. दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्य – महोरगेण ।
ग्रस्तोऽभिमानाजगरेण माया-जालेन,
बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ?

६. कृतं मयाऽमुत्र हितं न चेह,
लोकेऽपि लोकेश ! सुखं न मेऽभूत् ।
अस्मादृशां केवलमेव जन्म,
जिनेश जज्ञे भव – पूरणाय ॥

७. मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्त !
त्वदास्यपीयूष मयूखलाभात् ।
द्रुतं महानन्दरसं कठोर–
मस्मादृशां देव ! तवश्मतोऽपि ॥

८. त्वत्तः सुदुष्प्राप्यमिदं मयाप्तं,
रत्नत्रयं भूरिभव – भ्रमेण ।
प्रमाद – निद्रावशतो गतं तत्,
कस्याग्रतो नायक ! पूत्करोमि ?

९. वैराग्य – रङ्गः पर – वञ्चनाय,
धर्मोपदेशो जन – रञ्जनाय ।

शुभ भावना मेरी हुई अब तक न इस संसार मे,
मैं घूमता हूं व्यर्थ ही भ्रम से भवोदधि-धार में ॥

५. क्रोधाग्नि से मै रातदिन हा ! जल रहा हू हे प्रभो !
मैं लोभ नामक साप से काटा गया हू हे विभो !
अभिमान के खल ग्राह से अज्ञानवश मै ग्रस्त हूं,
किस भाति हों स्मृत आप माया-जाल मे मैं व्यस्त हू ॥

६. लोकेश ! पर-हित भी किया मैंने न दोनो लोक मे,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, चीखता हूं शोक मे ।
मुझ तुल्य ही नर-नारियों का जन्म जग मे व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर ! वह भवो की पूर्णता के अर्थ है ॥

७. प्रभु ! आपने निज मुख-सुधा का दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है, पर चित्त ने उसका न कुछ भी फल लिया ।
आनन्द-रस मे डूब कर सद्वृत्त वह होता नही,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥

८. रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैने लिया,
बहुकाल तक बहुवार जब जग का भ्रमण मैंने किया ।
हा ! खो गया वह भी अलस, मै नीद मे सोता रहा,
अब बोलिए उसके लिये रोऊँ प्रभो ! किसके यहा ?

९. संसार ठगने के लिये वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिये उपदेश धर्मों का दिया ।

वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत,
कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश !

१०. परापवादेन मुखं सदोषं,
नेत्रं परस्त्रीजन – वीक्षणेन ।
चेतः परापाय – विचिन्तनेन,
कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ?

११. विडम्बितं यत् स्मर – घस्मरार्ति,
दशावशात् स्वं विषयांधलेन ।
प्रकाशितं तद् भवतो ह्रियैव,
सर्वज्ञ ! सर्वं स्वयमेव वेत्सि ।।

१२. ध्वस्तोऽन्य – मंत्रैः परमेष्ठि मंत्रः,
कुशास्त्रवाक्यैर् निहतागमोक्तिः ।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्गा–
दवाञ्छि हो नाथ ! मतिभ्रमो मे ।।

१३. विमुच्य दृग्लक्ष्यगतं भवन्तं,
ध्याता मया मूढ़धिया हृदन्तः ।
कटाक्ष - वक्षोज - गभीर - नाभि–
कटीतटीयाः सुदृशां विलासाः ।।

१४. लोलेक्षणावक्त्र निरीक्षणेन,
यो मानसे रागलवो विलग्नः ।

झगड़ा मचाने के लिये मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाई, हे प्रभो ! अपनी हंसी ।।

१०. पर दोष को कह जीभ मेरी है सदा दूषित हुई,
लख कर पराई नारियां हा ! आंख भी दूषित हुई ।
मन भी मलिन है सोच कर पर की बुराई हे प्रभो !
किस भांति होगी लोक मे मेरी भलाई ऐ विभो !

११. मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई उत्पन्न जो दुख राक्षसी ।
हा ! आपके सम्मुख उसे अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ ! हो सब जानते स्वयमेव संसृति की क्रिया ।।

१२. अन्यान्य मंत्रो से परम परमेष्ठि मन्त्र हटा दिया,
सद्-शास्त्र वाक्यों को कुशास्त्रो से दबा मैंने दिया ।
विधि उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ यों भ्रमवश अहित, मैंने नही क्या-क्या किया ?

१३. हा तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
आराधना की मूढतावश मूढ़ लोगो की विभो !
वामांगियों के कुछ कटाक्षों पर सदा मरता रहा,
उनके विलासो का हृदय मे ध्यान मैं धरता रहा ।।

१४. लखकर चपल दृग युवतियो के मुख मनोहर रसमयी,
मम मन पटल पर राग-भावो की मलिनता बस गई ।

न शुद्धसिद्धान्त – पयोधिमध्ये,
धौतोऽप्यगात् तारक ! कारणं किम् ॥

१५. अंगं न चंग न गणो गुणानां,
न निर्मलः कोऽपि कलाविलासः ।
स्फुरत्प्रभा न प्रभुता च काऽपि,
तथाऽप्यहंकार – कदर्थितोऽहम् ॥

१६. आयुर्गलत्याशु न पापबुद्धिर्,
गतं वयो नो विषयाभिलाषः ।
यत्नश्च भैषज्य – विधौ न धर्मः,
स्वामिन् ! महामोह-विडम्बना मे ॥

१७. नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं,
मया विटानां कटुगीरपीयम् ।
आधारि कर्णे त्वयि केवलार्के,
परिस्फुटे सत्यपि देव ! धिग्माम् ॥

१८. न देव पूजा न च पात्रपूजा,
न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः ।
लब्ध्वाऽपि मानुष्यमिदं समस्तं,
कृतं मयारण्य – विलापतुल्यम् ॥

१९. चक्रे मयाऽसत्स्वपि कामधेनु–
कल्पद्रु – चिन्तामणिषु स्पृहार्तिः ।

वह शास्त्र निधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई,
बतलाइये प्रभु आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई ।।

१५ मुझमे न अपने अग के सौन्दर्य का आभास है,
मुझमे न गुण-गण है विमल, मुझमे न कला-विलास है ।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न की भी है चमकती देखिये,
तो भी भरा हू गर्व से मै मूढ हो किसके लिये ।।

१६. हा ! नित्य घटती आयु है पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढौती पर विषय अरु वासना हटती नही ।
मै यत्न करता हूं दवा मे, धर्म मे करता नही,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूं, नाथ ! बच सकता नही ।।

१७. अघ पुण्य को, जग, आत्म को मैंने कभी माना नही,
हा ! आप आगे हैं खड़े सर्वज्ञ रवि यद्यपि यही ।
तो भी खलों के वाक्य को मैंने सुना कानो वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा ।।

१८. सत्पात्र–पूजन देव–पूजन कुछ नही मैंने किया,
मुनि धर्म, श्रावक धर्म, भी विधिवत् नही पालन किया ।
नर–जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन मे व्यर्थ ही रोता रहा ।।

१९. हा ! कामधुक् कल्पद्रुमादिक, के यहा रहते हुए,
मैंने गवाया जन्म को, धिक् लाख-दु.ख सहते हुए ।।

न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेऽपि,
जिनेश ! मे पश्य विमूढ़भावम् ।।

२०. सद्भोग – लीला न च रोगकीला,
धनागमो नो निधनागमश्च ।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते,
व्यचिन्ति नित्यं मयकाऽधमेन ।।

२१. स्थितं न साधोर्हृदि साधुवृत्तात्,
परोपकारान्न यशोर्जितं च ।
कृतं न तीर्थोद्धरणादि-कृत्यं,
मया मुधा हारितमेव जन्म ।।

२२. वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु,
न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः ।
नाऽध्यात्मलेशो मम कोऽपि देव,
तार्यः कथंकारमयं भवाब्धिः ?

२३. पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य-
मागामि जन्मन्यपि नो करिष्ये ।
यदीदृशोऽहं मम तेन नष्टा,
भूतोद्भवद्भावि भवत्रयीश !

२४. किं वा मुधाऽहं बहुधा सुधाभुक्-
पूज्य ! त्वदग्रे चरितं स्वकीयम् ?

प्रत्यक्ष सुखकर जैन मत में, प्रीति मेरी थी नही,
जिननाथ ! मेरी देखिये, है मूढता भारी यही ।

२०. मैने न रोका रोग-दुःख, संभोग-सुख देखा किया,
मन मे न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ का लेखा किया ।
हा ! मै अधम पुद्गल सुखों का ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन मे न मैं डरता रहा ॥

२१. सद्वृत्ति से मन मे न मैने, साधुता हा ! साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैने नही कुछ अर्जिता ।
चउ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाया नहीं,
नर–जन्म पारस–तुल्य निज, मैने गंवाया व्यर्थ ही ॥

२२. शास्त्रोक्त-विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,
खल–वाक्य भी गत–क्रोध हो, सहना मुझे आता नही ।
अध्यात्म–विद्या है न मुझमे, है न कोई सत्कला,
फिर देव ! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला ॥

२३. सत्कर्म पहले जन्म मे, मैंने किया कोई नही,
आशा नही जन्मान्य मे, उसको करूंगा मै कही ।
इस भाति का यदि हूं जिनेश्वर ! क्यो न मुझको कष्ट हो ?
संसार मे फिर जन्म मेरे, त्रिविध कैसे नष्ट हो ॥

२४. हे पूज्य ! अपने चरित को, बहुभांति गाऊं क्या वृथा,
कुछ भी नही तुझ से छिपी है पापमय मेरी कथा ।

जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप-
निरूपकस्त्वं   कियदेतदत्र ?

२५. दीनोद्धार – धुरंधरस्त्वदपरो, नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नाऽत्र जने जिनेश्वर ! तथा-ऽप्येतां न याचे श्रियम् ।
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो, सद्बोधि – रत्नं शिवम्,
श्री रत्नाकर – मंगलैकनिलय ! श्रेयस्करं प्रार्थये ।।

—:०:—

"स्मृतेन येन पापोऽपि, जन्तुः स्यान्नियतं सुरः ।
परमेष्ठि नमस्कारमंत्रं तं स्मर मानसे" ।।
(उत्तराध्ययन टीका)

"जिसके स्मरणमात्र से पापी प्राणी भी निश्चित-रूप से देवगति को प्राप्त करता है, उस परमेष्ठी नमस्कार मंत्र का आप मन में स्मरण-रटन करें ।"

——

"पारस जिस धातु को छूता है उसे स्वर्ण बना देता है उसी तरह श्री नवकार मंत्र का मंगल जिसके अन्तः-करण मे है उसे पूर्ण मंगल रूप बनादेता है, सिद्ध-रूप बनादेता है—स्व स्वरूप शुद्ध-बुद्ध बनादेता है ।"

क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम, ईश हो सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्ही, मम चित्त के मर्मज्ञ हो ।।

२५. दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नही है,
कृपा-पात्र भी नाथ ! न मुझसा अपर कही है ।
तो भी मागूं नही धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न दें मुझे मंगल-कर ।
श्री रत्नाकर गुण-गान यह दुरित दुःख सब के हरे,
अब एक यही है प्रार्थना मंगल-मय जग को करे ।।

—:o:—

"अनादि असमदर्शित्व भाव को बदलने के लिये एकाग्रता और उपयोगपूर्वक पुरुषार्थ करके आत्म-सम-दर्शित्व का भाव विकसित करना मानव-जीवन का श्रेष्ठ पुरुषार्थ है । श्री नमस्कार मंत्र की यह उत्कृष्ट भाव-भक्ति है । सब भगवन्तों का यह मुख्य उपदेश है । प्रभु-भक्ति का यह उत्तमोत्तम प्रकार है ।"

"सारे जगत के समस्त जीवों के साथ जब तक समदर्शीपन नही आता है तब तक जीव मोक्ष का अधि-कारी नही बन सकता । जगत् के सब जीवों की भलाई की इच्छा करना और इसके लिये यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से प्रयत्न करना यह परमेष्ठि महामंत्र की साधना में सबसे इष्ट वस्तु है ।"

(१२)

श्री परमानन्द–पंचविंशतिका

१. परमानन्द–संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निज–देहे व्यवस्थितम् ॥

२. अनन्तसुख–सम्पन्नं ज्ञानामृत–पयोधरम् ।
अनन्तवीर्य–सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥

३. निर्विकारं निराधारं, सर्वसंगविवर्जितम् ।
परमानन्द–सम्पन्नं, शुद्धचैतन्य–लक्षणम् ॥

४. उत्तमाऽध्यात्मचिन्ता च, मोह-चिन्ता च मध्यमा ।
अधमा कामचिन्ता च, परचिन्ताऽधमाधमा ॥

५. निर्विकल्पं समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम् ।
विवेकमंजलिं कृत्वा, तं पिबन्ति तपस्विनः ॥

६. सदानंदमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः ।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द–कारणम् ॥

७. नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ।
तथैवात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति सर्वदा ॥

८. द्रव्यकर्म–विनिर्मुक्तं, भावकर्म–विवर्जितम् ।
नोकर्म–रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मकम् ॥

९. अनंतब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥

१०. तद् ध्यानं क्रियते भव्यैर्, येन कर्म विलीयते ।
तत् क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्च–चमत्कारलक्षणम् ॥

११. चिदानंदमयं शुद्धं निराकारं निरामयम्।
अनंत – सुखसम्पन्नं, सर्वसंगविवर्जितम्॥

१२. लोकमात्रप्रमाणो हि, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे देहमात्रो, कथयन्ति मुनीश्वराः॥

१३. यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तं स्थिरीभूतं, निर्विकल्पं समाधिना॥

१४. स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः।
स एव परमं तत्त्व, स एव परमो गुरुः॥

१५. स एव परमं ज्योतिः, स एव परम तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकम्॥

१६. स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवम्॥

१७. स एव ज्ञानरूपो हि, स एवात्मा न चाऽपरः।
स एव परमा शान्तिः, स एव भवतारकः॥

१८. स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव घन-चैतन्यं, स एव गुण-सागरः॥

१९. परमाह्लाद – सम्पन्नं, राग – द्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तु देहमध्यस्थं, यो जानाति स पण्डितः॥

२०. आकार – रहितं शुद्धं, स्वस्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम्॥

२१. तत्समं तु निजात्मानं, यो जानाति स पण्डितः।
सहजानंद – चैतन्यं, प्रकाशयति महीयसे॥

२२. पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्ध – मध्ये यथा घृतम् ।
तिल – मध्ये यथा तैलं, देह – मध्ये तथा शिवः ।।

२३. काष्ठमध्ये यथा वह्निः शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ।।

२४. आनन्द – रूपं परमात्मतत्त्वं,
समस्त – संकल्पविकल्प – मुक्तम् ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं,
जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ।।

२५. ये धर्मशीला मुनयः प्रधानास्,
ते दुःखहीना नियतं भवन्ति ।
संप्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं,
व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमध्ये ।।

(१३)

मंगल–भावना

१. जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे,
सम्यक्त्वमेव संसार – वारणं मोक्षकारणम् ।

२. श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः, श्रुते भक्तिः सदास्तु मे,
सज्ज्ञानमेव संसार – वारणं मोक्षकारणम् ।

३. गुरौ भक्तिर् गुरौ भक्तिर्, गुरौ भक्तिः सदास्तु मे,
चारित्रमेव संसार – वारणं मोक्षकारणम् ।।

(१)

मांगलिक

१. चत्तारि मगलं–अरिहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

२. चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

३. चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि । सिद्धे सरणं पव्वज्जामि । साहू सरणं पव्वज्जामि । केवलि–पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

(अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली प्रणीत (कथित) धर्म—ये चारों मंगल हैं, लोकोत्तम हैं, मै इन चारों की शरण लेता हूं ।)

ए चार शरणा, दुख हरणा और न शरणो कोय,
जे भवि प्राणी आदरे ते अक्षय अमर पद होय ।

(२)

१. धम्मो मंगल महिमानिलो, धर्म-समो नहिं कोय ।
धर्म-थकी नमे देवता, धर्मे शिव सुख होय ।।ध०।।

२. जीवदया नित पालिये, संजम सतरह प्रकार ।
बारा-भेदे तप तपे, धर्म तणो यह सार ।।ध०।।

३. जिम तरुवरने फूलड़े, भमरो रस लेवा जाय ।
तिम सन्तोषे आतमा, फूलने पीड़ा नहिं थाय ।।ध०।।

४. इण विध जावे गोचरी, वेहरे[1] सूझतो आहार ।
ऊंच-नीच मध्यम कुले, धन-धन ते अणगार ।।ध०।।

५. मुनिवर मधुकर-सम कह्या, नहिं तृष्णा नहिं लोभ ।
लाध्यो भाड़ो देवे देहने, अणलाध्यां सन्तोष ।।ध०।।

६. अध्ययन पहले दुमपुप्फिये, सखरा अर्थ–विचार ।
पुण्यकलश-शिष्य जेतसी, धर्मे जय-जयकार ।।ध०।।

(३)

१. अरिहन्त जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय ।
साधु जीवन जय जय, जिन धर्म जय जय ।।

२. अरिहंत मंगल, सिद्ध प्रभु मंगल ।
साधु जीवन मंगल, जिन धर्म मंगल ।।

---

१. वहरे=लेवे

३. अरिहन्त उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम ।
साधु जीवन उत्तम, जिन धर्म उत्तम ॥

४. अरिहन्त शरणं, सिद्ध प्रभु शरणं ।
साधु जीवन शरणं, जिन धर्म शरणं ॥

५. ए चार शरण दुःखहरण जगत् मे,
और न शरणा कोई होगा ।

जो भवि प्राणी करें आराधन,
उनका अजर अमर पद होगा ॥

(४)

१. ॐ जय अरिहन्ताणं, प्रभु जय अरिहन्ताणं ।
भाव भक्ति से नित्य प्रति, प्रणमूं सिद्धाणं ॥ॐ जय॥

२. दर्शन ज्ञान अनन्ता, शक्ति के धारी ॥ स्वामी॥
यथाख्यात समकित है, कर्मशत्रु हारी ॥ॐ जय॥

३. हे सर्वज्ञ ! सर्व दर्शी ! बल, सुख अनन्त पाये ॥ स्वामी॥
अगुरुलघु अमूरत अव्यय कहलाये ॥ॐ जय॥

४. णमो आयरियाणं, छत्तीस गुण पालक ॥ स्वामी॥
जैन धर्म के नेता, संघ के सचालक ॥ॐ जय॥

५. णमो उवज्झायाणं, चरण करण ज्ञाता ॥ स्वामी॥
अंग-उपांग पढाते, ज्ञान दान दाता ॥ॐ जय॥

६. णमो लोए सव्व साहूणं, ममता मद हारी ॥ स्वामी॥
सत्य अहिंसा अस्तेय, ब्रह्मचर्य धारी ॥ॐ जय॥

७. 'चौथमल्ल' कहे शुद्ध मन, जो नर ध्यान धरे ।। स्वामी।।
पावन पंच-परमेष्ठी, मंगलाचार करे ।।ॐ जय।।

(५)

१. वांछित पूरे विविध परे, श्री जिन शासन सार ।
निश्चय श्री नवकार नित, जपतां जय जय कार ।।

२. अड़सठ अक्षर अधिक फल, नवपद नवे निधान ।
वीतराग स्वयं मुख वदे, पंच परमेष्ठि प्रधान ।।

३. एकज अक्षर एकज चित्त, सुमर्यां संपत्ति थाय ।
संचित सागर सातना, पातक दूर पलाय ।।

४. सकल मंत्र शिर मुकुट मणि, सद्गुरु भाषित सार ।
सो भवियां मन शुद्ध से, नित जपिये नवकार ।।

५. सुमरो मंत्र भलो नवकार, ए छे चौदह पूर्व नो सार ।
एहनी महिमा नो नहिं पार, एहनो अर्थ अनंत अपार ।।

६. सुख मां सुमरो, दुःख मां सुमरो, सुमरो दिवस ने रात ।
जीवंतां सुमरो, मरंता सुमरो, सुमरो सौ सगाथ ।।

७. योगी सुमरे, भोगी सुमरे, सुमरे राजा रंक ।
देवा सुमरे, दानव सुमरे, सुमरे सौ निशंक ।।

८. अड़सठ अक्षर एहना जाणो, अड़सठ तीरथ सार ।
आठ संपदा थी परमाणो, अष्ट सिद्धि दातार ।।

९. नव पद एहना नव निधि आपे, भवो भवना दुख कापे ।
'चन्द्र' वचन थी हृदये व्यापे, परमातम पद आपे ।।

(६)

१. सुख कारण, भवियण, सुमरो नित नवकार।
जिन शासन आगम, चौदह पूर्व नो सार ।।
इण मंत्रनी महिमा, कहेतां न लहिये पार।
सुर तरु-जिम चिंतित, वांछित फल दातार ।।

२. सुर दानव मानव, सेवा करें कर जोड़।
भू मण्डल विचरें, तारे भवियण कोड़ ।।
सुर छन्दे विलसें, अतिशय जास अनन्त।
पद पहिले नमिये, अरिगंजन अरिहन्त ।।

३. जे पन्द्रह भेदे, सिद्ध यथा भगवन्त।
पंचम गति पहुचे, अष्ट कर्म करि अन्त ।।
कल अकल स्वरूपी, पंचानन्तक देह।
जिनवर-पद प्रणमूं, बीजे पद वलि एह ।।

४. गच्छ - भार - धुरंधर, सुन्दर शशिहर शोभ।
कर सारण वारण, गुण छत्रीसे थोभ ।।
श्रुतजाण शिरोमणि, सागर जिम गम्भीर।
तीजे पद नमिये, आचारज गुणधीर ।।

५. श्रुतधर गुण-आगर, सूत्र भणावें सार।
तप विधि संयोगे, भाखें अर्थ विचार ।।
मुनिवर गुण - युक्ता, कहिये ते उवज्झाय।
पद चौथे नमिये, अह - निश तेहना पाय ।।

६. पंचाश्रव टालें, पालें पंचाचार।
तपसी गुणधारी, वारें विषय-विकार ।।

त्रस थावर-पीहर, लोक मांहि जे साध ।
त्रिविधे ते प्रणमूं, परमारथ जिण लाध ॥

७. अरि करि हरि सायण, डायण भूत वेताल ।
सब पाप पणासे, वरते मंगल-माल ॥
इण सुमर्या संकट, दूर टले तत्काल ।
इम जपै 'जिनप्रभ', सूरी शिष्य रसाल ॥

(७)

सुवह और शाम की, प्रभूजी के नाम की, फेरो इक माला ॥टेर॥

१. सकल सार नवकार मंत्र यह परमेष्ठी की माला,
नर्कादिक दुर्गति का सचमुच जड़ देती है ताला ।
कर्मों का जाला, मिटे तत्काला—फेरो०

२. सुदर्शन और सीता ने जव फेरी थी यह माला,
शूली भी सिंहासन हो गई, शीतल हो गई ज्वाला ।
धर्म का प्याला, पीओ प्यारे लाला—फेरो०

३. सुमिरण कर सोमा ने भी, नाग उठाया काला,
महा भयंकर विषधर था वो बनी फूल की माला ।
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला—फेरो०

४. द्रौपदी का चीर वढाया, दुःशासन मद गाला,
मैनासुन्दरी श्रीपाल का जीवन वना विशाला ।
सुभद्राजी महिला, चम्पा द्वार खोला—फेरो०

५. वालकुमारी राजदुलारी, देखो चंदनवाला,
दुःख भयंकर पाई फिर भी शिर मुंडा था मूला ।
तपस्या का तेला, सव दुःख झेला—फेरो०
गावो गुण भोला 'हरि ऋषि' वोला—फेरो०

(८)

अजर अमर अखिलेश निरंजन जयति सिद्ध भगवान् ॥टेर॥

१. अगम अगोचर तूं अविनाशी, निराकार निर्भय सुख राशी।
निर्विकल्प निर्लेप निरामय, निष्कलंक निष्काम—ज०

२. कर्म न काया मोह न माया, भूख न तिरखा रंक न राया।
एक स्वरूप अरूप अगुरु लघु, निर्मल ज्योति महान्—ज०

३. हे अनन्त ! हे अन्तरयामी ! अष्ट गुणो के धारक स्वामी !
तुम बिन दूजा देव न पाया, त्रिभुवन से उपराम—ज०

४. गुरु निर्गन्थो ने समझाया, सच्चा प्रभु का रूप बताया।
अब मै तुम मे ही मिल जाऊं, ऐसा दो वरदान—ज०

५. 'सूर्य चन्द्र' है शरण तुम्हारी, प्रभु मेरी करना रखवारी।
तुम मे मुझ मे भेद न पाऊ, ऐसा हो संधान—ज०
—जय जय जय भगवान् !

(९)

१. अविनाशी अविकार, परम रसधाम हे !
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम हे !

२. शुद्ध बुद्ध अनिरुद्ध, अनादि अनन्त हे !
जगत शिरोमणि सिद्ध, सदा जयवंत हे !

(१०)

१. तुम तरण-तारण दुःख निवारण, भविक जीव आराधनम्।
श्री नाभिनन्दन जगत-वन्दन, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

२. जगत-भूषण विगत दूषण, प्रणव प्राण निरूपकम् ।
ध्यान-रूपं अनूप उपमं, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

३. गगन-मंडल मुक्ति-पदवी, सर्व-ऊर्ध्व-निवासनम् ।
ज्ञान-ज्योति अनन्त राजे, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

४. अज्ञाननिद्रा विगत-वेदन, दलित मोह निरायुषम् ।
नाम-गोत्र-निरंतरायं, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

५. विकट क्रोधा मान योधा, माया लोभ विसर्जनम् ।
रागद्वेष-विमर्द अंकुर, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

६. विमल केवलज्ञान-लोचन, ध्यान-शुक्ल-समीरितम् ।
योगिनां अतिगम्य रूपं, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

७. योग ने समोसरण मुद्रा, परिपल्यंक-आसनम् ।
सर्व दीसे तेज-रूपं, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

८. जगत जिनके दास दासी, तास आस निरासनम् ।
चन्द्र पै परमानन्द-रूपं, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

९. स्व-समय समकित दृष्टि जिनकी, सोय योगी अयोगिकम् ।
देखतामां लीन होवे, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

१०. चन्द्र सूर्य दीप मणि की, ज्योति येन उल्लंघितम् ।
ते ज्योति थी अपरं ज्योति, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

११. तीर्थसिद्धा अतीर्थ सिद्धा, भेद पंचदशाधिकम् ।
सर्व-कर्म-विमुक्त चेतन, नमो सिद्ध निरंजनम् ॥

१२. एक मांही अनेक राजे, अनेक मांहीं एककम् ।
एक अनेक की नाहिं संख्या, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१३. अजर अमर अलख अनंत, निराकार निरंजनम् ।
परब्रह्म ज्ञान अनंत दर्शन नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१४. अतुल सुख की लहर मे, प्रभु लीन रहे निरंतरम् ।
धर्मध्यान थी सिद्ध दर्शन, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१५. ध्यान धूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय-हुताशनम् ।
क्षमा जाप संतोष पूजा, पूजो देव निरंजनम् ।।

१६. तुम मुक्ति-दाता कर्म-घाता, दीन जन करुणाकरम् ।
सिद्धार्थ-नन्दन जगत-वन्दन, महावीर जिनेश्वरम् ।।

(११)

सेवो सिद्ध सदा जयकार, जासे होवे मगलाचार ।।टेर।।

१. अज, अविनाशी, अगम, अगोचर, अमल, अचल, अविकार ।
अन्तर्यामी त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार—सेवो०

२. कर पणट्ठ कम्मट्ठ अट्ठ–गुण, युक्त मुक्त–संसार ।
पायो पद परमिट्ठ तास पद, वन्दो बारबार—सेवो०

३. सिद्ध प्रभु को सुमिरण जग मे, सकल सिद्धि दातार ।
मनवांच्छित पूरण सुरतरु सम, चिन्ता चूरण हार—सेवो०

४. जपे जाप योगीश रात दिन, ध्यावे हृदय मंझार ।
तीर्थङ्कर हुं प्रणमे उनको, जब होवे अणगार—सेवो०

५. सूर्योदय के समय भक्तियुत, स्थिर चित दृढ़ता धार।
जपे 'सिद्ध' यह जाप तास घर, होवे ऋद्धि अपार—सेवो०

६. सिद्ध स्तुति यह पढ़े भाव से, प्रतिदिन जो नर नार।
सो दिव-शिव—सुख पावे निश्चय, बना रहे सरदार—सेवो०

७. 'माधव' मुनि कहे सकल संघ में बढ़े हमेशा प्यार।
विद्या विनय विवेक समन्वित, पावें प्रचुर प्रचार—सेवो०

(१२)

१. रिषभ अजित जिननाथ, सम्भव अभिनदना।
सुमति पदम सुपार्श्व चंदा प्रभु वन्दना॥

२. सुविधि शीतल श्रेयांस, के वासुपूज्य ध्याइए।
विमल अनन्त धर्मनाथ, शान्ति गुण गाइए॥

३. कुंथु अरह मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत निर्मला।
नेमि अरिष्ठ नमिनाथ, पार्श्व महावीर भला॥

४. ए चौवीसी ना नाम, के नित्य प्रति भजो।
हिंसा झूठ अदत्त मैथुन, परिग्रह तजो॥

५. ए चौवीसीना नाम, के नित्य प्रातः ध्याइए।
जन्म मरण दुःख दूर, मुक्ति पद पाइए॥

६. बीसे वांदुं विहरमाण, इग्यारे वांदुं गणधरा।
वे कर जोड़ी नमुं शीष, के सच्चा जिनेश्वरा॥

७. 'कवीश्वर' कहे कर जोड़, सुणो रे भवी प्राणीयां।
कर्म काटण ए उपाय, के जगमे जाणीयां॥

८. सांचो ते श्री जिन धर्म, व्यसन वश मैं वस्यो ।
चाल्यो कुकर्मनी चाल, चौरासी मां भटकीयो ।

९. भम्यो अनंती काल, के धर्म बिना कुगतिमा ।
प्रभुजी करजो मुझ ऊपर मेहर, के मेलजो मुक्तिमां ।।

(१३)

१. जिनजी पहला ऋषभदेव वान्दसांजी,
जिनजी दूजा अजितनाथ देव, पक्खी रा खमत खामणा जी ।
जिनजी तीजा संभवनाथ वान्दसाजी,
जिनजी चौथा अभिनन्दन देव, पक्खी रा खमत खामणा जी ।
जिनजी पन्द्रह दिनांरो पाप आलोच्यियो जी,
श्रावक शुद्ध मन लीजो रे खमाय—पक्खी रा०

२. जिनजी पांचवां, सुमतिनाथ वान्दसाजी,
जिनजी छट्ठा पदम प्रभु देव ।
जिनजी सातवां सुपार्श्वनाथ वान्दसांजी,
जिनजी आठवां चन्दा प्रभु देव—पक्खी रा०

३ जिनजी नवमा सुविधिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी दसवां शीतलनाथ देव ।
जिनजी इग्यारवां श्रेयांस वान्दसांजी,
जिनजी बारवा वासुपुज्य देव—पक्खी रा०

४. जिनजी तेरवा विमलनाथ वान्दसांजी,
जिनजी चौदहवा अनन्त नाथ देव ।
जिनजी पन्द्रवां धरमनाथ वान्दसाजी,
जिनजी सोलवां शान्तिनाथ देव—पक्खी रा०

५. जिनजी सतरवां कुंथुनाथ वान्दसांजी,
जिनजी अठारवां अरनाथ देव ।
जिनजी उगणिसवां मल्लिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी वीसवां मुनिसुव्रत देव—पक्खी रा०

६. जिनजी इक्कीसवां नमिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी बाइसवां अरिष्टनेमी देव ।
जिनजी तेइसवां पारसनाथ वान्दसांजी,
जिनजी चोबीसवां महावीर देव—पक्खी रा०

७. जिनजी इग्यारा ही गणधर वान्दसांजी,
जिनजी वीस विहरमान देव ।
जिनजी अनन्त चौवीसी ने वान्दसांजी,
जिनजी तिरण तारण गुरुदेव—पक्खी रा०

(१४)

प्रातः ऊठ चौवीस जिनन्द को, सुमिरण कीजे भाव धरी ।।टेर।।

१. रिषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति सुमति दो कुमति हरी ।
पद्म सुपास चन्दा प्रभु ध्यावो, पुष्पदन्त हण्या कर्म अरी ।।

२. शीतल जिन श्रेयांस वासुपूज्य, विमल विमल बुध देत खरी ।
अनन्त धर्म श्री शांति जिनेश्वर, हरियो रोग असाध्य मरी ।।

३. कुंथु अरह मल्लि मुनिसुव्रत, नमी नेमि शिव-रमणी वरी ।
पार्श्वनाथ वर्द्धमान जिनेश्वर, केवल लह्यो भव ओघ हरी ।।

४. तुम सम नहिं कोई तारक दूजो, इण निश्चय मन मांही धरी ।
'त्रिलोकरिख' कहै जिम-तिम करिने, मुक्ति-श्री द्यो मेहर करी ।।

(१५)

१. प्रातः उठी ने सुमरिये हो, भविजन ! मंगलिक शरणा चार ।
आपदा मिटे संपदा हुवे हो, भविजन ! दौलतनां दातार ।।
हिरदे राखिए हो, भविजन ! मंगलिक शरणा चार ।।टेर।।

२. अरिहंत सिद्ध साधू तणां हो, भविजन ! केवलिभाषित धर्म ।
ये शरणा नित ध्यावतां हो, भविजन ! टूटें आठों कर्म ।।

३. वाटे घाटे चालतां हो, भविजन ! रात दिवस मंझार ।
ग्राम नगर पुर विचरतां हो, भविजन ! कष्ट निवारण हार ।।

४. ये चारों सुखकारिया हो, भविजन ! ये चारो जग सार ।
ये चारों उत्तम कह्या हो, भविजन ! ये चारो हितकार ।।

५. डायण सायण भूलड़ा हो, भविजन ! सिंह बाघ ने सूर ।
वैरी दुश्मन चोरटा हो, भविजन ! रहे ते सगला दूर ।।

६. राखो शरणांरी आसथा हो, भविजन ! नेड़ो नहिं आवे रोग ।
आनन्द बरते इण नामथी हो, भविजन ! व्हाला तणो सयोग ।।

७. सुख साता बरते घणी हो, भविजन ! जो ध्यावे नर नार ।
परभव जाताँ जीव ने हो, भविजन ! एह तणो आधार ।।

८. मनचिन्तित मनोरथ फले हो, भविजन ! बरते क्रोड़ कल्याण ।
शुद्ध मने नित ध्यावतां हो, भविजन ! निश्चय कर निरवाण ।।

९. इण सरिखो शरणो नही हो, भविजन ! इण सरिखो नहिं नाम ।
इण सरिखो मित्र नही हो, भविजन ! गांव नगर पुर ठाम ।।

१०. दान शील तप भावना हो, भविजन ! ए जग में तत्व सार ।
करो अराधो भाव से हो, भविजन ! पामो मोक्ष द्वार ।।

११. जोड़ कीधी छै जुगति से हो, भविजन ! 'पाली' शेखे काल।
'ऋषि चौथमल' इम भणे हो, भविजन ! सुणजो वाल गोपाल।

(१६)

१. श्री ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन।
सुमति, पदम, सुपारस, मन-रंजन, चन्दा प्रभूजी ने सेवो।।
सुविधिनाथ, शीतल, गुण गाऊं।
श्री श्रेयांस, वासुपूज्य जी ने ध्याऊं, विमल, सुनिर्मल देवो।।

२. अनन्त, धरम, श्री शान्ति जिनेश्वर।
कुंथुनाथ अति ही अलवेसर, वंदू श्री अर नाथो।।
मल्लीनाथ मुनिसुव्रत, स्वामी।
नमि, नेमी, पारस, हितकामी, मिलियो मुगति नो साथो।।

३. चौवीसवा श्री वीर जिनेश्वर।
पर उपकारी प्रभु श्री परमेश्वर, पहुंता पद निरवाणो।।
ए चौवीसी रा नित गुण गावे।
दुःख दारिद्र ज्यांरा दूर पलावे, वरते क्रोड़ कल्याण।।

४. पुण्य जोगे मानव भव लीधो।
चौवीसे जिनवरजी आराधो, लावो लेवोजी तुम लेवो।।
ए चौवीस भजो सिर नामी।
मोटा प्रभु साहिव अन्तर्यामी, श्री मुक्ति तणां दातारो।।

(१७)

श्री जिन मुझ ने पार उतारो, प्रभु मैं चाकर चरणा रो—श्रीजिन०

१. ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, निरंजन निराकारो।
सुमति पद्म सुपारस चदा प्रभु, मेट्या है विषय विकारो—श्रीजिन०

२. सुविधि शीतल श्रेयाँस वासुपूज्य, मुक्ति तणा दातारो ।
विमल अनंत धर्म शांति जिनेश्वर, साताकारी ससारो—श्रीजिन०

३. कुथु अरह मल्लि मुनिसुव्रतजी, निवर्त्या ससारो ।
नमिनाथ नेम पारस महावीरजी, शासन रा सिरदारो—श्रीजिन०

४. ग्यारह गणधर बीस विहरमान, सर्व साधु अणगारो ।
अनंत चौवीसी ने नित नित वदूं, कर दिया खेवा पारो—श्रीजिन०

५. अधम उधारण विरुद सुणि प्रभु, शरणो लियो चरणां रो ।
अधम उधारण परम पदारथ, अजर अमर अविकारो—श्रीजिन०

६. राग द्वेष कर्म बीज महाबलियो, बालि कीनो सर्व छारो ।
केवलज्ञान ने केवल दर्शन, निज गुण लीना धारो—श्रीजिन०

७. दान शील तप भावना भावो, दया धर्म तत्व सारो ।
'ऋषि लालचन्द' इण पर विनवे, प्रभु मारो करो निस्तारो—श्रीजिन०

(१८)

श्री पैसठिया यन्त्र का छन्द

(श्री चतुर्विंशति जिन स्तवन)

१. श्री नेमीश्वर सम्भव स्वाम, सुविधि धर्म शान्ति अभिराम ।
अनन्त सुव्रत नमिनाथ सुजाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

२. अजितनाथ चन्दा प्रभु धीर, आदीश्वर सुपार्श्व गम्भीर ।
विमलनाथ विमल जग जाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

३. मल्लिनाथ जिन मगल-रूप, धनुष पचीस सुन्दर शुभरूप ।
श्री अरनाथ नमूं वर्धमान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

४. सुमति पद्म प्रभु अवतंस, वासुपूज्य शीतल श्रेयंस।
कुंथु पार्श्व अभिनन्दन भाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

५. इणपरे जिनवर संभारिए, दु ख दारिद्र विघ्न निवारिए।
पच्चीसे पैंसठ परमाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

६. इण भणतां दु.ख नावे कदा, जो निज पासे राखो सदा।
धरिये पंचतणू मन ध्यान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

७. श्री जिनवर नामें वांछित मिले, मन-वांछित सहु आशा फले।
'धर्म सिंह' मुनि नाम निधान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२४	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

(१९)

विनयचन्द चौबीसी

१. श्री ऋषभनाथ

१. श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिरनामी तुम भणी।
प्रभु अन्तरजामी आप, म्हो पर म्हेर करीजे हो,
मेटीजे चिन्ता मन तणी, म्हारा काटो पुराकृत पाप—
श्री आदीश्वर स्वामी ॥टेर॥

२. आदि धरम की कीधी हो, भरत क्षेत्र अवसर्पिणी काल मे ।
प्रभु जुगल्या धर्म निवार, पहिला नरवर मुनिवर हो ।
तीर्थङ्कर जिन हुआ केवली, प्रभु तीरथ थाप्या चार—श्री०

३. मां 'मरु देवी' थांरी हो, गज हौदे मुक्ति पधारिया ।
तुम जनम्यां ही परमाण, पिता 'नाभि' महाराजा हो ।
भव देव तणो करि नर थया, प्रभु पाम्या पद निर्वाण—श्री०

४. भरतादिक सौ नन्दन हो, वे पुत्री 'ब्राह्मी-सुन्दरी' ।
प्रभु ए थांरा अंगजात, सघला केवल पाया हो ।
समाया अविचल जोत मे, कांई त्रिभुवन मे विख्यात—श्री०

५. इत्यादिक बहु तार्या हो, जिन कुल मे प्रभु तुम ऊपन्या ।
कांई आगम मे अधिकार, और असंख्या तार्या हो ।
उद्धार्या सेवक आपरा, प्रभु शरणा ही आधार—श्री०

६. अशरण शरण कहीजे हो, प्रभु विरुद विचारो साहिबा ।
कांई कहो गरीब निवाज, शरण तुम्हारी आयो हो ।
हूं चाकर जिन चरणां तणो, म्हारी सुणिये अरज अवाज—श्री०

७. तूं करुणाकर ठाकुर हो, प्रभु धर्म दिवाकर जग गुरु ।
काई भव दुःख दुष्कृत टाल, 'विनयचन्द' ने आपो हो ।
प्रभु निजगुण सपत शाश्वती, प्रभु दीनानाथ दयाल—श्री०

२. श्री अजितनाथ

१. श्री जिन 'अजित' नमु जयकारी तूं देवन को देवजी ।
'जितशत्रु' राजा ने 'विजिया' राणी को, आतम जात तुमेव जी ।।
श्री जिन अजित नमु जयकारी ।।टेर।।

२. दूजा देव घणेरा जग में, ते मुझ दाय न आवेजी ।
तह मन तह चित्त हमने, तूंहीज अधिक सुहावेजी—श्री०

३ सेव्या देव घणां भव-भव मे, तो पिण गरज न सारी जी ।
अब के श्री जिनराज मिल्यो तूं, पूरण पर उपकारी जी—श्री०

४. त्रिभुवन में जस उज्ज्वल तेरो, फैल रह्यो जग जाने जी ।
वंदनीक पूजनीक सकल को, आगम एम वखाणे जी—श्री०

५. तूं जग जीवन अन्तरजामी, प्राण आधार पियारो जी ।
सब विधि लायक संत सहायक, भक्त-वत्सल पद धारोजी—श्री०

६. अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता, तो सम अवर न कोई जी ।
वधे तेज सेवक को दिन-दिन, जेथ-तेथ जय होई जी—श्री०

७. अनन्त ज्ञान दर्शन सम्पत्ति ले, ईश भयो अविकारी जी ।
अविचल भक्ति 'विनयचंद' कूं द्यो, तो जाणुं रीझ तुम्हारी जी—श्री०

३. श्री सम्भवनाथ

१. आज म्हारा सभव जिन जी का, हित-चितसू गुण गास्यां ।
मधुर-मधुर स्वर राग अलापी, गहरे शब्द गुंजास्यां राज—आज०

२. नृप 'जितारथ' 'सेन्या' राणी, ता सुत सेवक थास्यां ।
नवधा भक्ति भाव सुं करने, प्रेम मगन हुई जास्यां राज—आज०

३. मन वच काय लाय प्रभु सेती, निसदिन सास उसास्यां ।
संभव जिनजी की मोहिनी मूरति, हिये निरन्तर ध्यास्यां राज—आज०

४. दीनदयाल दीन वन्धु के, खानाजाद कहास्यां ।
तन-धन प्राण समर्पी प्रभु को, इण विध वेग रिझास्यां राज—आज०

५ अष्ट कर्म–दल अति जोरावर, ते जीत्यां सुख पास्यां ।
जालिम मोह मार को जामे, साहस करी भगास्यां राज—आज०

६. ऊवड़ पंथ तजी दुर्गति को, शुभ गति पंथ समास्यां ।
आगम अरथ तणे अनुसारे, अनुभव दशा जगास्यां राज—आज०

७. काम-क्रोध मद लोभ कपट तजि, निज गुण सुं लिव लास्यां ।
'विनयचंद' संभव जिन तूठ्या, आवागमन मिटास्यां राज—आज०

४. श्री अभिनन्दन

१. श्री अभिनन्दन दुख निकन्दन, वन्दन पूजन योगजी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी—श्री०

२. 'संवर' राय 'सिधारथ' राणी, तेहनो आतमजात जी।
प्राण पियारो साहिब सांचो, तूं हिज मात ने तातजी—श्री०

३. कइयक सेव करे शंकर की, कइयक भजे मुरार जी।
गणपति सूर्य उमा कई सुमरे, हूं सुमरू' अविकारजी—श्री०

४. देव कृपा सुं पामें लक्ष्मी, सो इण भव को सुखजी।
तूं तूठा इण भव पर भव मे, कदीय न व्यापै दु.खजी—श्री०

५. जदपि इन्द्र नरेन्द्र निवाजे, तदपि करत निहालजी।
तूं पूजनीक नरेन्द्र इन्द्र को, दीनदयाल कृपालजी—श्री०

६. जब लग आवागमन न छूटे, तब लग है अरदासजी।
सम्पति सहित ज्ञान समकित गुण, पाऊं दृढ विश्वासजी—श्री०

७. अधम उधारन विरुद तिहारो, जोवो इण ससार जी।
लाज 'विनयचन्द' की अव तो तैं, भवनिधि पार उतारियेजी—श्री०

५. श्री सुमतिनाथ

१. सुमति जिणेसर साहिबाजी, 'मेघरथ' नृप नो नन्द।
'सुमंगला' माता तणो जी, तनय सदा सुखकंद—प्रभू त्रिभुवन तिलोजी ॥

२. सुमति सुमति दातार, महा महिमा निलोजी।
प्रणमूं बार हजार, प्रभू त्रिभुवन तिलोजी—प्रभु०

३. मधुकर नो मन मोहियोजी, मालती कुसुम सुवास।
त्यूं मुझ मन मोह्यो सही, जिन महिमा सुविमास—प्रभु०

४. ज्यूं पङ्कज सूरजमुखीजी, विकसे सूर्य प्रकाश।
त्यूं मुझ मनड़ो गहगह्योजी, सुनि जिन चरित हुल्लास—प्रभु०

५. पपइयो पिउ-पिउ करेजी, जान वर्षाऋतु मेह ।
त्यूं मो मन निसदिन रहे, जिन सुमिरण सूं नेह—प्रभु०
६. काम-भोग नी लालसाजी, थिरता न धरे मन ।
पिण तुम भजन प्रताप थी, दाझै दुर्मति वन—प्रभु०
७. भवनिधि पार उतारियेजी, भक्त-वच्छल भगवान् ।
'विनयचन्द' की वीनती थे मानो कृपानिधान—प्रभु०

६. श्री पद्मप्रभु

पदम प्रभु ! पावन नाम तिहारो, पतित उद्धारन हारो ।।टेर।।
१. जदपि धीवर, भील, कसाई, अति पापिष्ठ जमारो ।
तदपि जीव-हिंसा तज प्रभु भज, पावै भवनिधि पारो—पदम०
२. गौ ब्राह्मण प्रमदा बालक की, मोटी हत्या चारों ।
तेहनो करणहार प्रभु भजने, होत हत्यासुं न्यारो—पदम०
३. वैश्या चुगल छिनाल जुवारी, चोर महा वटमारो ।
जो इत्यादि भजे प्रभु तो ने, तो निवृत्ते संसारो—पदम०
४. पाप पराल को पुंज वन्यो अति, मानो मेरु अकारो ।
ते तुझ नाम हुतासन सेती, सहजां प्रज्वलत सारो—पदम०
५. परम धरम को मरम महा रस, सो तुम नाम उच्चारो ।
या सम मत्र नही कोई दूजो, त्रिभुवन मोहनगारो—पदम०
६. तो सुमरण बिन इण कलियुग में, अवर न कोई आधारो ।
मैं वारी जाऊं तों सुमिरण पर, दिन-दिन प्रीत बधारो—पदम०
७. 'सुषमा' राणी को अंगजात तूं, 'श्रीधर' राय कुमारो ।
'विनयचन्द' कहे नाथ निरंजन, जीवन प्राण हमारो—पदम०

७. श्री सुपार्श्वनाथ

१. 'प्रतिष्ठसेन' नरेश्वर को सुत, 'पृथ्वी' तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब सांचो, सेवक ने सुखकारी—
श्री जिनराज सुपास, पूरो (नो) आस हमारी ।।टेर।।

२. धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक, मन वांछित सुख पूरो ।
बार–बार मुझ यही विनती, भवभव चिंता चूरो—श्रीजिन०

३. जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी, कल्पवृक्ष सम जाणू ।
पूरण ब्रह्म प्रभु परमेश्वर, भव-भव तुम्हे पिछाणू —श्रीजिन०

४. हूं सेवक तूं साहिब मेरो, पावन पुरुष विज्ञानी ।
जनम-जनम जित-तिथ जाऊं तो, पालज्यो प्रीत पुरानी—श्रीजिन०

५. तारण-तरण शरण-अशरण को, विरुद इसो तुम सोहे ।
तो सम दीनदयाल जगत में, इन्द्र नरेन्द्र न को है—श्रीजिन०

६. स्वयभूरमण बड़ो समुद्रो मे, शैल सुमेर विराजै ।
तूं ठाकुर त्रिभुवन में मोटो, भक्ति कियां दुःख भाजै—श्रीजिन०

७. अगम अगोचर तूं अविनाशी, अलख अखंड अरूपी ।
चाहत दरस 'विनयचद' तेरो, सच्चिदानन्द स्वरूपी—श्रीजिन०

८. श्री चन्द्रप्रभु

जय जय जगत शिरोमणी, हू सेवक ने तूं धणी ।
अब तोसूं गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी ।।टेर।।

१. मुझ महर करो, चन्दाप्रभु जग जीवन अन्तरजामी ।
भव दु.ख हरो सुणिये अरज हमारी (ओ !) त्रिभुवन स्वामी–मुझ०

२. 'चन्द्रपुरी' नगरी हती, 'महासेन' नामा नरपति ।
राणी 'श्रीलखमा' सती, तसु नन्दन तूं चढती रति—मुझ०

३. तूं सर्वज्ञ महाज्ञाता, आतम अनुभव को दाता ।
तूं तूठां लहिये साता, प्रभु धन्य जगत् में तुम ध्याता—मुझ०

४. शिव सुख प्रार्थना करसूं, उज्ज्वल ध्यान हिये धरसूं ।
रसना तुम महिमा करसूं, प्रभु इण विध भवसागर तिरसूं—मुझ०

५. चन्द्र चकोरन के मन मे, गाज अवाज हुए घन में।
पिय अभिलाषा ज्यों त्रिय तनमें त्यो वसियो तूं मो चितवन में—मुझ०
६. जो सुनजर साहिव तेरी, तो मानो विनती मेरी।
काटो करम भरम वैरी, प्रभु पुनरपि नही परूं भव फेरी—मुझ०
७. आतम ज्ञान दशा जागी, प्रभु तुम सेती लिव लागी।
अन्य देव भ्रमणा भागी, प्रभु 'विनयचंद तिहारो अनुरागी—मुझ०

९. श्री पुष्पदन्त (सुविधिनाथ)

१. काकंदी नगरी भली हो, श्री 'सुग्रीव' नृपाल।
'रामा' तस पटरायणी हो, तस सुत परम कृपाल—
श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो ।।टेर।।
२. त्यागी प्रभुता राज नी हो, लीनो संजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार—श्री०
३. अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
शुद्ध समकित चारित्र नो हो, परम क्षायिक गुण लीन—श्री०
४. ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त।
ज्ञान दर्शन बल ये तिहुं हो, प्रगट्या अनन्तानन्त—श्री०
५. अव्यावाघ सुख पामिया हो, वेदनीय करम खपाय।
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय कर जिनराय—श्री०
६. नाम करम नो क्षय करी हो, अमूर्तिक कहाय।
अगुरु-लघु पणो अनुभव्यो हो, गोत्र करम मूकाय—श्री०
७, अष्ट गुणाकर ओलख्यो हो, ज्योति रूप भगवन्त।
'विनयचद' के उर वसो हो, अहोनिशि प्रभु पुष्पदंत—श्री०

१०. श्री शीतलनाथ

१. 'श्रीदृढरथ' नृप तो पिता, 'नन्दा' थांरी मांय।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय ।।टेर।।

२. जय जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणानिधि करतार ।
सेव्यां सुरतरु जेहवा, वांछित सुख दातार—जय०

३. प्राण पियारो तूं प्रभु, पतिवरता पति जेम ।
लगन निरंतर लग रही, दिन-दिन अधिको प्रेम—जय०

४. शीतल चंदन नी परे, जपता निशदिन जाप ।
विषय कषाय थी ऊपन्यो, मेटो भव-दुःख ताप—जय०

५. आर्त्त रौद्र परिणाम थी, उपजे चिन्ता अनेक ।
ते दुःख कापो मानसिक, आपो अचल विवेक—जय०

६. रोगादिक क्षुधा – तृषा, शस्त्र – अस्त्र प्रहार ।
सकल शरीरी दु:ख हरो, दिलसुं विरुद विचार—जय०

७. सुप्रसन्न होय शीतल प्रभु, तूं आशा विसराम ।
'विनयचंद' कहे मो भणी, दीजे मुक्ति मुकाम—जय०

११. श्री श्रेयांसनाथ

१. चेतन जाण कल्याण करण को, आन मिल्यो अवसर रे ।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण, मन चंचल थिर कर रे—
श्रेयास जिनन्द सुमर रे ।।टेर।।

२. सांस उसास विलास भजन को, दृढ विश्वास पकर रे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये विच, सो सुमिरन जिनवर रे—श्रे०

३. कंदर्प क्रोध लोभ मद माया, ये सवही परिहर रे ।
सम्यक्दृष्टि सहज सुख प्रगटे, ज्ञान दशा अनुसर रे—श्रे०

४. झूठ प्रपच जोवन तन धन अरु, सजन सनेही घर रे ।
छिन मे छोड़ चले परभव को, बंध शुभाशुभ घर रे—श्रे०

५. मानस जनम पदारथ जा की, आशा करत अमर रे ।
ते पूरव सुकृत कर पायो, धरम-मरम दिल धर रे—श्रे०

६. 'विश्वसेन' 'विस्ता' राणी को, नंदन तूं न बिसर रे।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या, मुक्ति पंथ पग धर रे—श्रे०

७. तूं अविकार विचार आतम गुण, भ्रम जंजाल न पर रे।
पुद्गल चाह मिटाय 'विनयचंद', तूं जिन ते न अवर रे—श्रे०

१२. श्री वासुपूज्य

१. प्रणमूं वासुपूज्य–जिन नायक, सदा सहायक तूं मेरो।
विषम वाट घाट भय थानक, परमाश्रय शरणो तेरो—प्र०

२. खल-दल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौ तरफ दियो घेरो।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरियन होय प्रगटे चेरो—प्र०

३. विकट पहाड़ उजाड़ बीच कोई, चोर कुपात्र करे हेरो।
तिण बिरियां करिये तो सुमिरन, कोई न छीन सके डेरो—प्र०

४. राजा बादशाह जो कोई कोपे, अति तकरार करे छेरो।
तदपि तूं अनुकूल होय तो, छिन में छूट जाय सब केरो—प्र०

५. राक्षस भूत पिशाच डाकिनी, साकिनी भय नावे नेरो।
दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभु तुम नाम भज्यां गहरो—प्र०

६. विस्फोटक कुष्टादिक संकट, रोग असाध्य मिटे सगरो।
विष प्यालो अमृत होय प्रगमे, जो विश्वास जिनन्द तेरो—प्र०

७. मात 'जया' 'वसु' नृप के नन्दन, तत्व जथारथ बुध प्रेरो।
बे कर जोड़ि 'विनयचन्द' विनवे, वेग मिटे मुझ भव फेरो—प्र०

१३. श्री विमलनाथ

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे॥

१. जीवा! विषय विकार विसार ने, तूं मोहनीय कर्म खपाय रे।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥टेर॥

२. सूक्ष्म साधारण पणे, प्रत्येक वनस्पति मांय रे ।
जीवा ! छेदन-भेदन तें सह्या, मर-मर उपज्यो तिण काय रे—जी०

३. काल अनन्ती तिहां भम्यो, तेहना दुःख आगमथी संभाल रे ।
जीवा ! पृथ्वी अप तेउ वायु मे, रह्यो असख्यासंख्य काल रे—जी०

४. एकेन्द्री सूं बेइन्द्री थयो, पुण्याई अनन्ती वृद्धि रे ।
जीवा ! सन्नी पचेन्द्री लगे पुण्य बध्या, अनन्तानन्त प्रसिद्ध रे—जी०

५. देव नरक तिरयंच मे, अथवा मानव भव बीच रे ।
जीवा ! दीनपणे दु ख भोगव्या, इण चारो ही गति बीच रे—जी०

६. अब के उत्तम कुल मिल्यो, भेट्या उत्तम गुरु साध रे ।
जीवा ! सुण जिन वचन सनेह से, समकित व्रत शुद्ध आराध रे—जी०

७. पृथ्वीपति 'कृतभानु' को, 'सामा' राणी को कुमार रे ।
जीवा ! 'विनयचंद' कहे ते प्रभु, सिर सेहरो हिवड़ा रो हार रे—जी०

१४. श्री अनन्तनाथ

१. अनन्त जिनेश्वर नित नमूं, अद्‌भुत ज्योंति अलेख ।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख—अ०

२. सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद्‌रूप ।
पवन शब्द आकाशथी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप—अ०

३. सकल पदारथ चिन्तवूं, जे-जे सूक्ष्म होय ।
तिणथी तूं सूक्ष्म महा, तो सम अवरन कोय—अ०

४. कवि पण्डित कही-कही थके, आगम अर्थ विचार ।
तो पण तुम अनुभव तिको, न सके रसना उचार—अ०

५. आप भणे मुख सरस्वती, देवी आपो आप ।
कही न सके प्रभु तुम सत्ता, अलख अजप्पा जाप—अ०

६. मन बुध वाणी तो विषे, पहुंचे नही लिगार ।
साक्षी लोकालोकनी, निर्विकल्प निर्विकार—अ०

७. मा 'सुजसा' 'सिंहरथ' पिता, तस सुत 'अनन्त' जिनन्द ।
'विनयचन्द' अब ओलख्यो, साहिब सहजानन्द—अ०

१५. श्री धर्मनाथ

१. धरम जिनेश्वर मुझ हिवड़े वसो, प्यारो प्राण समान ।
कबहूं न विसरूं हो चितारूं नही, सदा अखडित ध्यान—ध०

२. ज्यूं पणिहारी कुम्भ न विसरे, नटवो नृत्य निदान ।
पलक न विसरे हो पदमणी पियुभणी, चकवी न विसरे भान—ध०

३. ज्यूं लोभी मन धन की लालसा, भोगी के मन भोग ।
रोगी के मन माने औषधि, जोगी के मन जोग—ध०

४. इणी परे लागी पूरण प्रीतड़ी, जाव जीव परियन्त ।
भव-भव चाहूं हो न पड़े आंतरो, भव भंजन भगवन्त—ध०

५, काम-क्रोध मद मत्सर लोभथी, कपटी कुटिल कठोर ।
इत्यादिक अवगुण कर हूं भर्यो, उदय करम के जोर—ध०

६. तेज प्रताप तुम्हारो प्रगटे, मुझ हिवड़ा में आय ।
तो हूं आतम निज गुण संभालने, अनन्त बली कहिवाय—ध०

७. 'भानु' नृप 'सुव्रता' जननी तणो, अंगजात अभिराम ।
'विनयचन्द' ने वल्लभ तूं प्रभु, शुद्ध चेतन गुणधाम—ध०

१६. श्री शान्तिनाथ

१. 'विश्वसेन' नृप 'अचला' पटराणी तस सुत कुल सिणगार हो सौभागी ।
जनमत शांति करी निज देश में, मिरगी मार निवार हो सौभागी—शां०

२. शांति जिनेश्वर साहिवा सोलवां, शांतिदायक तुम नाम हो सौभागी ।
तन मन वचन सुध करि ध्यावतां, पूरे सघली आस हो सौभागी—शां०

३. विघन न व्यापे तुम सुमिरण कियां, नासे दारिद्र दुःख हो सौभागी ।
अष्ट सिद्धि नव निधि पग-पग मिले, प्रगटे सघला सुख हो सौभागी—शां०

४. जेहने सहायक शांति जिनन्द तूं, तेहने कमीय न काय हो सौभागी।
जे जे कारज मन मे तेवड़े, ते–ते सफला थाय हो सौभागी–शां०

५. दूर दिसावर देश प्रदेश में, भटके भोला लोग हो सौभागी।
सानिधकारी सुमिरण आपरो, सहज मिटे सहू शोक हो सौभागी–शां०

६. आगम–साख सुणी छे एहवी, जे जिण सेवक होय हो सौभागी।
तेहनी आशा पूरे देवता, चौसठ इन्द्रादिक सोय हो सौभागी–शां०

७. भव–भव अन्तरजामी तुम प्रभु, हमने छे आधार हो सौभागी।
वेकर जोड़ 'विनयचन्द' विनवे, आपो सुख श्रीकार हो सौभागी–शां०

१७. श्री कुन्थुनाथ

१. कुन्थु जिनराज तूं ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।
त्रिलोकी नाथ तूं कहिये, हमारी बांह दृढ गहिये—कुन्थु०

२. भवोदधि डूबतो तारो, कृपानिधि आसरो थांरो।
भरोसो आपको भारी, विचारो विरुद उपकारी—कुन्थु०

३. उमाहो मिलन को तोसे, न राखो आंतरो मोंसे।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी, वैसी चैतन्यता मेरी—कुन्थु०

४. करम-भ्रम जाल को दपट्यो, विषय सुख ममत्व मे लपट्यो।
भ्रम्यो हूं चहु गती मांही, उदयकर्म भरम की छाही—कुन्थु०

५. उदय को जोर है जौंलो, न छूटे विषय सुख तौंलो।
कृपा गुरुदेव की पाई, निजातम भावना भाई—कुन्थु०

६. अजब अनुभूति उर जागी, सुरति निज रूप मे लागी।
तुम्ही हम ऐक्यता जाणूं,—द्वैत भ्रम कल्पना मानूं—कुन्थु०

७. 'श्रीदेवी' 'सूर' नृप नन्दा, अहो! सर्वज्ञ सुखकन्दा।
'विनयचन्द' लीन तव गुण मे, न व्यापे अविद्या मन मे—कुन्थु०

१८. श्री अरहनाथ

१. अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी, साहिब सीधो—

२. चेतन भज तूं अरहनाथ ने, ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेहनो पुत्र कहाय—सा०

३. क्रोड़ जतन करतां नहीं पामे, एहवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करी ने लहिये, मुक्ति अमोलक ठाम—सा०

४. समकित सहित कियां जिन भगती, ज्ञान दर्शन चारित्र।
तप बीरज उपयोग तिहारो, प्रगटे परम पवित्र—सा०

५. स्व उपयोग सरूप चिदानन्द, जिनवर ने तूं एक।
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो, बाधे शुद्ध विवेक—सा०

६. अलख अरूप अखंडित अविचल, अगम अगोचर आप।
निर्विकल्प निकलक निरंजन, अद्‌भुत ज्योति अमाप—सा०

७. अोलख अनुभव अमृत याको, प्रेम सहित रस पीजे।
हूं तूं छोड़ 'विनयचन्द' अन्तर, आतमराम रमीजे—सा०

१९. श्री मल्लिनाथ

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी,
'कुम्भ' पिता 'परभावति' मइया, तिनकी कुंवारी ।।टेर।।

१. मा नी कूंख कन्दरा मांही उपन्या अवतारी।
मालती कुसुम-मालनी वांछा, जननी उर धारी—मल्लि०

२. तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रियकारी।
अद्‌भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी, वेद धर्‌यो नारी—मल्लि०

३. परणन काज जान सज आए, भूपति छः भारी।
मिथिला पुरि घेरी चौतरफा, सेना विस्तारी—मल्लि०

४. राजा 'कुम्भ' प्रकाशी तुम पे, वीती विधि सारी।
छहुं नृप जान सजी तो परणन, आया अहंकारी—मल्लि०

५. श्रीमुख धीरज दीधी पिता ने, राखो हुशियारी।
पुतली एक रची निज आकृति, थोथी ढकवारी—मल्लि०

६. भोजन सरस भरी सा पुतली, श्री जिन सिणगारी।
भूपति छ: बुलवाया निज मन्दिर, विच बहु दिन टारी—मल्लि०

७. पुतली देख छहुं नृप मोह्या, अवसर विचारी।
ढांक उघाड दियो पुतली को, भभक्यो अन्न भारी—मल्लि०

८. दुसह दुर्गन्ध सही ना जावे, ऊठ्या नृप हारी।
तब उपदेश दियो श्रीमुख से, मोह दशा टारी—मल्लि०

९. महा असार उदारिक देही, पुतली इव प्यारी।
सग किया भटके भव-दुख मे, नारी नरक – द्वारी—मल्लि०

१०. भूपति छ: प्रतिबोध मुनि हो, सिद्धगति सम्भारी।
'विनयचन्द' चाहत भव-भव मे, भक्ति प्रभु थारी—मल्लि०

२०. श्री मुनिसुव्रतस्वामी

१. श्री मुनिसुव्रत साहिबा, दीन दयाल देवा तणा देव के।
तारण तरण प्रभु मो भणी, उज्ज्वल चित्त सुमरूं नितमेव के—श्री०

२. हूं अपराधी अनादि को, जनम-जनम गुनाह किया भरपूर के।
लूटिया प्राण छ: कायना, सेविया पाप अठारह क्रूर के—श्री०

३. पूरब अशुभ कर्त्तव्यता, तेहने प्रभु तुम न विचार के।
अधम उधारण विरुद छे, सरण आयो अब कीजिये सार के—श्री०

४. किंचित पुण्य परभावथी, इण भव ओलख्यो श्रीजिन धर्म के।
निवर्तूं नरक निगोदथी, एहवो अनुग्रह करो परब्रह्म के—श्री०

५. साधुपणो नहीं संग्रह्यो, श्रावक व्रत न किया अंगीकार के।
आदर्‍या तो न आराधिया, तेहथी रुलियो हूं अनन्त संसार के—श्री०

६. अब समकित व्रत आदर्यो, तेहने आराधि हूं उतरूं भव पार के।
जनम जीतव्य सफलो हुवे, इण पर विनवूं बार हजार के—श्री०

७. 'सुमति' नराधिप तुम पिता, धन-धन श्री 'पद्मावती' मायके।
तस सुत त्रिभुवन तिलक तूं, वंदत 'विनयचंद' सीस नमाय के—श्री०

२१. श्री नमिनाथ

१. 'विजयसेन' नृप 'विप्राराणी', नमिनाथ जिन जायो।
चौसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव, सुर नर आनन्द पायो रे—
सुज्ञानी जीवा भजले जिन इकवीसवां ।।टेर।।

२. भजन कियां भव-भवना दुष्कृत, दुःख दुर्भाग्य मिट जावे।
काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा, दुर्मति निकट न आवे रे—सु०

३. जीवादिक नव तत्व हिये धर, हेय ज्ञेय समझीजे।
तीजो उपादेय ओलख ने, समकित निरमल कीजे रे—सु०

४. जीव अजीव बंध ये तीनों, ज्ञेय जथारथ जानो।
पुण्य पाप आस्त्रव परिहरिये, हेय पदारथ मानो रे—सु०

५. संवर मोक्ष निर्जरा निज गुण, उपादेय आदरिये।
कारण कारज जाण भलि विध, भिन-भिन निरणो करिये रे—सु०

६. कारण ज्ञान स्वरूप जीव को, कारज कियो पसारो।
दोनूं को साखी शुद्ध अनुभव, आपो खोज तिहारो रे—सु०

७. तूं सो प्रभु प्रभु सो तूं है, द्वैत कल्पना मेटो।
सच्चिद् आनन्दरूप 'विनयचन्द', परमातम पद भेटो रे—सु०

२२. श्री नेमिनाथ

'समुद्रविजय' सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल को टीको ।
१. रत्न कुक्ष धारिणी 'शिवादे', तेहनो नन्दन नीको ।।
श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे ।।टेर।।

२. सुन पुकार पशु की करुणा कर, जानि जगत् सुख फीको ।
नव भव नेह तज्यो जोवन मे, उग्रसेन नृप घी को—श्रीजिन०

३. सहस्र पुरुष संग सजम लीधो, प्रभुजी पर उपकारी ।
धन–धन नेम राजुल की जोडी, महा बाल – ब्रह्मचारी—श्रीजिन०

४. बोधानन्द स्वरूपानन्द मे, चित्त एकाग्र लगायो ।
आतम-अनुभव दशा अभ्यासी, शुक्लध्यान जिन ध्यायो—श्रीजिन०

५. पूर्णानन्द केवली प्रगटे, परमानन्द पद पायो ।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर, सहजानन्द समायो—श्रीजिन०

६. नित्यानन्द निराश्रय निश्चल, निर्विकार निर्वाणी ।
निरातक निरलेप निरामय, निराकार वरनाणी—श्रीजिन०

७. एहवो ज्ञान समाधि सयुत, श्री नेमीश्वर स्वामी ।
पूरण कृपा 'विनयचंद' प्रभु की, अब तो ओलख पामी—श्रीजिन०

२३. श्री पार्श्वनाथ

१. 'अश्वसेन' नृप कुल तिलोरे, 'वामा दे' नो नन्द ।
चिन्तामणी चित मे बसेरे, दूर टले दु.ख द्वन्द ।।
जीवरे तूं पार्श्व जिनेश्वर वन्द ।।टेर।।

२. जड़ चेतन मिश्रित पणेरे, करम शुभाशुभ थाय ।
ते विभ्रम जग कल्पना रे, आतम अनुभव न्याय......जीवरे०

३. बेहमी भय माने जथारे, सूने घर वैताल ।
त्यूं मूरख आतम विषेरे, मान्यो जग भ्रम जाल—जीवरे०

४. सर्प अन्धारे रासड़ी रे, रूपो सीप मझार।
मृगतृष्णा अंबू मृषारे, त्यूं आतम में संसार—जीवरे०

५. अग्नि विषे ज्यूं मणि नही रे, मणि में अग्नि न होय।
सपने की सम्पत्ति नही ज्यूं, त्यूं आतम में जग जोय—जीवरे०

६. बाझ पुत्र जनमे नहीं रे, सींग शशै सिर नांय।
कुसुम न लागे व्योम मे रे, त्यूं जग आतम मांय—जीवरे०

७. अमर अजोनी आतमा रे, है निश्चय तिहुं काल।
'विनयचन्द' अनुभव थकी रे, तूं निज रूप सम्हाल—जीवरे०

२४. श्री महावीर

१. श्री महावीर नमो वरनाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी।
धन-धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन 'त्रिशलादे' मात रे प्राणी॥

२. ज्या सुत जायो गोद खिलायो, 'वर्धमान' विख्यात रे प्राणी।
प्रवचन सार विचार हिया में, कीजे अरथ प्रमाण रे प्राणी॥

३. सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाधि रे प्राणी।
ते करिये भवसागर तरिये, आतम भाव अराधि रे प्राणी॥

४. ज्यो कंचन तिहु काल कहीजे, भूषण नाम अनेक रे प्राणी।
त्यो जगजीव चराचर जोनि, है चेतन गुण एक रे प्राणी॥

५. अपणो आप विषै थिर आतम, सोहं हस कहाय रे प्राणी।
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय, पुद्‌गल भरम मिटाय रे प्राणी॥

६. शब्द रूप रस गंध न जामे, न सपरस तप छांह रे प्राणी।
तिमिर उद्योत प्रभा कछु नाही, आतम अनुभव मांहि रे प्राणी॥

७. सुख दु.ख जीवन मरण अवस्था, ए दस प्राण संगात रे प्राणी।
इनथी भिन्न 'विनयचंद' रहिये, ज्यों जल में जलजात रे प्राणी॥

कलश

चौबीस तीरथनाथ कीरति, गावतां मन गह–गहै।
कुम्भट गोकुलचन्द – नन्दन, 'विनयचन्द' इण पर कहै ।।
उपदेश पूज्य हमीर मुनि को, तत्त्व निज उर मे धरी।
उगणीश-सौ-छः के छमच्छर, महास्तुति यह पूरण करी ।।

(२०)

१. देखो रे आदेश्वर बाबा, कैसा ध्यान लगाया है ।।टेर।।
नाभिराय के पुत्र कहीजे, मां मरुदेवी जाया है—देखो०
२. कर ऊपर कर अधिक विराजे, आसन अचल जमाया है।
केवल ज्ञान उपाय जिनेश्वर, शिव-रमणी को ध्याया है—देखो०
३. सुर नर जिनकी भक्ति करत हैं, जिनवर सूं लिव लाया है।
सेवा कियां मिले सुख संपत, सब जीवन सुख पाया है—देखो०
४. देवी देव मिले बहुतेरे, भवि-जन मगल गाया है।
तीन लोक मे महिमा प्रभु की, 'चंद्रकुशल' गुण गाया है—देखो०
५. देखो रे आदेश्वर बाबा, कैसा ध्यान लगाया है।
कैसा ध्यान लगाया रे बाबा, कैसा मन समझाया है—देखो०

(२१)

बोल बोल आदेश्वर व्हाला।
कांई थारी मरजी रे, मां सूं मूंडे बोल ।।टेर।।
१. मां मरुदेवी बाट जोवती, इतरे बधाई आई रे।
आज ऋषभजी उतरिया बाग मे, सुन हरसाई रे—मांसूं०
२ न्हाय धोयने गज असवारी, करी मरुदेवी माता रे।
जाय बाग में नन्दन निरख्यो, पाई साता रे—मासूं०

३. राज छोड़ने निकल्या ऋषभजी, आ लीला अद्भूती रे।
चमर छत्र अरु सिंहासन, मोहनी मूरती रे—मांसूं०

४. दिन भर बैठी बाट जोवती, कद मारो ऋषभो आवे रे।
कहती भरत ने आदिनाथ की, खबरां लादे रे—मांसूं०

५. किस्या देश में गयो बालेश्वर, तुझ बिन वनिता सूनी रे।
वात कहो दिल खोल लालजी, क्यूं बणगा थे मुनी रे— मांसूं०

६. रिया मजा में है सुखसाता, खूब कर्‌या दिल चाया रे।
अब तो बोल आदेश्वर म्हासूं, कलपे काया रे—मांसूं०

७. खैर हुई सो हो गई बाला, बात भली नहीं कीनी रे।
गया पछै कागद नही दीनूं, म्हारी खबर न लीनी रे—मांसूं०

८. ओलम्बा मैं देऊं कठा तक, पाछो क्यों नहीं बोले रे।
दुःख जननी का देख आदेश्वर, हिवड़ो डोले रे—मांसूं०

९. अनित्य भावना भाई माता, निज आतम ने तारी रे।
केवल पाम्या मोक्ष सिधाया ज्यांने वन्दना मारी रे—मांसूं०

१०. मुगति रा दरवाजा खोल्या, मोरा देवी माता रे।
काल असंख्या रह्या उघाड़ा, जम्बू जड़ गया ताला रे—मांसूं०

११. साल बहत्तर तीरथ ओसिया, 'घेवर' प्रभु गुण गाया रे।
सुरत मोहनी प्रथम जिनन्द की प्रणमुं पाया रे—मांसूं०

(२२)

तूं ही तूं ही प्रभु मेरा मन मांही वसियो।
मन मांही वसियो, दिल मांही वसियो ॥ टेर ॥

१. ऊठत बैठत सोवत जागत,
नाम तिहारो उर बिच वसियो—तूं ही०

२. तुम सम दूजो देव न दीसे,
केवल ज्ञान कला गुण रसियो—तूं ही०

३. ध्यान दिलूं दी भक्ति भाव सूं,
तुम पद सेवत पातक नसियो—तूं ही०

४. पदम कमल सम गुण मकरंद रस,
मेरो मन मधु पीवण तरसियो—तूं ही०

५. सुविधि नाथ जिन सुध बुध वगसो,
"सुजान" तुम गुण प्रेम हुलसियो—तूं ही०

(२३)

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति, सब मिल शान्ति कहो।

१. विश्वसेन अचिरा के नन्दन, सुमिरन है सब दु ख निकन्दन।
अहोरात्रि वन्दन हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

२. भीतर शान्ति बाहिर शान्ति, तुझमें शान्ति मुझमे शान्ति।
सब में शान्ति बसाओ, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

३. विषय कषाय को दूर निवारो, काम क्रोध से करो किनारो।
शान्ति साधना यो हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

४. शान्ति नाम जो जपते भाई, मन विशुद्ध हिय धीरज लाई।
अतुल शान्ति उससे हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

५. प्रातः समय जो धर्म स्थान मे, शान्ति पाठ करते मृदु स्वर मे।
उनको दुःख नही हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

६. शान्ति प्रभु सम समदर्शी हो, करें विश्व हित जो शक्ति हो।
'गज मुनि' सदा विजय हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

(२४)

१. तूं धन तूं धन तूं धन तूं धन, शान्ति जिनेश्वर स्वामी।
मिरगी मार निवार कियो प्रभु, सर्व भणी सुखकामी ।।

२. अवतरिया अचला दे उदरे, माता साता पामी।
शान्ति शान्ति जगत बरताई, सर्व कहे सिरनामी—तूं०

३. तुम परसाद जगत सुख पायो, भूले मूढ़ हरामी।
कंचन डार काँच चित्त देवे, बांकी बुद्धि में खामी—तूं०

४. अलख निरंजन मुनिमनरंजन, भय - भंजन विसरामी।
शिव-दायक लायक गुण-गायक, वायक है शिव-गामी—तूं०

५. "रतनचन्द" प्रभु कछुअ न मांगे, सुन तूं अन्तरजामी।
तुम रहवन की ठौर बता दो, तो हूं सहु भर पामी—तूं०

(२५)

१. प्रातः ऊठ श्री शान्ति जिनन्द को, सुमिरण कीजे घड़ी घड़ी।
संकट कोटि कटे भव-सचित, जो ध्यावे मन भाव धरी ।।टेर।।

२. जनमत पाण जगत दुःख टलियो, गलियो रोग असाध्य मरी।
घट घट अन्तर आनन्द प्रगट्यो, हुलस्यो हिवड़ो हरष भरी—प्रातः०

३. आपद व्यंतर पिशुन भय भाजे, जैसे देखत मिरग हरी।
एकण चित्त शुद्ध मन ध्यातां, प्रकटै परिचय परम सिरी—प्रातः०

४. गये विलाय भरम के बादल, परमारथ-पद-पवन करी।
अवर देव एरंड कुण रोपै, जो निज मंदिर केल फली—प्रातः०

५. प्रभु तुम नाम जग्यो घट अन्तर, तो शुं करिए कर्म अरी?
'रतनचन्द' शीतलता व्यापी, पातक जाय कषाय टरी—प्रातः०

(२६)

साता कीजोजी, श्री शान्तिनाथ प्रभु ।
शिव-सुख दीजोजी, साता कीजोजी ।।टेर।।

१. शान्तिनाथ है नाम आपको, सब ने साताकारीजी ।
तीन भुवन मे चावा प्रभुजी, मृगी निवारीजी—साता०

२. आप सरीखा देव जगत मे, और नजर नही आवेजी ।
त्यागी ने वीतरागी मोटा, मुझ मन भावेजी—साता०

३. शान्तिनाथ मन मांही जपतां, चाहे सो फल पावेजी ।
ताव-तेजरो, दुःख-दालिदर, सब मिट जावेजी—साता०

४. विश्वसेन राजाजी के नन्दन, अचलादेवी जायाजी ।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, घणा सुहायाजी—साता०

(२७)

नेमजी की जान बणी भारी, देखण को आये नर नारी ।।टेर।।

१. हीसता घोडा रथ हाथी, मनुष्य की गिणती नही आती ।
ऊंट पे ध्वजा जो फर्राती, धमक से धरती थर्राती ।।
समुद्र विजयजी का लाडला, नेम कुंवरजी नाम ।
राजुल दे को आये परणवा, उग्रसेन घर धाम ।।
प्रसन्न भई नगरी सब सारी—नेमजी०

२. कसुंबल बागा अति भारी, कानन कुंडल की छबि न्यारी ।
किलंगी तुर्रा सुखकारी, माल मोतियन की गल डारी ।।
काने कुण्डल झिगमिगे, शीश मुकुट सुखकार ।
कोटि भानु की बनी ओपमा, शोभा अधिक अपार ।।
बाज रया बाजा टक सारी—नेमजी०

३. छूट रही हुक्का सरणाई, व्याह में आये बड़े भाई।
झरोखे राजुल दे आई, जान को देखर सुख पाई ॥
उग्रसेनजी देख के, मन में कियो विचार।
वहुत जीव को करी एकठा, वाड़ो भर्यो तिवार ॥
करी जव भोजन की त्यारी—नेमजी०

४. नेमजी तोरण पर आये, पशु सव मिलकर कुर्राये।
नेमजी वचन यूं उच्चारे, पशु ये काहे को लाये ॥
इणको भोजन होवसी, जान वास्ते त्यार।
एह वचन सुण नेमकी, थरथर कंपी काय ॥
भाव से चढ गये गिरनारी—नेमजी०

५. पीछे से राजुलदे आई, हाथ तव पकड्यो छिन मांई।
कहा तूं जावे मोरी जाई, और वर हेरुं सुखदायी ॥
मेरे तो वर एक ही, हो गये नेम कुमार।
और भुवन मे वर नही चाहे, करो क्रोड़ उपचार ॥
झूरती छोड़ी मां प्यारी—नेमजी०

६. सहेल्यां सब ही समझावे, दाय नहीं राजुल के आवे।
जगत सब झूठो दर्शावे, मेरे मन नेमकुंवर भावे ॥
तोड्या काकण डोरड़ा, तोड्यो नवसर हार।
काजल टीकी पान सुपारी, त्याग्यो सब सिणगार ॥
करी अव संयम की त्यारी—नेमजी०

७. तज्या सव सोले सिणगारा, आभूषण रत्न जड़ित सारा।
लगे मोय सव ही सुख खारा, छोड़ कर चाली परिवारा ॥
मात पिता परिवार को, तजतां न लागी बार।
रहनेमी समझाय के, जाय चढ़ी गिरनार ॥
दीक्षा फिर राजुल ने धारी—नेमजी०

८. दया दिल पशुअन की आई, त्याग जब कीनो छिन मांही।
नेम जिन गिरनारे जाई, पशु के बन्धन छुडवाई।।
नेम राजुल गिरनार पे, कीनो अविचल ध्यान।
'नवलमल' यह करी लावणी, ऊपजो केवल ज्ञान।।
जिनों की किरिया शुद्ध सारी–नेमजी०

(२८)

१. आपण घर बैठां लील करो, निज पुत्र कलत्र सु नेह धरो।
तुम देश देशान्तर कांई दौडो, नित पार्श्व जपो श्री जिन रूड़ो।।
२. मन वांछित सघला काज सरे, सिर ऊपर चाम्मर छत्र धरे।
कलमल आगल चाले घोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
३. भूत प्रेत पिशाच बली, सायण ने डायण जाय टली।
छल छिद्र न कोई लागे जूड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
४. एकान्तर ताव सीयो दाह, औषधि बिन जाय क्षण माह।
नवि दूखे माथु पग गोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
५. कंठमाल गल गुंवड सघला, तस उदर रोग टले सबला।
पीड़ा न करे फिनगल फोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूडो।।
६. जागतो तीर्थङ्कर पार्श्व बहु, इम जाणे सघलो जगत सहु।
तत्क्षण अशुभ कर्म तोडो, नित पास जपो श्री जिन रूडो।।
७. पास वाराणसी पुरी नगरी, तिहा उदयो जिनवर उदय करी।
'समयसुन्दर' कहे कर जोडी, नित पास जपो श्री जिन रूडो।।

(२९)

[दोहा]

१. कल्पवेल चिन्तामणि, काम–धेनु गुण–खान।
अलख अगोचर अगम गति, चिदानन्द भगवान।।

२. परम ज्योति परमात्मा, निराकार अविकार ।
निर्भय रूप ज्योति स्वरूप, पूरण ब्रह्म अपार ।।

३. अविनाशी साहिब धणी, चिन्तामणि श्रीपास ।
अर्ज करूँ कर जोड़ के, पूरो वंछित आस ।।

४. मन-चिन्तित आशा फले, सकल सिद्ध हों काम ।
चिन्तामणि को जाप जप, चिन्ता हरे यह नाम ।।

५, तुम सम मेरो को नही, चिन्तामणि भगवान ।
चेतन की यह वीनती, दीजे अनुभव ज्ञान ।।

[चौपाई]

६. प्राणत देवलोक से आए, जन्म वाराणसी नगरी पाए ।
अश्वसेन कुल-मंडन स्वामी, तिहुं जग के प्रभु अंतरजामी ।।

७. वामादेवी माता के जाये, लंछन नागफणी मणि पाये ।
शुभ काया नव हाथ वखाणो, नील वर्ण तन निर्मल जाणो ।।

८. मानव यक्ष सेवें प्रभु-पाय, पद्मावती देवी सुख-दाय ।
इन्द्र-चन्द्र पारस-गुण गावें कल्पवृक्ष चिन्तामणि पावें ।।

९. नित सुमरो चिन्तामणि स्वामी, आशा पूरे अन्तरयामी ।
धन-धन पारस पुरिसादाणी, तुम सम जग मे कोई नहि नाणी ।।

१०. तुमरो नाम सदा सुखकारी, सुख उपजै दुःख जाय बिसारी ।
चेतन को मन तुमरे पास, मन-वंछित पूरो प्रभु आस ।।

[दोहा]

११. ॐ भगवन्त चिन्तामणि, पार्श्व प्रभु जिनराय ।
नमो-नमो तुम नाम से, रोग-शोक मिट जाय ।।

१२. वात पित्त दूरे टलें, कफ नही आवे पास ।
चिन्तामणि के नाम से, मिटें श्वास और खांस ।।

१३. प्रथम दूसरो तीसरो, ताव चौथियो जाय।
शूल बहत्तर दूर हो दादर खाज न थाय ॥

१४. विस्फोटक गडगुंबडा, कोढ अठारह दूर।
नेत्र-रोग सब परिहरें, कंठ-माल चकचूर ॥

१५. चिन्तामणि के जाप से, रोग शोक मिट जाय।
चेतन पारस नाम को, सुमरो मन चित लाय ॥

[चौपाई]

१६. मन शुद्ध सुमरो भगवान, भयभंजन चिन्तामणि-ध्यान।
भूत-प्रेत-भय जावें दूर, जाप जपे सुख-सपत्ति पूर ॥

१७. डाकण साकण व्यंतर देव, भय नही लागे पारस-सेव।
जलचर थलचर उरपर जीव, इनको भय नहिं सुमरो पीव ॥

१८. बाघ सिह को भय नही होय, सर्प गोह आवे नहिं कोय।
बाट घाट मे रक्षा करे, चिन्तामणि चिन्ता सब हरे ॥

१९. टोणा टामण जादू करे, तुमरो नाम लिया सब डरे।
ठग फांसीगर तस्कर होय, द्वेषी दुश्मन नावे कोय ॥

२०. भय सब भागे तुमरे नाम, मन-वाछित पूरो सब काम।
भय-निवारण पूरे आस, चेतन जप चिन्तामणि पास ॥

[दोहा]

२१ चिन्तामणि के नाम से, सकल सिद्ध हो काम।
राज-ऋद्धि रमणी मिले, सुख सपत्ति बहु दाम ॥

२२ हय गय रथ पायक मिले, लक्ष्मी को नहिं पार।
पुत्र कलत्र मगल सदा, पावें शिव दरबार ॥

२३. चेतन चिन्ता-हरण को, जाप जपो तिहू काल।
कर आबिल षट् मास को, उपजे मगल माल ॥

३. मात भक्ति धर भुजंग कृपा कर।
देव परमेष्ठी ने किया है धरणिन्दाजी–वामाजी०

४. जगत ज्ञान भ्रम ब्याल समझ तज।
कर्म काट सिद्ध थया है जिनंदाजी–वामाजी०

५. गुण अनन्त नाथ पारस के।
गावत पार न पावे विनयचन्दाजी ।।
बरते परम आनन्दा विनयचन्दाजी–वामाजी०

(३४)

१ ॐ जय महावीर प्रभो ! स्वामी जय महावीर प्रभो !
जगनायक सुखदायक, अति गम्भीर प्रभो !

२. कुण्डलपुर में जन्मे, त्रिशला के जाए ! माता त्रिशलाके–
पिता सिद्धार्थ राजा, सुर नर हर्षाए, ॐ जय०

३. दीनानाथ दयानिधि, है मंगलकारी, स्वामी है मंगल–
जगहित संयम धारा, प्रभु पर उपकारी, ॐ जय०

४. पापाचार मिटाया, सत्पथ दिखलाया, स्वामी सत्पथ–
दयाधर्म का झण्डा, जग में लहराया, ॐ जय०

५ अर्जुनमाली गौतम, श्री चन्दन बाला, स्वामी श्री चन्दन–
पार जगत से बेड़ा, इनका कर डाला, ॐ जय०

६. पावन नाम तुम्हारा, जगतारणहारा, स्वामी जगतारण–
निशदिन जो नर ध्यावे, कष्ट मिटे सारा, ॐ जय०

७. करुणा सागर ! तेरी, महिमा है न्यारी, स्वामी महिमा–
'ज्ञानमुनि' गुण गावे, चरणन बलिहारी, ॐ जय०

(३५)

१. जय अचलासन, शान्ति सिंहासन, द्वेष-विनासन, शासन-स्यन्दन।
सन्मति-कारण, कुमति निवारण, भवभय-हारण, शीतल चन्दन !

२. जय करुणा-वरुणालय जय जय, जीव सभी करते अभिनन्दन।
जय सुख-कन्दन, दुरित-निकन्दन, जय जग-वन्दन, त्रिशला-नन्दन ॥

(३६)

जय बोलो महावीर स्वामी की, घट घट के अन्तरयामी की।
जय बोलो महावीर स्वामी की ॥टेर॥

१. जिस जगती का उद्धार किया, जो आया शरण वह पार किया।
जिस पीड़ सुनी हर प्राणी की–जय०

२. जो पाप मिटाने आया था, जिन भारत आन जगाया था।
उस त्रिशला-नन्दन ज्ञानी की–जय०

३. जिसने राज पाट को छोड दिया, बारह वर्ष तप घोर किया।
उस शान्त वीर रसगामी की–जय०

४. जिन स्याद्वाद सिद्धान्त दिया, जिसने सब झगडा मेट दिया।
है देन सभी उस नामी की–जय०

५. जिस जीव अजीव को तोल दिया, फिर तत्व ज्ञान अनमोल दिया।
उस महामोक्ष – पदगामी की–जय०

६. हो लाख बार परणाम तुम्हें, हे वीर प्रभु ! भगवान् तुम्हे।
मुनि दर्शन मुक्ति-गामी की–जय०

(३७)

जिनन्द मांय दीठा ए सुपना सार ॥ टेर ॥

१. पहले गयवर देखियोजी सूँडा दण्ड प्रचण्ड।
दूजे वृषभ देखियोजी घोरी घोलो सण्ड–जिनन्द०

२. तीजे सिंह सुलक्षणोजी करतो मुख बगास।
चौथे लक्ष्मी देवता जी, कर रह्या लील विलास–जि०

२४. पारस–नाम प्रभाव से, बाढ़े बल बहु ज्ञान।
मनवांछित सुख ऊपजे, नित सुमरो भगवान॥

२५. संवत् अठारा ऊपरे, साढ़–त्रीस परिमाण।
पौष शुक्ल दिन पंचमी, वार शनिश्चर जाण॥

२६. पढे गुणे जो भाव से, सुणे सदा चित लाय।
चेतन संपत्ति बहु मिले, सुमरो मन वच काय॥

(३०)

जै श्री पार्श्व प्रभो, स्वामी जै श्री पार्श्व प्रभो।
आशा पूरण करिये, हरिये कष्ट विभो॥
ओऽम् जय श्री पार्श्व प्रभो॥टेर॥

१. पारस पुरुषा दानी, शरण पड़ा तेरी।
धरणेन्दर पद्मावती, सहाय करो मेरी–ओऽम्०

२. प्रतिदिन तुम्हें मनाऊं, वांछित फल पाऊं।
पाकर पारस स्वामी, मैं बलि–बलि जाऊं–ओऽम्०

३. मम गृह कमला आवे, सुख में दिन जावे।
दास तुम्हारा निशदिन, जय कीरति पावे–ओऽम्०

४. सब विघ अब तो मुझ पर, दया करो स्वामी।
पाहि त्राहि माम्, दीनं हे अन्तरयामी–ओऽम्०

५. कामधेनु सुर तरु से, मुझको फलदाता।
चिन्तामणि सम तुमसे, सब कुछ मैं पाता–ओऽम्०

६. परम दिव्य शिव सपत्ति, 'केवल' को दीजै।
पुत्र समझ कर अपना, जल्दी सुध लीजे–ओऽम्०

(३१)

१. तुम से लागी लगन ले लो अपनी शरण,
पारस प्यारा, मेटो मेटोजी संकट हमारा !

२. निश दिन तुमको जपूं पर से नेहा तजूं,
जीवन सारा, तेरे चरणों मे बीते हमारा–मेटो०

३. अश्वसेनजी के राजदुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे !
सब से नेहा तोड़ा, जग से मुंह मोड़ा, संयम धारा–मेटो०

४. इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मगल गाये।
आशा पूरो सदा, दुःख नही पावे कदा सेवक थारा–मेटो०

५. जग के दुःख की परवाह नही है, स्वर्ग सुख की चाह नही है।
मेटो जन्म मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा–मेटो०

६. लाखो बार तुम्हे शीष नमाऊं, गजके नाथ तुम्हें कैसे पाऊं।
'पंकज' व्याकुल भया, दरशन बिन यह जिया लागे खारा–मेटो०

(३२)

१. पारसनाथ सहायी जाके, कमी रहे नही काई।
वन मे मंगल रण मे रक्षा, अग्नि होत शितलाई—पा०

२. जहां-जहां जावे तहां-तहा आदर, आनन्द रग बधाई।
कहा करे द्वेषी जन कोऊ, बाल न बाका थाई—पा०

३. भजन करे सो नव-निधि पावे, विष अमृत हो जाई।
'रूपचन्द्र' प्रभु के गुण गावे, जन्म-जन्म सुखदाई—पा०

(३३)

वामाजी के नंदा मानो, सोहे पूनम चन्दाजी ।। टेर ।।

१. तीन ज्ञान ले गर्भ मे आये प्रभु।
मात पिता मन भया है आनन्दाजी–वामाजी०

२. पोष कृष्ण दसमी जन्म भयो जब।
नृत्य गीत करे उरवशी इन्दाजी–वामाजी०

३. मात भक्ति धर भुजंग कृपा कर।
देव परमेष्ठी ने किया है धरणिन्दाजी—वामाजी०

४. जगत ज्ञान भ्रम व्याल समझ तज।
कर्म काट सिद्ध थया है जिनंदाजी—वामाजी०

५. गुण अनन्त नाथ पारस के।
गावत पार न पावे विनयचन्दाजी ।।
वरते परम आनन्दा विनयचन्दाजी—वामाजी०

(३४)

१. ॐ जय महावीर प्रभो ! स्वामी जय महावीर प्रभो !
जगनायक सुखदायक, अति गम्भीर प्रभो !

२ कुण्डलपुर मे जन्मे, त्रिशला के जाए ! माता त्रिशलाके—
पिता सिद्धार्थ राजा, सुर नर हर्षाए, ॐ जय०

३. दीनानाथ दयानिधि, है मंगलकारी, स्वामी है मगल—
जगहित संयम धारा, प्रभु पर उपकारी, ॐ जय०

४. पापाचार मिटाया, सत्पथ दिखलाया, स्वामी सत्पथ—
दयाधर्म का झण्डा, जग मे लहराया, ॐ जय०

५. अर्जुनमाली गौतम, श्री चन्दन बाला, स्वामी श्री चन्दन—
पार जगत से वेड़ा, इनका कर डाला, ॐ जय०

६. पावन नाम तुम्हारा, जगतारणहारा, स्वामी जगतारण—
निशदिन जो नर ध्यावे, कष्ट मिटे सारा, ॐ जय०

७. करुणा सागर ! तेरी, महिमा है न्यारी, स्वामी महिमा—
'ज्ञानमुनि' गुण गावे, चरणन बलिहारी, ॐ जय०

(३५)

१. जय अचलासन, शान्ति सिंहासन, द्वेष-विनासन, शासन-स्यन्दन।
सन्मति-कारण, कुमति निवारण, भवभय-हारण, शीतल चन्दन !

२. जय करुणा-वरुणालय जय जय, जीव सभी करते अभिनन्दन।
जय सुख-कन्दन, दुरित-निकन्दन, जय जग-वन्दन, त्रिशला-नन्दन॥

(३६)

जय बोलो महावीर स्वामी की, घट घट के अन्तरयामी की।
जय बोलो महावीर स्वामी की॥टेर॥

१. जिस जगती का उद्धार किया, जो आया शरण वह पार किया।
जिस पीड़ सुनी हर प्राणी की–जय०

२. जो पाप मिटाने आया था, जिन भारत आन जगाया था।
उस त्रिशला-नन्दन ज्ञानी की–जय०

३. जिसने राज पाट को छोड दिया, बारह वर्ष तप घोर किया।
उस शान्त वीर रसगामी की–जय०

४. जिन स्याद्वाद सिद्धान्त दिया, जिसने सब झगडा मेट दिया।
है देन सभी उस नामी की–जय०

५. जिस जीव अजीव को तोल दिया, फिर तत्व ज्ञान अनमोल दिया।
उस महामोक्ष – पदगामी की–जय०

६. हो लाख बार परणाम तुम्हें, हे वीर प्रभु ! भगवान् तुम्हे।
मुनि दर्शन मुक्ति-गामी की–जय०

(३७)

जिनन्द मांय दीठा ए सुपना सार॥ टेर॥

१. पहले गयवर देखियोजी सूँडा दण्ड प्रचण्ड।
दूजे वृषभ देखियोजी धोरी धोलो सण्ड–जिनन्द०

२ तीजे सिंह सुलक्षणोजी करतो मुख बगास।
चौथे लक्ष्मी देवता जी, कर रह्या लील विलास–जि०

३. पंच वरण फूलां तणीजी, माला देखी सुवास ।
छट्टे चन्द्र उजासियोजी अमीय झरे आकाश—जि०

४. दिनकर ऊगो तेजसूँजी किरणां झांक झमाल ।
फरकती देखी धजाजी, ऊँची अति असराल—जि०

५. कुम्भ कलश रतना जड्योजी उदकभर्यो सुविशाल ।
कमल फूलां को ढाकणोजी, नवमें स्वप्न रसाल—जि०

६. पद्म सरोवर जल भर्योजी कमला करी सुसोभाय ।
देव देवी रंग मे रमेजी, देख्यां आवे दाय—जि०

७. क्षीर समुद्र चारों दिशाजी, जेनो मीठो नीर ।
दूध जैसो पानी भर्यो जी कठिन पावणो तीर—जि०

८. मोत्यां केरा झूँवकाजी देख्या देव विमान ।
देव देवी, कौतुक करेजी आवतां असमान—जि०

९. रत्नां की राशि निरमलीजी देख्यो स्वप्न उदार ।
स्वप्नो देख्यो तेरमोजी हिवड़े हर्ष अपार—जि०

१०. ज्वाला देखी दीपतीजी अगन शिखा बहु तेज ।
इतने जाग्या पदमणीजी धरतां स्वप्ना से हेज—जि०

११. गजगति चाल्या मलकताजी आया राजन् पास ।
भद्रासन आसन दियो जी राय पूछे हुल्लास—जि०

१२. कहो किण कारण आवियाजी कहो थांरा मननी बात ।
चवदे स्वप्ना देखियाजी अर्थ कहो साक्षात्—जि०

१३. स्वप्ना सुनी राय हर्षियाजी कीनो स्वप्न विचार ।
तीर्थंकर चक्रवरत हुसीजी तीन लोक आधार—जि०

१४. प्रभाते पडित तेड़ियाजी कीनो स्वप्न विचार ।
तीर्थङ्कर चक्रवरत हुसीजी तीन लोक करतार—जि०

१५. पंडित ने बहु धन दियोजी वस्तरने फूलमाल।
गर्भवास पूरा थया जद् जनम्या पुन्यवंत बाल–जि०

१६. चोसठ इन्द्र आवियाजी छप्पन दिशा कुवार।
अशुचि कर्म निवारने जी गावे मगलाचार–जि०

१७. प्रतिबिम्ब घर मे धर्यो जी माताजी ने विश्वास।
शक्र इन्द्र लीधा हाथ में जी पंच रूप प्रकाश–जि०

१८. मेरु शिखर न्हवावियाजी तेहनो बहु विस्तार।
इन्द्रादिक सुर नाचियाजी नाची अपसरा नार–जि०

१९. अठाई महोत्सव सुर करेजी दीप नन्दीश्वर जाय।
गुण गावे प्रभुजी तणाजी हियड़े हरष न माय–जि०

२०. परभाते सुपना जो भणेजी भणता आनन्द थाय।
रोग शोक दूरा टले जी अशुभ कर्म सब जाय–जि०

(३८)

जो आनन्द मंगल चाहो रे मनाओ महावीर।

१. प्रभु त्रिशला जी के जाया है, कन्चन वरणी काया।
ज्यां के चरणां शीश नमावो रे–मनाओ०

२. प्रभु अनन्त ज्ञान गुणधारी, ज्यांरी सूरत मोहन गारी।
ज्यांका दर्शन कर सुख पाओरे–मनाओ०

३. प्रभु जी की मीठी वाणी, है अनन्त सुखो की खानी।
थे धार धार तिर जाओ रे–मनाओ०

४. ज्याके शिष्य वड़ा है नामी, सदा सेवो गौतम स्वामी।
जो रिद्ध सिद्ध थें चावो रे–मनाओ०

५. थांरा सर्व विघ्न टल जावे, मन वाछित सुख प्रगटावे।
फिर आवागमन मिटाओ रे–मनाओ०

६. साल उगणीस सौ गुण्यासी भाई, देवास शहर के मांही ।
कहे 'चौथमल' गुण गावो रे–मनाम्रो०

(३६)

१. जो भगवती त्रिशला तनय, सिद्धार्थ कुल के भान हैं,
लिया जन्म क्षत्रियकुण्ड में, प्रियनाम श्री वर्द्धमान है।
२. जो स्वर्ण-वर्ण प्रलम्बभुज, सरसिज नयन अभिराम हैं,
करुणा सदन मर्दन मदन, आनन्दमय गुणधाम है।
३. जो अनन्त ज्ञानी है प्रभो ! और अनन्त शक्ति वान् है,
किस मुख से गुण वर्णन करूं, मेरी तो एक जबान है।
४. योगीन्द्र मुनि चिन्तन करत, जिनका कि आठों याम हैं,
उन वर्द्धमान जिनेश को, मेरे अनेक प्रणाम हैं।

(४०)

१. तीरथनाथ सिद्धारथ सुत को, नित नित सुमिरण कीजे ।।टेर।।
दिन दिन बधे सवाई प्रभुता, सकल मनोरथ सीझे–तीरथ०
२. जिण घर कल्पवृक्ष चित्रा बेली, काम धेनू दोहीजे ।
काम – कुंभ चिन्तामणि सेवे, वांछित भोग लहीजे–तीरथ०
३. इण थी अधिक नाम प्रभुजी को, जो निश्चय चित्त लीजे ।
तिण घर कमी रहै नहीं कोई, रिद्धि सिद्धि वृद्धि पामीजे–तीरथ०
४. पुद्गल वस्तु सकल इण भव की, क्षण शोभा दे छीजे ।
प्रभु के नाम मिले सुख सम्पति, भव-भव अक्षय कहीजे–तीरथ०
५. ज्यूं पनिहारिन का चित कुंभ में, त्यूं प्रभु में चित्त दीजे ।
'विनयचन्द' पहुंचे शिवपुर में, जो अनुभव रस पीजे–तीरथ०

(४१)

१. महावीर शूरवीर महाबली महाधीर,
बांणी मीठी खाड खीर सिद्धारथ नन्द है।
नागणी सी नारी जाण घट मे वैराग्य आण,
जोग लियो जग भाण छोड्या मोह फन्द है॥
२. चौदह हजार सन्त तार दिया भगवन्त,
कर्मां को कियो अन्त पाम्या सुख कन्द है।
भणे मुनि 'चन्द्रभाण' सुनो हो विवेकवान,
महावीर धरिया ध्यान उपजे आनन्द है॥
३. पाप पन्थ परिहर मोक्ष पन्थ पग धर,
अभिमान दूर टार निन्दा को निवारी है।
संसारियो का छोड़ा संग आलस न आवे अंग,
ज्ञान सेती राखे रग मोटा उपकारी है॥
४. मन मांहि निरमल जैसे है गंगा को जल,
काटे ते करमदल नव तत्त्व धारी है।
संयम की करे खप बारे भेदे तपे तप,
ऐसे अणगार वाको 'वन्दना' हमारी है॥
वर्द्धमान जपे जाप सारा ही आनन्द है॥

(४२)

१. श्री महावीर स्वामी की, सदा जय हो सदा जय हो।
पतित पावन जिनेश्वर की, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०
२. तुम्ही हो देव देवन के, तुम्ही हो पीर पैगम्बर।
तुम्ही ब्रह्मा तुम्ही विष्णु, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०
३. तुम्हारे ज्ञान खजाने की, महिमा बहुत भारी है।
लुटाने से बढे हर दम, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

४. तुम्हारी ध्यान मुद्रा से, अलौकिक शान्ति झरती है।
सिंह भी गोद पर सोते, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

५. तुम्हारा नाम लेने से, जागती वीरता भारी।
हटाते कर्म लश्कर को, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

६. तुम्हारा संघ सदा जय हो, 'मुनि मोतीलाल' सदा जय हो।
'जवाहरलाल' पूज्य गुरु राज, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

(४३)

१. श्री सिद्धारथ कुलदीपक चन्द, त्रिशला दे राणी नो नन्द।
कोमल कंचनवर्ण शरीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

२. कृपानाथ करी करुणा घणी, मुझ सामूं जूओ शासन-घणी।
त्रिभुवन नाथ आयो अब तीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

३. अनन्तबली तप दुक्कर किया, सभी कर्म कूं दावानल दिया।
सम दम खम ने धारी धीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

४. चुम्मालीसे चेला किया, एकज दिन में महाव्रत दिया।
गौतम-सरिखा हुआ वजीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

५. समोसरणमां सुण्यो अधिकार, अमृतवाणी रूप दीदार।
दीठे हरखे हैड़ूं हीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

६. एक पल धरे प्रभुजी नूं ध्यान, पग-पग प्रगटे पुण्यनिधान।
वचन मीठा जिम मिसरी खीर, मन वछित पूरण महावीर॥

७. चैन पामैं चिन्ता चकचूर, देखी दुश्मन नासे दूर।
दिन-दिन वाढ़े सम्पत्ति शीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

८. तुम नामे भव-सागर तरे, तुम नामे सब कारज सरे।
ऋद्धि-वृद्धि पामे वर चीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

९. चिन्तामणि जिम जिनवर जाप, क्रोड़ भवोनां काटे पाप ।
रोग शोक नाशे भव पीर, मन वछित पूरण महावीर ।।

१०. वैसाख सुदि दशमी दिन जाण, प्रभुजी पाम्या केवल नाण ।
सागर–जैसा होत गम्भीर, मन वंछित पूरण महावीर ।।

११. संवत अठारह तेतीसे ताम, मेड़ता नगर किया गुणग्राम ।
षट् कायानां प्रभुजी पीर, मन वछित पूरण महावीर ।।

१२. प्रभु पावापुरी मां मुक्ति गया, ऋषि 'रायचन्द' कहे करज्यो मया ।
पहूंचाड़ो मुझ भव-जल तीर, मन वंछित पूरण महावीर ।।

(४४)

हमारी वीर हरो भव पीर ।

१. मैं दुःख-तपित दयामृत सर सम, लख आयो तुम तीर ।
तुम परमेश मोख मग–दर्शक, मोह दावानल – नीर ।।

२. तुम बिन हेतु जगत–उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर ।
गणपति–ज्ञान समुद्र न लंघै, तुम गुणसिन्धु गम्भीर ।।

३. याद नही मैं विपति सही जो, धर–धर अमित शरीर ।
तुम गुण चिन्तत नशत तम भय, ज्यो घन चलत समीर ।।

४. कोटि बार की अरज यही है, मै दुःख सहूं अधीर ।
हरहूं वेदना–फन्द 'दौल' को, कतर कर्म – जंजीर ।।

(४५)

१. अंगुष्ठे अमृत वसे, लब्धितणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वंछित फल दातार ।।

(४६)

ॐ जय गौतम स्वामी प्रभु, जय गौतम स्वामी ।
ऋद्धि सिद्धि के दाता, प्रणमूं सिर नामी, ॐ जय गौतम स्वामी ।।टेर।।

१. वसुभूति है तात तुम्हारे, पृथ्वी के जाया ।।स्वामी।।
कंचन वर्ण अनूपम, सुन्दर तन पाया ।।ओऽम्।।

२. ठाम ठाम सूत्रो मे, नाम तेरा आवे ।।स्वामी।।
चार ज्ञान चवदह पूर्व धर, सुर नर गुण गावे ।

३. महावीर से गुरु तुम्हारे, जगतारण हारे ।।स्वामी।।
सब मुनियों में शिरोमणि, गणधर तुम प्यारे ।

४. भव्य हितारथ तुमने, किया निर्णय भारी ।।स्वामी।।
पूछे प्रश्न अनेको, निज आतम तारी ।

५. गौतम गौतम जाप जपे से, दुःख दारिद्र जावे ।।स्वामी।।
सुख सम्पति यश लक्ष्मी, अनायास पावे ।

६. भूत प्रेत डायनि भय नासे, गौतम ध्यान धरे ।।स्वामी।।
गजानन्द आनन्द करो, यों 'चौथमल' गावे ।

(४७)

१. वीर जिनेश्वर–केरो शीस, गौतम नाम जपो निश दीस ।
जो कीजे गौतमनो ध्यान, ते घर विलसे नवे निधान ।।

२. गौतम–नामे गजवर चढे, मनवंछित हेला सापड़े ।
गौतम नामे नावे रोग, गौतम नामे सर्व संयोग ।।

३. जे वैरी विरुआ वंकड़ा, तस नामे नावे नेड़ा ।
भूत प्रेत नवि मडे प्राण, ते गौतमना करूं बखाण ।।

४. गौतम नामे निर्मल काय, गौतम नामे बाढ़े आय ।
गौतम जिन शासन-सिणगार, गौतम नामे जय जयकार ।।

५. शाल दाल गोरस घृत गोल, मनवछित कापड़ तंबोल ।
घरे सुघरणी निर्मल चित्त, गौतम नामे पुत्र विनीत ।।

६. गौतम ऊग्यो अविचल भाण, गौतम नाम जपो जग–जाण।
म्होटा मन्दिर मेरु–समान, गौतम नामे सफल विहान ॥

७. घर मयंगल घोड़ानी जोड़, वारू पहुंचे वंछित कोड़।
महियल माने म्होटा राय, जो तूठे गौतमना पाय ॥

८. गौतम प्रणम्या पातक टले, उत्तम नरनी सगति मिले।
गौतम नामे निर्मल ज्ञान, गौतम नामे वाधे मान ॥

९. पुण्यवत अवधारो सहू, गुरु गौतम ना गुण छै बहू।
कहे 'लावण्यसमय' कर जोड़, गौतम तूठे सम्पत्ति कोड़ ॥

(४८)

१. श्री इन्द्रभूतिजी का लीजे नाम, तो मन वांछित सीझै काम।
मोटा लब्धि तणा भण्डार, वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

२. अग्निभूति गौतमजी का भाई, वीरजी ने दीठा समता आई।
ऋद्धि त्याग लियो सजम भार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

३. वायुभूति मोटा मुनिराय, ये तीनो ही सगा भाय।
पाच पांच सौ निकल्या लार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

४. विगतस्वामीजी चौथा जाण—भजन कियां मिले अमर विमाण।
देवलोके सुख रा भणकार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

५. स्वामी सुधर्मा वीरजी रे पाट—जन्म मरण सेवक ना काट।
मुझ ने आप तणो आधार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

६. मडिपुत्र ने मोरिपूत—मुक्ति जावण रो कर दियो सूत।
त्रिविधे त्याग्या पाप अठार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

७. अकम्पित ने अचलभ्रात—वीरजी रे वचने रह्या ज रात।
चवदह पूरब ना भण्डार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

८. मेतारज ने श्री प्रभास—मोक्षनगर में कर दियो वास ।
जपतां होवे जय जयकार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

९. ये इग्यारह उत्तम जात—चम्मालीस सौ शिष्यां साथ ।
ज्यां कर दीनो खेवो पार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

१०. इण नामें सहु आशा फले, दोषी दुश्मन दूरा टले ।
ऋद्धि वृद्धि पावे सुखकार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

११. इण नामे सब नाशे पाप, नित ना जपिये भविजन जाप ।
चित्त चोखा हृदय मे धार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

१२. संवत् अठारह (सो) तियालिस, आण-पूज्य जयमलजी री अमृतवाण ।
चौमासे स्तवन कियो पीपाड़—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

१३. आषाढ़ सुदि सातम रे दिन—गणधरजी ने गाया इकमन ।
'आशकरण' भणे अणगार—चन्दूं इग्यारह गणधार ॥

(४९)

श्री महावीर पहोंत्या निर्वाण, गौतम स्वामीए वातज जाणी ।

१. गुरांजी तुम मंने गोडे न राख्यो–ए आंकड़ी०
मुगति जावणरो नाम न दाख्यो–गुरांजी०

२. हु सगलां पहेला हुतो थारो चेलो,
इण अवसर आगो किम मेल्यो–गुरांजी०

३. प्रभु तुम चरणे म्हारो चित्त लाग्यो,
पर तुम मने मेल दियो आगो–गुरांजी०

४. मंने दर्शन आपको लागतो प्यारो,
आप पहोंत्या निर्वाण मुझे मेल दियो न्यारो–गुरांजी०

५. आपे तो मुझ से अंतर राख्यो,
पिण में म्हारा मनरो दर्द न दाख्यो–गुरांजी०

६. हुँ आड़ो मांडीने न झालत पल्लो,
पण तुम साहिब काम कियो नही भल्लो—गुरांजी०

७. हुँ आपने अंतराय न देतो,
मुगति मे जग्या व्हेची न लेतो—गुरांजी०

८. हुँ संकड़ाई न करतो काई,
आप साथे हुँ मोक्ष आई—गुरांजी०

६. अब हूँ पृच्छा करशूं किण आगे,
प्रभु म्हारो मन एक थांशुंज लागे—गुरांजी०

१०. म्हारो शंको कहो कूण टाले,
आप विना पाखंडीना मद कूण गाले—गुराजी०

११. हुँ तो चौदह पूरवने चौनाणी,
पिण मोहनीय कर्म लपेट्यो आणी—गुरांजी०

१२. इसो गौतम स्वामीये कियो विलपात,
ए मोहनीय कर्मनी अचरज वात—गुराजी०

१३. हवे मोहनीय कर्म दूर टाली,
गौतम स्वामीए सूरत सभाली ॥

१४. वीतराग राग - द्वेषसुं वीत्या,
म्हारा चित्तमा आई गई चिंता—वीतराग०

१५. तिणि वेला निर्मल ध्यानज ध्यायो,
केवल ज्ञान गौतम स्वामीए पायो—वीतराग०

१६. बारह वरस रह्या केवलज्ञानी,
बात ज्यांसूं काइ रही न छानी—वीतराग०

१७. गौतमे पण कियो मुगति मे वासो,
ससारनो सर्व देखे तमासो—वीतराग०

१८. जेणि राते मुगति गया वर्द्धमान,
इन्द्रभूति ने उपज्यु केवल ज्ञान–वीतराग०

१९. तिन दिन थी ए बाजी दिवाली,
म्होटो दिन ए मंगल माली–वीतराग०

२०. रात दिवालीनी शीयल तुम पालो,
वली, रात्रि भोजन करवो टालो–वीतराग०

२१. ऋषि 'रायचन्द्र' कहे सुणो हो सुज्ञानी,
दयारूपी दिवाली थें लीजो मानी–वीतराग०

२२. श्री शासन नायक मुगति दायक, दया मारग उजुवालियो।
श्री गौतम स्वामी मुगति गामी, कियो चित वल्लभ चौढ़ालियो ।।

२३. संवत् अठारे गुणचालीशे, नागौर चौमासो निर्मल मने।
पूज्य जैमलजी प्रसादे, संपूर्ण कियो दीवाली दिने ।।

(५०)

१. आदिनाथ आदि जिनवर वंदी, सफल मनोरथ कीजिए।
प्रभाते उठी मंगलिक कामे, सोलह सतियों ना नाम लीजिये ।।

२. बालकुमारी जगहितकारी, ब्राह्मी भरतनी वेनड़ीए।
घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोलह सतिमां जे वडीए ।।

३. बाहुबल भगिनी सतीए शिरोमणि, सुन्दरी नाम ऋषभ सुताए।
अंक स्वरूपी त्रिभुवन मांहे, जेह अनुपम गुण जुताए ।।

४. चन्दनबाला वालपने सूं, शीयलवन्ती शुद्ध श्राविकाए।
उड़दना बाकुला वीर प्रतिलाभ्या, केवल लही व्रत भाविकाए ।।

५. उग्रसेन धूया धारिणी नंदिनी, राजोमती नेम वल्लभाए।
जोवन वेशे काम नें जीत्या, सजम लइ देव दुल्लभाए ।।

६. पंच–भरतारी पाडव नारी, द्रुपद तनया बखाणीए।
एकसो आठे चीर पुराणा, शीयल महिमा तस जाणिए॥

७. दशरथ नृप नी नारी निरुपम, कौशल्या कुल चन्द्रिकाए।
शीयल सलुणी राम जनेता, पुन्य तणी प्रणालीकाए॥

८. कोसंबिक ठामे संतानिक नामे, राज्य करे रंग राजियोए।
तस घर घरणी मृगावती सती, सुर भुवने जश गावीयोए॥

९. सुलशा सांची शीयले न काची, राची नही विषया रसेए।
मुखडुं जोतां पाप पलाए, नाम लेतां मन हुल्लसेए॥

१०. राम रघुवंशी तेहनी कामिनी, जनकसुता सीता सतीए।
जग सहु जाणे धीजकरंता, अनल शीतल थयो शीयलथीए॥

११. सुर नर वंदित शीयल अखडित, शिवा शिव पद गामिणीए।
जपते नामे निर्मल थइए, वलिहारी तस नामनीए॥

१२. कांचे तांतणे चालणी बांधी, कूप थकी जल काढीयुए।
कलंक उतारवा सतीए सुभद्रा, चम्पा द्वार उघाडीयुंए॥

१३. हस्तिनापुरे पाडु राय नी, कुन्ती नामे कामिनीए।
पाडव माता दसे दशार्हनी व्हेन, पतिव्रता पद्मिनीए॥

१४. शीलवती नामे शीलव्रतधारिणी, त्रिविधे तेहने वदीयेए।
नाम जपंता पातक जाए, दरीसणे दुरित नीकंदीए॥

१५. निषधा नगरी नल नरीदनी, दमयन्ती तस गेहिनीए।
संकट पड़तां शीयलज राख्युं, त्रिभुवन कीरति जेहनीए॥

१६. अनंग अजीता जग जन पुजीता, पुष्पचुला ने प्रभावतीए।
विश्वविख्याता कामीत दाता, सोलमी सती पद्मावतीए॥

१७. वीरे भांखी शास्त्रे साखी, उदय रतन भाखे मुदाए।
व्हाणुं वातां जे नर भणशे, ते लेशे सुख सम्पदाए॥

(५१)

१. शीतल जिनवर करूं प्रणाम, सोलह सतीरा लेसूं नाम।
ब्राह्मी चन्दना राजमती, द्रौपदी कौशल्या मृगावती ॥

२. सुलसा सीता सुभद्रा जाण, शिवा कुन्ती शीलगुण खाण।
नल-घरणी दमयन्ती सती, चेलना प्रभावती पद्मावती ॥

३. शील तणे सुहावे सिरी, ऋषभ देवनी धिया सुन्दरी।
सोलह सतियां शील गुणभरी, भवियण प्रणमो भावे करी ॥

४. ये सुमरियां सब संकट टलें, मनचिन्तित मनोरथ फलें।
इण नामे सब सीझे काज, लहिये मुक्ति पुरी नो राज ॥

५. भूत प्रेत इण नामे टले, ऋद्धि सिद्धि घर आई मिले।
इण नामे सहू होय जगीश, ये सतियां सुमरो निश दीश ॥

(५२)

ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु देव, जयगुरु जयगुरु जयगुरु देव।

१. देव हमारे श्री अरिहंत, गुरु हमारे गुणी जन सन्त।
सूत्र हमारा सत्य-निधान, धर्म हमारा दया–प्रधान ॥

२. श्रमण भगवन्त श्री महावीर, त्रिशला नन्दन हरियो पीर।
अधम उद्धारण श्री अरिहन्त, पतितपावन भज भगवंत ॥

३. गुरु गौतम सुमरो हर वार, घर-घर वरते मंगलाचार।
बोलो सब मिल जय जयकार, होवे अपना भी उद्धार ॥

(५३)

ओम् जय जय गुरु देवा, स्वामी जय जय गुरु देवा।
जो ध्यावे तिर जावे, पावे शिव सुख मेवा ॥टेर॥

१. पंच महाव्रत धारे जग वैभव छोडा स्वामी।
संयम शुद्ध आराधे प्रभु से नेह जोड़ा—ओऽम्०

२. सकल जीव प्रति बोधे राग द्वेष टारे स्वामी।
अखड बाल ब्रह्मचारी सुर सेवा सारे—ओऽम्०

३. पाखंड दूर हटावे सुपथ दिखलावे स्वामी।
धन्य धन्य जिन मुनिवर तारे तिर जावे—ओऽम्०

४. आठों याम एक काम जिनो का प्रभु मे ध्यान लगे स्वामी।
गुरुवर के गुण गाता, सोते भाग्य जगे—ओऽम्०

५. 'जीत' शरण मे आयो महर नजर कीजो स्वामी।
सेवक ने अब स्वामी तुम सम कर लीजो—ओऽम्०

(५४)

गुरु बिन कौन बतावे बाट ? बडा विकट यमघाट ।।ध्रु०।।

१. भ्राति की पहाडी नदियां बिचमो, अहंकारकी लाट।
काम क्रोध दो पर्वत ठाढे, लोभ चोर सघात ।।

२. मद मत्सरका मेह बरसत, माया पवन वहे दाट।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, क्यो तरना यह घाट ।।

(५५)

जय बोलो रत्न मुनीश्वर की, धन्य कुशल वंश के पटधरकी।

१. पूज्य भूधर महिमाशाली थे, कुशलेश शिष्य हितकारी थे।
थे मूल भूमि रत्नाकर की—जय०

२. श्री गुमानचन्द्र गुरुवर पाया, लघु वय मे संयम अपनाया।
श्रो गंग गुलावा सुत-वर की—जय०

३. वैराग्य से सयम धार लिया, जिन क्रोध मोह को मार लिया।
शुभलेश्या चमके शशिधर की–जय०

४. सेवा से ज्ञान मिलाया था, जन-जन का मन हर्षाया था।
आज्ञा पाले जो जिनवर की–जय०

५. कलि दोष न छूने पाया है, मुनि मण्डल भी सुखदाया है।
सम संयम शील गुणाकर की–जय०

६. ये संघ चतुर्विध सुखकारी, अनुशासन की खूबी न्यारी।
निन्दा विकथा नही पर घरकी–जय०

७. ये 'गजमुनि' चरणों का चेरा, यह सकल संघ शरणे तेरा।
दो विमल शक्ति मेधाधरकी–जय०

(५६)

१. नमूं अनन्त चौवीसी, ऋषभादिक महावीर।
आरज – क्षेत्रमां घाली धर्मनी सीर॥

२. महा अतुल बली नर, शूर वीर ने धीर।
तीरथ प्रवर्तावी, पहुचा भवजल-तीर॥

३. सीमंधर प्रमुख, जघन्य तीर्थङ्कर वीश।
है अढी द्वीप मां, जयवन्ता जगदीश॥

४. एक सौ ने सत्तर, उत्कृष्टा पद जगीश।
धन्य म्होटा प्रभुजी, तेह ने नमाऊं शीश॥

५. केवली दोय क्रोड़ी, उत्कृष्टा नव क्रोड़।
मुनि दोय सहस्र क्रोड़ी उत्कृष्टा नव सहस्रक्रोड़॥

६. विचरे छै विदेहे, म्होटा तपसी घोर।
भावे करि वन्दूं, टाले भवनी खोड़॥

७. चौवीसे जिननां, सगला ही गणधार ।
चौदहसौ ने बावन, ते प्रणमूं सुखकार ।।

८. जिन शासन नायक, धन्य श्री वीर जिनन्द ।
गौतमादिक गणधर, वर्तायो आनन्द ।।

९. श्री ऋषभदेव ना भरतादिक सौ पूत ।
वैराग्य मन आणी, सयम लियो अद्‌भुत ।।

१० केवल उपजाव्यूं, करि करणी करतूत ।
जिनमत दीपावी, सगला मोक्ष पहूंत ।।

११. श्री भरतेश्वर ना हुआ पटोधर आठ ।
आदित्य जशादिक, पहुंत्या शिव पुर वाट ।।

१२. श्री जिन-अन्तर ना, हुआ पाट असंख ।
मुनि मुक्ति पहुत्या, टालि कर्मनो वंक ।

१३. धन्य कपिल मुनिवर-नमी नमुं अणगार ।
जेणे तत्क्षण त्यागियो, सहस्र-रमणी परिवार ।।

१४. मुनि बल हरिकेशी, चित्त मुनीश्वर सार ।
शुद्ध सयम पाली, पाम्या भवनो पार ।।

१५. वलि इक्षुकार राजा, घर कमलावती नार ।
भग्गू ने जशा, तेहना दोय कुमार ।।

१६. छये छती ऋद्धि छांड़ी, लीधो संयम भार ।
इण अल्प कालमां पाम्या मोक्ष द्वार ।।

१७. वलि सयति राजा, हिरण आहिड़े जाय ।
मुनिवर गर्दभाली, आण्यो मारग ठाय ।।

१८. चारित्र लेईने, भेट्या गुरुना पाय ।
क्षत्री राज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित लाय ।।

१६. वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य रमणी ऋद्धि छोड़ ।
दशे मुक्ति पहुंत्या, कुल ने शोभा छोड़ ॥

२०. इण अवसर्पिणी काल मां आठ राम गया मोक्ष ।
बलभद्र मुनीश्वर, गया पंचमे देवलोक ॥

२१. दशार्ण भद्र राजा, वीर वांद्या धरि मान ।
पछि इन्द्र हटायो, दियो छकाय अभयदान ॥

२२. करकण्डू प्रमुख, चारे प्रत्येक बुद्ध ।
मुनि मुक्ति पहुंत्या, जीत्या कर्म महाजुद्ध ॥

२३. धन्य म्होटा मुनिवर, मृगापुत्र जगीश ।
मुनिवर अनाथी, जीत्या राग ने रीश ॥

२४. वलि समुद्रपाल मुनि, राजीमति रहनेम ।
केशी ने गौतम, पाम्या शिवपुर खेम ॥

२५. धन्य विजय घोष मुनि, जय घोष वलि जाण ।
श्री गर्गाचार्य, पहुंत्या छै निर्वाण ॥

२६. श्री उत्तराध्ययनमां, जिनवर कर्या बखाण ।
शुद्ध मन से ध्यावो, मन मे धीरज आण ॥

२७ वलि खंदक सन्यासी, राख्यो गौतम-स्नेह ।
महावीर समीपे, पंच महाव्रत लेह ॥

२८. तप कठिन करीने, झोसी आपणी देह ।
गया अच्युत देवलोके, चवि लेसे भव छेह ॥

२६. वलि ऋषभदत्त मुनि, सेठ सुदर्शन सार ।
शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गांगेय अणगार ॥

३०. शुद्ध सयम पाली, पाम्या केवल सार ।
ये चारे मुनिवर, पहुंच्या मोक्ष मंझार ॥

३१. भगवंतनी माता, धन धन सती देवानन्दा ।
वलि सती जयन्ती, छोड़ दिया घर फन्दा ।।

३२. सति मुक्ति पहुंत्या, वली ते वीरनी नन्द ।
महासती सुदर्शना, घणी सतियो ना वृन्द ।।

३३. वलि कार्तिक शेठे, पड़िमा वही शूर वीर ।
जम्यो मोरां ऊपर, तापस वलती खीर ।।

३४. पछी चारित्र लीधूं, मित्र एक सहस्त्र आठ धीर ।
मरी हुओ शक्रेन्द्र, चवि लेसे भवतीर ।।

३५. वलि राय उदायन, दियो भाणेज ने राज ।
पछी चारित्र लेईने, सार्या आतम काज ।।

३६. गंगदत्त मुनि आनन्द, तिरण तारण नी जहाज ।
मुनि कौशल रोहो, दियो घणा ने साज ।।

३७. धन्य सुनक्षत्र मुनिवर, सर्वानुभूति अणगार ।
आराधक हुई ने, गया देव लोक मझार ।।

३८. चवि मुक्ति जासे बली सिंह मुनीश्वर सार ।
बीजा पण मुनिवर, भगवती मां अधिकार ।।

३९. श्रेणिकनो बेटो, म्होटो मुनिवर मेघ ।
तजी आठ अतेउर, आण्यो मन सवेग ।।

४०. वीर पै व्रत लेईने, बांधी तपनी तेग ।
गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव वेग ।।

४१. धन्य थावच्चापुत्र, तजी बत्तीसो नार ।
तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ।।

४२. शुकदेव सन्यासी एक, सहस्त्र शिष्य लार ।
पांचसौ से शेलक, लीधो सयम भार ।।

४३. सब सहस्र अढ़ाई, घणा जीवों ने तार ।
पुण्डरिक गिरि ऊपर, कियो पादोपगमन संथार ।।

४४. आराधक हुई ने, कीधो खेवो पार ।
हुआ म्होटा मुनिवर, नाम लियां निस्तार ।।

४५. धन्य जिन पाल मुनिवर, दोय धन्ना हुआ साध ।
गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ।।

४६. श्री मल्लिनाथना छह मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय ।
सर्वे मुक्ति सिधाव्या, म्होटा पदवी पाय ।।

४७. वलि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि नामे प्रधान ।
पोते चारित्र लई ने पाम्या मोक्ष निधान ।।

४८. धन्य तेतली मुनिवर, दियो छकाय अभयदान ।
पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवल ज्ञान ।।

४६. धन्य पांचे पांडव, तजी द्रौपदी नार ।
थेवर नी पासे, लीधो संयम भार ।।

५० श्री नेमी वन्दन नो, एहवो अभिग्रह कीध ।
मास मास खमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ।

५१. धर्म घोष तणां शिष्य, धर्म रुचि अणगार ।
कीड़ियों नी करुणा, आणी दया अपार ।।

५२. कड़वा तूंबानों, कीधो सगलो आहार ।
सर्वार्थ सिद्ध पहुंच्या, चवि लेसे भव पार ।।

५३. वलि पुण्डरीक राजा, कुण्डरीक डिगियो जाण ।
पोते चारित्र लेईने, न घाली धर्म मां हाण ।।

५४. सर्वार्थ सिद्ध पहुंत्या, चवि लेसे निर्वाण ।
श्री ज्ञाता सूत्र मां, जिनवर कर्या बखाण ।।

५५. गौतमादिक कुंवर, सगा अठारे भ्रात ।
सब अन्धक विष्णु सुत, धारिणी ज्यारी मात ।।

५६. तजी आठ अंतेउर, काढ़ी दीक्षा नी बात ।
चारित्र लई ने, कीधो मुक्ति नो साथ ।।

५७. श्री अनिक सेनादिक, छहे सहोदर भाय ।
वसुदेवना नन्दन, देवकी ज्यांरी मांय ।।

५८. भद्दिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण ।
सुलसा घर वधिया, साभली नेमिनी वाण ।।

५६. तजी बत्तीस-बतीस अतेउर, निकलिया छिटकाय ।
नल कूबर समाना, भेट्या श्री नेमिना पाय ।।

६०. करी छठ छठ पारणा, मन मे वैराग्य लाय ।
एक मास सथारे, मुक्ति विराज्या जाय ।।

६१. वलि दारुक सारण, सुमुख दुमुख मुनिराय ।
वलि कुवर अनादृष्ट, गया मुक्ति गढ़ माय ।।

६२. वसुदेवना नन्दन, धन-धन गज सुकुमाल ।
रूपे अति सुन्दर, कलावन्त वय बाल ।।

६३. श्री नेमि समीपे, छोड़्यो मोह जजाल ।
भिक्षुनी पड़िमा, गया मसाण महाकाल ।।

६४. देखी सोमिल कोप्यो, मस्तक बांधी पाल ।
खेरनां खीरा, शिर ठविया असराल ।।

६५. मुनि नजर न खण्डी, मेटी मननी झाल ।
परीसह सही ने, मुक्ति गया तत्काल ।।

६६. धन्य जाली मयाली, उवयालादिक साध ।
साब ने प्रद्युम्न, अनिरुद्ध साधु अगाध ।।

६७ वलि सतनेमि दृढ नेमि, करणी कीधी निर्बाध ।
दशे मुक्ति पहुंत्या, जिनवर वचन आराध ।।

६८. घन अर्जुन माली, कियो कदाग्रह दूर ।
वीर पै व्रत लईने, सत्यवादी हुआ सूर ।।

६६. करी छठ-छठ पारणा, क्षमा करी भरपूर ।
छह मास मांही, कर्म किया चकचूर ।।

७०. कुंवर अइमुत्ते, दीठा गौतम स्वाम ।
सुणि वीर नी वाणी, कीधो उत्तम काम ।।

७१. चारित्र लेईने पहुंत्या, शिवपुर ठाम ।
धुर आदि मकई, अन्त अलक्ष मुनि नाम ।।

७२. वलि कृष्ण राय नी, अग्रमहिषी आठ ।
पुत्र-वहू दोय, संच्या पुण्यना ठाठ ।।

७३. जादव कुल सतियां, टाल्यो दुःख उचाट ।
पहुंती शिवपुर मां, ओ छे सूत्र नो पाठ ।।

७४. श्रेणिक नी राणी, काली आदिक दश जाण ।
दशे पुत्रवियोगे सांभली वीरनी वाण ।।

७५. चन्दन बाला पै, संयम लेई हुई जाण ।
तप करि देह झौंसी, पहुंती छे निर्वाण ।।

७६. नन्दादिक तेरह श्रेणिक नृपनी नार ।
सगली चन्दनबाला पै, लीधो संयम भार ।।

७७. एक मास संथारे, पहुंती मुक्ति मंझार ।
यो नेवुं जणा नो, अन्तगड मां अधिकार ।।

७८. श्रेणिक ना बेटा, जालीयादिक तेवीश ।
वीर पै व्रत लेईने, पाल्यो विस्वाबीस ।।

७९. तप कठिन करीने, पूरी मन जगीश।
देवलोके पहुंच्या, मोक्ष जासे तजी रीश ॥

८०. काकन्दी नो धन्नो, तजी बतीसो नार।
महावीर समीपे, लीधो संयम भार ॥

८१. करी छठ-छठ पारणा, आयबिल उच्छित्त आहार।
श्री वीर बखाण्यो, धन्य धन्नो अणगार ॥

८२. एक मास संथारे, सर्वार्थ सिद्ध पहुंत।
महा विदेह क्षेत्र मा, करसे भवनो अन्त ॥

८३. धन्नानी रीते, हुआ नवे सन्त।
श्री अनुत्तरोववाई मां, भाखि गया भगवन्त ॥

८४. सुबाहु प्रमुख पांच पांच सौ नार।
तजी वीर पै लीधा, पाच महाव्रत धार ॥

८५. चारित्र लेईने, पाल्या निर अतिचार।
देवलोक पहुंत्या, सुख-विपाके अधिकार ॥

८६. श्रेणिक ना पोता, पौमादिक हुआ दस।
वीर पै व्रत लेईने, काढ्यो देहनो कस ॥

८७. संयम आराधी, देवलोक मा जई वस।
महाविदेह क्षेत्र मां, मोक्ष जासे लेई जस ॥

८८. बलभद्रना नन्दन, निषधादिक हुआ बार।
तजी पचास अन्तेउरी, त्याग दियो संसार ॥

८९. सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीध।
सर्वार्थ सिद्ध पहुंत्या, होसे विदेहे सिद्ध ॥

९०. धन्ना ने शालिभद्र, मुनीश्वरों नी जोड़।
नारी ना बन्धन, तत्क्षण नांख्या तोड़ ॥

९१. घर कुटुम्ब कबीलो, धन कंचन नी कोड़ ।
मास मास खमण तप, टालसे भव नी खोड़ ।।

९२. श्री सुधर्मा स्वामी ना शिष्य धन धन जम्बू स्वाम ।
तजी आठ अन्तेउरी, मात-पिता धन धाम ।।

९३. प्रभवादिक तारी, पहुंत्या शिवपुर ठाम ।
सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्यूं नाम ।।

९४. धन्य ढंढण मुनिवर, कृष्णराय ना नन्द ।
शुद्ध अभिग्रह पाली, टाल दियो भवफन्द ।।

९५. बलि खन्दक ऋषिनी, देह उतारी खाल ।
परीषह सहीने, भव फेरा दिया टाल ।।

९६. वलि खन्दक ऋषिना, हुआ पांच सौ शीश ।
घाणी मां पील्या, मुक्ति गया तज रीश ।।

९७. संभूति विजयतणां शिष्य, भद्रबाहु मुनि राय ।
चौदह पूर्वधारी, चन्द्रगुप्त आण्यो ठाय ।।

९८. वलि आर्द्रकुमार मुनि, स्थूलभद्र नन्दिषेण ।
अरणक अइमुत्तो मुनीश्वरो नी श्रेण ।।

९९. चौबीसे जिनना मुनिवर, संख्या अठावीस लाख ।
ऊपर सहस्र अड़तालीस, सूत्र परम्परा भाख ।।

१००. कोई उत्तम वांचो, मोंढ़े जयणा राख ।
उघाड़े मुख बोल्यां, पाप लगे इम भाख ।।

१०१. धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मल ध्यान ।
गज-होदे पायो, निर्मल केवलज्ञान ।।

१०२. धन्य आदीश्वर नी पुत्री, ब्राह्मी सुन्दरी दोय ।
चारित्र लेईने, मुक्ति गई सिद्ध होय ।।

१०३. चौबीसे जिननी, वडी शिष्यणी चौबीस ।
सती मुक्ते पहुंत्या, पूरी मन जगीश ।।

१०४. चौबीसे जिननी, सर्व साधवी सार ।
अड़तालीस लाख ने, आठ से सत्तर हजार ।।

१०५. चेड़ीनी पुत्री, राखी धर्म सूं प्रीत ।
राजीमति विजया, मृगावती सुविनीत ।।

१०६. पद्मावती, मयणरेहा, द्रौपदी दमयन्ती सीत ।
इत्यादिक सतिया, गई जमारो जीत ।।

१०७. चौबीसे जिननां, साधु साधवी सार ।
गया मोक्ष देवलोके, हृदये राखो धार ।।

१०८. इण अढ़ाई द्वीप मां, करड़ा तपसी बाल ।
शुद्ध पंच महाव्रतधारी, नमो नमो तिहुकाल ।।

१०९. इण यतियो सतियो नां, लीजे नितप्रति नाम ।
शुद्ध मन थी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ।।

११०. इण यतियो सतियो सूं राखो उज्वल भाव ।
इम कहे 'ऋषि जयमल', एह तिरण नो दाव ।।

१११. संवत् अठारा ने वर्ष साते शिरदार ।
गढ़ जालोर मांही, एह कह्यो अधिकार ।।

(५७)

प्रतिदिन जप लेना, त्यागी गुरुओ को भविजन भाव से ।

१. महावीर के शासन भूषण, धर्मदास मुनिराय ।
परम प्रतापी धर्म प्रचारक, थे आचार्य महान्—प्रति०

२. शिष्य निन्नाणु हुवे आपके, ज्ञान क्रिया मे शूर ।
धन्नाजी ने मरुभूमि से, किया कुमत को दूर-हो—प्रति०

३. पट्टधर भूधर पूज्य प्रतापी, शिष्य जिन्हों के चार।
रघुपत, जयमल्ल, जेतसिंह, अरु कुशलचन्द्र लो धार—प्रति०

४. रघुपत, जयमल्ल, कुशलसिंहजी के, हुआ शिष्य समुदाय।
कुशल वंश के पूज्यो का, मैं ध्यान धरूं चित लाय—प्रति०

५. गुमानचन्द्र और रतनचन्द्रजी, शासन के शृंगार।
चाचा गुरु थे रतनचन्द्र के, दुर्गादास अनगार–हो—प्रति०

६. चारवीस संवत्सर लग यों, रखने को सम्मान।
रतनचन्द्र गणिपद नही लीना, पूज्य दुर्ग का मान–हो—प्रति०

७. दुर्गादास के बाद रत्नमुनि को दीना गणभार।
गुरु गुमान की मर्यादा मे, गणपति थे सुखकार–हो—प्रति०

८. कुशल वंश के पूज्य तीसरे, हमीर मल्ल मुनिराय।
परम प्रतापी पूज्य कजोड़ी, महिमा कही न जाय–हो—प्रति०

९. पञ्चम पूज्य बहुश्रुत भारी, विनयचन्द मुनिराय।
शोभाचन्द्रजी पूज्य हुए छट्ठे, दमियों के शिरताज–हो—प्रति०

१०. वादी मर्दन कनीरामजी, बालचन्द तप धार।
चन्दन मुनिवर शीतल चन्दन, मुनित्रय थे सुखकार–हो—प्रति०

११. 'गजेन्द्र' सब पूज्यो का अनुचर, करता उनका ध्यान।
भाव सहित जो पढ़े भविक जन, पावे सुख निधान–हो—प्रति०

(५८)

१. वे गुरु मेरे उर वसो, जे भव जलधि जहाज।
आप तिरें पर तारहिं, ऐसे श्री मुनिराज—वे गुरु०

२. मोह महारिपु जीत के, छोड़े सब घर बार।
होय मुनीश्वर वन बसे, आतम शुद्ध विचार—वे गुरु०

३. रोग-उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान ।
कदलि-तरु संसार है, सब छोड़्या इम जान—वे गुरु०

४. पंच महाव्रत आदरे, पांचो समिति समेत ।
तीन गुपति पालें सदा, अजर अमर-पद-हेत—वे गुरु०

५. धरम धरें दस लक्षणी, भावें भावना बार ।
सहें परीषह बीस-दो, चारित्र रतन भंडार—वे गुरु०

६. रतन-त्रय निज उर धरें, अरु निर्ग्रन्थ त्रिकाल ।
जीतें काम-पिशाच को, स्वामी परम दयाल—वे गुरु०

७. जेठ तपै रवि आकरो, सूखे सरवर नीर ।
शैल शिखर मुनि तप तपें, ठाड़े अचल शरीर—वे गुरु०

८. पावस रात भयावणी, बरसे जलधर - धार ।
तरु तल निवसे साहसी, बाजे झंझावार—वे गुरु०

९. शीत पड़े कपि-मद गले, दाझै सब वनराय ।
ताल तरंगिणी तट विषे, ठाडे ध्यान लगाय—वे गुरु०

१०. इण विध दुर्धर तप तपैं, तीनों काल मझार ।
लागे सहज स्वरूप मे, तन सौ ममत निवार—वे गुरु०

११. रंग - महल मे पोढ़ते, जे कोमल सेज बिछाय ।
ते कंकराली भूमि मे, सोवें संवर - काय—वे गुरु०

१२. गज चढि चलते गर्व सो, जे सेना सज चतुरंग ।
निरखि निरखि भू पग वे धरें, पालें करुणा अग—वे गुरु०

१३. षट्रस भोजन जीमते, जे सुवर्ण थाल मझार ।
अब वे सब छिटकाय ने, प्रासुक् लेत आहार—वे गुरु०

१४. पूर्व - भोग न चिन्तवे, आगम वाछा नाय ।
चतुर्गति दुःख से डरे, सुरत लगी शिव माहि—वे गुरु०

१५. वे गुरु चरण जहां धरें, जंगम तीरथ तेह ।
सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' मांगे एह—वे गुरु०

(५९)

श्री कुशल पूज्य का कीजे जाप, मिट जावे सब शोक सन्ताप ।

१. भव जल तारक गुरुवर बड़े, शान्त दान्त गम्भीर बड़े ।
नाम जप्यां कट जावे पाप—श्री कुशल०

२. ध्यान धरे तो दुरित टले, आधि, व्याधि सब रोग गले ।
हरे सभी का मानस ताप—श्री कुशल०

३. छत्ती त्याग हुए अणगार, धन जन सुत छोड़ा परिवार ।
निश दिन प्रभु का कीजे जाप—श्री कुशल०

४. चंगेरिया कुल में हुए भान, जयमलजी गुरु भाई जान ।
गुरु भक्ति मे रम रहे आप—श्री कुशल०

५. बरसों तक नही शयन किया, गुरु भाई का साथ दिया ।
तव गुण का नही पाऊं पार—श्री कुशल०

६. अशुभ अमंगल नाम न रहे, मुद मंगल तव नाम लहे ।
दुःख दूर सुख पावे धाप—श्री कुशल०

७. 'गजेन्द्र' जो भक्ति से रटे, कुशल नाम से संकट कटे ।
निर्मल चित्त करो भवि जाप—श्री कुशल०

(६०)

१. साधुजी ने वन्दना नित नित कीजे, प्रातः उगन्ते सूर रे प्राणी ।
नीच गति मां ते नहीं जावे, पामे ऋद्धि भरपूर रे प्राणी—साधुजी०

२. मोटा ते पंच महाव्रत पाले, छह कायारा प्रतिपाल रे प्राणी ।
भ्रमर-भिक्षा मुनि सूझती लेवे, दोष बियालीस टाल रे प्राणी—साधुजी०

३. ऋद्धि सम्पदा मुनि कारमी जाणी, दीधी ससार ने पूठ रे प्राणी ।
एवा पुरुषानी सेवा करतां, आठ कर्म जाय टूट रे प्राणी–साधुजी०

४. एक एक मुनिवर रसना त्यागी, एक एक ज्ञान भंडार रे प्राणी ।
एक एक वैयावचिया वैरागी, जेना गुणानो न आवे पार रे प्राणी-साधुजी०

५. गुण सत्तावीस करी ने दीपे, जीत्या परीषह बावीस रे प्राणी ।
बावन ते अनाचीरण टाले, तेने नमाऊं मारु शीश रे प्राणी–साधुजी०

६. जहाज समान ते सन्त मुनीश्वर, भव्य जीव बेसे आय रे प्राणी ।
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे, देवे मुक्ति पहुचाय रे प्राणी–साधुजी०

७. साधु-चरणे जीव सातारे पावे, पावे ते लील विलास रे प्राणी ।
जन्म जरा अने मरण मिटावे, नावे फरी गर्भावास रे प्राणी–साधुजी०

८. एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल माय रे प्राणी ।
नरक गतिमां ते नहि जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी–साधुजी०

९. प्रात: उठी ने उत्तम प्राणी, सुणो साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी ।
एवा पुरुषां नी सेवा करता, पावे अमर विमान रे प्राणी–साधुजी०

१०. संवत् अठारह ने वर्ष अडतीसे, बूसी गाव चौमासो रे प्राणी ।
'मुनि आसकरण' इण पर जंपे, हु तो उत्तम साधारो दास रे प्राणी–सा०

(६१)

अयवता मुनिवर, नाव तिराई वहता नीर मे ।।टेर।।

१. पोलासपुरी नगरी के राजा, विजय सेन भूपाल ।
श्री देवी के अग ऊपन्या, अयवता कुमारजी—अय०

२. बेले बेले करे पारणो, गणधर पदवी पाया ।
महावीरजो की आज्ञा लेकर, गौतम गोचरी आयाजी—अय०

३. खेल रहे थे खेल कवरजी, देखा गौतम आता ।
घर घर माहि फिरो हिंड़ता, पूछे दूजी वाताजी—अय०

४. असनादिक लेने के काजे, निर्दोषज हम बहरां।
अंगुली पकड़ी कुंवर ऐवंता, लायो गौतम लारेजी—अय०
५. माता देखी कहे पुण्यवंता, भली जहाज घर आणी।
हर्ष भाव धर निज हाथन से बहराया अन्न पाणीजी—अय०
६. लारे लारे चल्या कंवरजी, भेट्या मोटा भाग।
भगवंता की वाणी सुणने, उपना मन वैराग्यजी—अय०
७. घर आवी माता सुं कीनी, अनुमति की अरदास।
बात सुनी माता पुत्र की, मन मे आई हांसजी—अय०
८. तूं क्या जाणे साधुपणा में, बाल अवस्था थारी।
ऐसो उत्तर दियो कंवरजी, मात कहे बलिहारीजी—अय०
९. महोत्सव करीने संजम लीनो, हुआ बाल अणगार।
भगवंता का चरण भेंटिया, धन ज्यांरा अवतारजी—अय०
१०. वर्षा काल बरसियां पीछे, मुनिवर थंडिल जावे।
पाल बांध पानी मे पातरा, नावां जाण तिरावेजी—अय०
११. नाव तिरे म्हारी नाव तिरे यो, मुख से शब्द उच्चारे।
साधां के मन शंका उपनी, किरिया लागे थांरेजी—अय०
१२. भगवंत भाखे सब साधां ने, भक्ति करो तहे दिल से।
हीला निन्दा मती करो कोई, चरम शरीरी जीवजी—अय०
१३. शासन पति का वचन सुणी ने, सबही शीश चढ़ाया।
ऐवता की हुण्डी सिकरी, आगम मांहि गायाजी—अय०
१४. संवत उन्नीसे साल छेयालिस, भीलाड़ा सेखे काल।
'रतनचन्दजी' गुरु प्रसादे, गाई 'हीरालाल' जी—अय०

(६२)

१. अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी, धरती दाझै ज्यूं शीशो जी।
पांव उभराणा रे सिर-पद जले, तन सुकुमाल मुनीश्वरो जी—अर०

२. मुख कमल ज्यांरा मालती फूल ज्यूं, ऊभो गोखे हेठो जी।
भरी दुपेरी में दीख्यो एकलो, मोहिनी स्वामिनी दीठो जी–अर०

३, वयण रंगीली रे नयणा विधिया रिख ढव्यो तिण ठामोजी।
दासी ने कहे जाय उतर वलि, रिख तेड़ी ने लाम्रो जी–अर०

४. पावन कीजे हो मुझ घर-आंगणो, वेहरो मोदक सारोजी।
नवजोवन मारी काया कांई दहो, सफल करो जमारोजी–अर०

५. अरणक अरणक मां करती फिरे, गलियां गलियां भ्रमतीजी।
कहो किण दीठो रे मारो बालूड़ो, लारे वहु नर नारी जी–अर०

६. तिहाँ थी उतरी ने जननी पाय नमीयो, हुलसायो मन माता जी।
धिग् वत्स तोने रे चारित्र चूकियो, जेथी शिवपुर जाता जी–अर०

७. अगन ज्यूं तपत सिल्ला ऊपरे, अरणक अणसण कीधो जी।
'समय सुन्दर' कहे धन्य ते मुनिवर, मनवांछित पद लीधो जी–अर०

(६३)

१. नाम ऐला पुत्र जाणियो, 'धनदत्त' सेठ नो पूत।
नटवी देखी ने मोहियो, नही लखियो घर नो सूत—करम०

२. करम न छूटे रे प्राणियां, पूरव नेह विकार।
निज कुल छांड़ी रे नट थयो, न आणी शरम लिगार—करम०

३. एक पुर आव्यो रे नाचवा, ऊंचो वांस विशेष।
तिहां राय आव्यो रे जोयवा, मिलिया लोक अनेक—करम०

४. दोय पग पेहरी रे पांवड़ी, वांस चढ्यो गज गेल।
निरधारा ऊपर नाचतो, खेले नवा नवा रे खेल—करम०

५. ढोल बजावेरे नटवी, गावे किन्नर साद।
पांय घुंघरू घमघमे, गाजे अम्बर नाद—करम०

६. तब राजेन्द्र मन चिंतवे, लुभाव्यो नटवी रे साथ।
जो नट पड़े रे नाचतो, तो नटवी आवे मुझ हाथ—करम०

७. दान न आपेरे भूपति, नट जाणी नृप बात।
"हूं धन वंछु रे रायनो, राय वंछे मुझ घात"—करम०

८. तब तिहां मुनिवर पेखिया, धन धन साधु निराग।
धिग् धिग् भिख्यारी जीव ने, इम पाम्यो वैराग—करम०

९. संवर भावे रे केवली, थयो करम खपाय।
केवल महिमा रे सुर करे, 'लब्ध विजय' गुण गाय—करम०

(६४)

१. राजगृहीना वासियाजी, 'जंबू' नाम कुमार,
'ऋषभदत्त'रा डीकराजी, 'भद्रा' ज्यांरी मांय।
जंबू कह्यो मान ले जाया, मत ले संजम भार।।टेर।।

२. सुधर्मा स्वामी पधारियाजी, राजगृही रे मांय।
'कोणिक' वांदण चालियोजी, जंबू वांदण जाय—जंबू०

३. भगवंत वाणी वागरीजी, वरसै अमृतधार।
वाणी सुणी वैरागियाजी, जाण्यो अथिर संसार—जंबू०

४. घर आया माता कनेजी, विनवे बारं बार।
अनुमति दीजो मोरी मातजी, माता लेसूं संजम भार।
माता मोरी सांभलो, जननी लेसूं संजम भार।।टेर।।

५. ये आठूंही कामणी जंबू, अपछर रे उणिहार।
परणी ने किम परिहरो, ज्यांरा किम निकले जमार—जंबू०

६. ये आठूंही कामणी जंबू, तुम बिन विलखी थाय।
रमियां ठमियां सुं नीसरे, ज्यांरा बदन कमल विलखाय—जंबू०

७. मत हीणो कोई मानवी, माता मिथ्या मत भरपूर।
रूप रमणी सूं राचियां, ज्यांरा नही हुवे दुरगत दूर—माता०

८. पाल पोस मोटो कियो, जंबू इम किम दो छिटकाय।
मात पिता मेले झूरता, थांने दया नही आवे दिल मांय—जंबू०

९. एक लोटो पानी पीयो, माता मायर बाप अनेक।
सगलांरी दया पालसूं, माता आणी ने चित्त विवेक—माता०

१०. ज्यूं आंधारे लाकड़ी जंबू, तूं म्हारे प्राण आधार।
तुझ बिन म्हारे जग सूनो, जाया जननी जीतब राख—जबू०

११. रतन जड़त रो पींजरो माता, सुओ जाणे फंद।
काम भोग संसारना माता, ज्ञानी जाणे झूठो वंद—माता०

१२. पंच महाव्रत पालणो जंबू, पाचूं ही मेरु समान।
दोष बयालीस टालणा जंबू, लेणो सूझतो आहार—जंबू०

१३. पंच महाव्रत पालसूं माता, पांचूं ही सुख समान।
दोष बयालीस टालसूं माता, लेसूं सूझतो आहार—माता०

१४. संजम मारग दोहिलो जंबू, चलणो खांडेरी धार।
नदी किनारे रूंखडो जंबू, जद तद होय विनास—जबू०

१५. चांद बिना किसी चांदणी जंबू, तारा विन किसी रात।
वीरा बिना किसी वेनड़ी जंबू, झुरसी वार तिवार—जंबू०

१६. दीपक बिना मन्दिर सूनो जंबू, पुत्र बिना परिवार।
कंत बिना किसी कामिनी जंबू, झुरसी वारू मास—जंबू०

१७. माता पिता मेलो मिल्यो, माता मिली अनंती बार।
तारण समरथ कोई नहीं माता, पुत्र पिता परिवार—माता०

१८. मोह मतकर मोरी मात जी, मोह कियां बंधे कर्म।
हालर हूलर कांई करो माता, करजो जिनजीरो धर्म—माता०

१६. ये आठूं ही कामणी जंवू, सुख विलसो संसार।
दिन पीछा पड़ियां पछे, थेंतो लीजो संजम भार—जंवू०

२० ए आठूं ही कामणी माता, समझाई एकण रात।
जिनजीरो धर्म पिछाणियो माता, संजम लेसी म्हारे साथ—माता०

२१. मात पिता ने तारिया जंवू, तारी छे आठूं ही नार।
सासू सुसरा ने तारिया जंवू, पांचसे प्रभव परिवार।
जंवू भलो चेतियो जाया, लीनो संजम भार ।।टेर।।

२२. पांचसे ने सत्ताईस जणा साथे, जवू लीनो संजम भार।
इग्यारे जीव मुगते गया सरे, बाकी स्वर्ग मंझार—जंवू०

(६५)

१. वीरा ! म्हारा गज थकी हेठो उतर रे,
गज चढ्यां केवल नहीं होसी बंधव मांहरा गज थकी हेठो उतर रे–वीरा०

२. राज तणां लोभियो भरत-बाहुबली रे,
जूझे मूठ कटारी मारवा, बाहुबलि ! प्रतिबूझ रे—वीरा०

३. ब्राह्मी सुन्दरी इम भाखे रे,
"ऋषभ जिनेश्वर मोकली, मोकली बाहुबलि तुम पासे रे—वीरा०

४. लोच करी संजम लीनो आयो बलि अभिमानो रे,
'लघु बन्धव वंदूं नही' काउसग्ग रह्या शुभ ध्यानो रे—वीरा०

५. वर्ष दिवस काउसग्ग रह्या बेलडियां लिपटाणी रे,
पंखेरु माला मांडिया-शीत ताप बहु सहणो रे"—वीरा०

६. साध्वी वचन सुणि करि, चमक्या चित्त मंझारो रे,
"हय गय पैदल रथ तज्या पण चढ्यो अहंकारो रे—वीरा०

७. वैराग्य मन में धारियो हूं तो तजूं अभिमानो रे",
चरण उठायो वांदवा–पाम्यो केवलज्ञानो रे—वीरा०

८. पहुंच्या है केवली परिषदा, बाहुबलि मुनिराजो रे,
अजर अमर पदवी लही 'समयसुन्दर' वंदे पायो रे—वीरा०

(६६)

गुण-स्थानक

१. अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे,
क्यारे थइशुं बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व सम्बन्ध नुं बन्धन तीक्षण छेदीने,
विचरशुं कब महत्पुरुष ने पंथ जो—अपूर्व०

२. सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम-हेतु होय जो।
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नही,
देहे पण किंचित मूर्च्छा नवि जोय जो—अपूर्व०

३. दर्शन मोह व्यतीत थइ उपज्यो बोध जे,
देह भिन्न केवल चैतन्यनुं ज्ञान जो।
तेथी प्रक्षीण चारित्र मोह विलोकिये,
वर्ते एवुं शुद्ध स्वरूप नुं ध्यान जो—अपूर्व०

४. आत्म-स्थिरता त्रण संक्षिप्त योगनी,
मुख्य पणे तो वर्ते देह-पर्यन्त जो।
घोर परीषह के उपसर्ग-भये करी,
आवी शके नही ते स्थिरता नो अन्त जो—अपूर्व०

५. संयम ना हेतु थी योग-प्रवर्तना,
स्वरूप-लक्षे जिन आज्ञा आधीन जो।
ते पण क्षण क्षण घटती जाती स्थितिमां,
अन्ते थाये निज स्वरूप मा लीन जो—अपूर्व०

६. पंच विषय मां रागद्वेष-विरहितता,
पंच प्रमादे न मिले मन नो क्षोभ जो।
द्रव्य क्षेत्र ने कालभाव-प्रतिवन्ध विण,
विचरवु उदयाधीन पण वीत-लोभ जो—अपूर्व०

७. क्रोध प्रत्ये तो वर्ते क्रोध-स्वभावता,
मान प्रत्ये तो दीन पणानुं मान जो।
माया प्रत्ये माया-साक्षी भाव नी,
लोभ प्रत्ये नहीं लोभ समान जो—अपूर्व०

८. बहु उपसर्ग-कर्त्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं,
वन्दे चक्री तथापि न थाये मान जो।
देह जाय पण माया थाय न रोम मां,
लोभ नहीं छो प्रबल सिद्धि निदान जो—अपूर्व०

९. नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता—
अदन्त धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो।
केश, रोम, नख के अंगे शृंगार नही,
द्रव्य भाव संयम मय निर्ग्रन्थ सिद्ध जो—अपूर्व०

१०. शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता,
मान अमाने वर्ते स्वभाव जो।
जीवित के मरणे नही न्यूनाधिकता,
भव-मोक्षे पण वर्ते समभाव जो—अपूर्व०

११. एकाकी विचरतो वली श्मसान मां,
वली पर्वतमां बाघ सिंह संयोग जो।
अडोल आसन ने मन मां नहि क्षोभता,
परम मित्र नो जाणे पाम्या योग जो—अपूर्व०

१२. घोर तपश्चर्या मां पण मन ने ताप नहीं,
सरस अन्ने नही मन ने प्रसन्न भाव जो।
रज-कण के ऋद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो—अपूर्व०

१३. एम पराजय करी ने चारित्र मोहनो,
आवु ं त्यां ज्यां करण अपूर्व भाव जो।
श्रेणी क्षपक तणी करी ने आरूढ़ता,
अनन्य चिन्तन अतिशय शुद्ध स्वभाव जो—अपूर्व०

१४. मोह स्वयंभूरमण समुद्र तरी करी,
स्थिति त्यां ज्यां क्षीण मोह गुणस्थान जो—अपूर्व०
अंत समय त्यां पूर्ण स्वरूप वीतराग थई,
प्रगटावु ं निज केवल ज्ञान निधान जो।

१५. चार कर्म घनघाती ते व्यवच्छेद ज्यां,
भव ना बीज तणो आत्यन्तिक नाश जो।
सर्वभाव ज्ञाता द्रष्टा सह शुद्धता,
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो—अपूर्व०

१६. वेदनीयादि चार कर्म वर्ते जहां,
वली सीदरिवत् आकृतिमात्र जो।
ते देहायुष आधीन जेनी स्थिति छे,
आयुष पूर्णे मिटिये दैहिक पात्र जो—अपूर्व०

१७. मन वचन काया ने कर्मनी वर्गणा,
छूटे जहां सकल पुद्गल सम्बन्ध जो।
एवु ं अयोगी गुणस्थान त्यां वर्ततु ं,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जो—अपूर्व०

१८. एक परमाणुमात्रनी मले न स्पर्शता,
पूर्ण कलंक-रहित अडोल स्वरूप जो।
शुद्ध निरजन चैतन्य मूर्ति अनन्तमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहज पद रूप जो—अपूर्व०

१९. पूर्व प्रयोगादि कारण ना योग थी,
उर्ध्व गमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो।
सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख मां,
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो—अपूर्व०

२०. जे पद श्री सर्वज्ञ दीठूं ज्ञान मां,
कही शक्या नही पण ते श्री भगवान जो।
तेह स्वरूप ने अन्य वाणी शुं कहे,
अनुभव गोचर मात्र रह्यूं ते ज्ञान जो—अपूर्व०

२१. एह परम पद प्राप्ति नुं कयूं ध्यान मैं,
गजा वगर नो हाल मनोरथ रूप जो।
तो पण निश्चय 'राजचन्द्र' मन में रह्यो,
प्रभु आज्ञाये थाशुं तेज स्वरूप जो—अपूर्व०

(६७)

१. अब हम अमर भये ना मरेंगे,
या कारण मिथ्यत दियो तज, क्यो कर देह धरेंगे—अब०
२. राग द्वेष जग बन्ध करत हैं इनका नाश करेंगे,
भ्रम्यो अनन्त काल ते प्राणी सो हम काल हरेंगे—अब०
३. देह विनाशी हूं अविनाशी अपनी गति पकरेंगे
नासी जासी हम थिरवासी चोखे व्है निखरेंगे—अब०
४. मर्यो अनन्त वार बिनु समज्यो अब सुख दुःख विसरेंगे,
'आनन्दघन' निपट निकट अक्षर दो नही सुमरे सो सुमरेंगे—अब०

(६८)

१. अहो जगत गुरु एक, सुनिये अरज हमारी ।
तुम हो दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी ।।

२. इस भव वन वादि में, काल अनन्त गमायो ।
भ्रमत चहुं गति मांहि, सुख नही दुःख बहु पायो ।।

३. कर्म महारिपु जोर, एक न कान धरेजी ।
मन मान्या दुःख देहिं काहू सौ न डरे जी ।।

४. कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावै ।
सुर नर पशु गति मांहि, बहू विधि नाच नचावे ।।

५. प्रभु ! इनके परसंग, भव मांहि बुरेजी ।
जे दुःख देखे देव ! तुम सों नाहिं दुरे जी ।।

६. एक जन्म की बात, कहि न सको सुन स्वामी ।
तुम अनन्त परजाय, जानत अन्तर जामी ।।

७. मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे ।
किया बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे ।।

८. ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निर्बल करि डार्यो ।
इन्ही तुम मुझ मांहि, हे जिन ! अन्तर पार्यो ।।

९. पाप पुण्य की दोई, पांयनि बेडी डारी ।
तन कारागृह मांहि, मोहिं दियो दुःख भारी ।।

१०. इनको नेक बिगार, मैं कछु नांहि कियो जी ।
बिन कारण जगवद ! बहु विधि वैर लियो जी ।।

११. अब आयो तुम पास, सुनि जिन सुजस तिहारो ।
नीति निपुण जग राय ! कीजे न्याय हमारो ।।

१२. दुष्टन देहु निकास, साधन को रख दीजे ।
विनवें 'भूधरदास' हे प्रभु ! ढील न कीजे ।।

(६६)

१. इम समकित मन थिर करो, पालो निर अतिचार ।
मनुष्य जन्म छै दोहिलो, भमतां जगत मंझार ॥

२. नर भव आरज कुल तिहा, सुणवी जिनवर वाण ।
होय यथारथ श्रद्धना, चउ अंग दुर्लभ जान ॥

३. आरम्भ परिग्रह दोय ए, तेइस विपय कपाय ।
जव लग पतला ना पड़े, तब लग समकित नाय ॥

४. आत्म, लोक, कर्म, क्रिया, शुद्ध वाद है चार ।
चिंतवतां समकित लहे, जीव जगत मंझार ॥

५. जीव अभूरत शाश्वतो, तीन रत्न सुभाय ।
पर संयोगे ऊपजे, तस विपय कपाय ॥

६. आतम सम छहकाय हैं, दुःख निर अभिलाप ।
परलोक परवश जाइवो, जिन आगम है साख ॥

७. संपत् विपत् सुखी-दु.खी, मूढ़ 'रु चतुर सुजान ।
न:टक कर्मना जाणज्यो, नाना जगत विधान ॥

८ बिन कीधां लागे नही, कीधां कर्मज होय ।
कर्म कमाया आपणा, तेह थी सुख दुःख होय ॥

६ जीव अजीव वेहू मिल्या, खीर नीर ने न्याय ।
अज्झत्त गुण ने कारणे, ते थी वन्धन थाय ॥

१०. आस्रव हेतु छे वन्धनो, शुभ–अशुभ दो भेद ।
क्रम थी पुण्य ने पाप छे, मोक्ष तेहनो छेद ॥

११. संवर रोके आवतां, क्षीण तप थी होय ।
तेहनो नाम छे निर्जरा, मुगति कारण दोइ ॥

१२. पहली त्रिक मन धारिये, ज्ञेय अरु बीजी हेय।
तीजी उपादेय जानिये, इम मन समकित सेय ॥
१३. उपशम जेह कषाय नो, तेहनो शम अभिधान।
मुगति पंथ नी चाहना, सो सम्वेग प्रधान ॥
१४. होइ उदास विषय विषै जाणीजो निरवेद।
पर दुःख देखी दुख-दया, ओ छे चौथो भेद ॥
१५. इह परलोक छतापणो, होइ आस्तिक भाव।
कर्म कर्या तेना फल सही, होइ पुण्य ने पाप ॥
१६. तर्क अगोचर 'सद्दहो', द्रव्य धर्म अधर्म।
केई 'प्रतीतो' युक्ति सो पुण्य-पाप जु कर्म ॥
१७. तप चरित ने रोचवो, कीजे तस अभिलाख।
'श्रद्धा' 'प्रत्यय' 'रुचि' तिहुं, है जिन आगम साख ॥
१८. पंथ, धर्म, जिय, साधु छे सिद्ध शेतर[1] जान।
एह पदारथ जाणिये, 'सण्णा' (सज्ञा) दस विध मान ॥
१९. जाति सुभ्रति औधि आदि सो, उपजे बोधि निसर्ग १।
छद्मस्थ जिन उपदेश सो, पावे भविजन वर्ग २ ॥
२०. आदेश गुरुमुख सुन लहे, 'आणारुचि' ३ या होइ।
पढतां श्रुत के ऊपजे, 'सूत्र रुचि' है ४ सोय ॥
२१. तेल सलिल के न्याय सो, बोधि बीज को लाह।
ते तुम जाणो 'बीज रुचि' ५, भाखे जिनवर नाह ॥
२२. अर्थ विचारे सूत्र के, 'अभिगम रुचि' ६ सो जान।
सब गुण पर्यव भाव नय, इम विस्तारे ७ मान ॥
२३. 'क्रिया रुचि' ८ क्रिया विषै, उद्यम करतां होई।
चारित्र मे उद्यम किया, 'धर्म रुचि' ९ है सोई ॥

---

१. मार्ग, धर्म, जीव, साधु एवं सिद्ध—इन पाचो के इतर उन्मार्ग, अधर्म, अजीव, असाधु एवं असिद्ध—ये दस प्रकार की सज्ञाए हैं।

२४. जांने कुदर्शंण ना ग्रह्यो, जांहि समय प्रवीन।
'संक्षेप रुचि' १० सो जानिये, भाखे बुद्धि-प्रहीन ॥

२५. चार अनंतानुबंधिया, मिथ्या-मोहनी मीस।
ए सब समकित को हणे, भाख्यो श्री जगदीश ॥

२६. देश हणे सम मोहनी, सपतक एही जान;
क्षय उपसम इनका कह्यो, मीस उदय प्रमान ॥

२७. उपसम क्षय छे सात नो, क्षय अरु उपसम भेद।
च्यारि भनंतानुबंधिया, निश्चय छे इह छेद ॥

२८. दसन एक दुहून को, क्षय - उपसम शेप।
समकित मोहनी उपसमै नियमा ए तिहुं लेख ॥

२९. वेदक मे नियमा उदय, होई समकित मोह।
शेष छह प्रकृति उपशमै, अथवा पावे छोह ॥

३०. चार कपाय क्षय हुवै, दंसण दो उपशाम।
अथवा मीसा उपसमैं, पंच पावे विराम ॥

३१. ए नव भेद समकित कह्यो, जेह थी शिवसुख थाइ ॥
क्षय उपसम दोय वेद छे, ए ही च्यारैं भाई ॥

३२. शंका १ कंखा २ कर रहित, वितिगिच्छा ३ जी नांहि।
दिट्ठी अमूढ ४ थिरीकरण ५ जिनमत के मांहि ॥

३३. धर्म विपै उच्छाहना, तस उववूह ६ नाम।
वात्सलय ७, प्रभावना ८, ए आचार ना ठाम ॥

३४. शंका संशय ऊपजै, सब - देसे होइ।
सवथी अनाचार देश थी, अतिचार छे सोइ ॥

३५. धर्म करंतां मन धरे, देवादिक नी भीति।
अथवा लज्जा लोकनी, ए छे शंका रीति ॥

३६. कंखा परमत वांछवो, सब देशे जो होइ।
सब थी अनाचार देश थी–अतिचार छे सोइ॥

३७. सहाय वांछे धर्म में, नर अरु सुर थी कोय।
लब्ध्यादिक वांछा करे, ए है कखा जोय॥

३८. तप चारित्र ना फल विषै वितिगिच्छा संदेह।
साधु–उपधि मलिन लखि, दुग्गछा छे एह॥

३९. संसार कारज साधवा, जो परजुंजे धर्म।
सभी अतिचार ऊपजे, सममोहनी कर्म॥

४०. पासत्थादि कुदर्शनी, जेह शिथिलाचार।
निन्हव जेय असाधु छै, एहनो कर परिहार॥

४१. एह प्रशसे – सथवे, अतिचार छे पच।
समदृष्टी ! तुम जाणज्यो, ए मति सेवो रंच॥

४२. क्षण क्षण जो क्रोध करे, धरे अति दीरघ रोष।
इह – पर जग – जस – वदना – कारण तप पोष॥

४३. निमित्त करी अजीविका, एह थी असुरज थाय।
च्यार पदे संमोह छे, ते थी समकित जाय॥

४४. उन्मारग नी देशना, पंथ – विघ्न – सुजान।
गिरधी भाव विषय तणो, काम भोग निदान॥

४५. अरिहन्त – धर्म तथा गुरु – संघ अवरणवाद।
एह थी किल्विषता लहे, मिथ्यामति उत्पाद॥

४६. अपना गुण पर–औगुणों, भूति कौतुकाकार।
अभियोगी सुर जे हुवे, ते छे चार प्रकार॥

४७. कंदर्पी विकथा करै, भण्ड – चेष्टा – जान।
चपलाई परिहास छै, ते कंदर्पी थान॥

४८. आरम्भ परिग्रह मोट को, पंचेन्द्रिय नी घात।
निंद्य आहार नरक तणां, हेतू च्यारे बात ॥

४९. माया करै तस गोपवै, कूड़ा देवे आल।
कूड़ा मापा तोलतां, तिर्यंच बंधे काल ॥

५०. चारित्र दर्शन ज्ञान को, कीजिये अभ्यास।
संगति कीजै साधुनी, जे छे जगथी उदास ॥

५१. भ्रष्ट कुदर्शन की तजो, संगति ए व्यवहार।
समकित ना ए जाणज्यो, इम ए चारि प्रकार ॥

५२. अन्यमती तस देवता, चैत्य वंदे नांहि।
राजा–गण–सुर गुरु – सबल – वृत्ति – छांडी मांहि ॥

५३. न्याय करे न्याय भाषही, न्याय को पक्षपात।
न्याय विचारे मन धरे, लज्जा–नीति की बात ॥

५४. जाको बल्लभ न्याय है, न्याय ही को आचार।
न्याय ही सों सबही करे, वृत्ति ओ' व्यवहार।

५५. नौ तत्व जान १ सहाय न वंछे, डिगे नहीं देव अदेव डिगाये २।
३ दोष विना जो धरे जिन दर्शन ४ निरनै सब अर्थ करी समझाये ॥

५६. धर्म के राग रंग्यो हिरदे ५ अति धर्म कहे आपस में मिलायै।
निर्मल चित्त ७ अभंग दुवार ८ अंतेउर नाहि परे घर जायै ॥

५७. पोषध छहु तिथि को करै ९ प्रतिलाभे शुभ साध १०।
ऐसे समदृष्टि तथा, श्रावक हैं आराध ॥

(७०)

१. उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है ॥ध्रु०॥
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है वो पावत है।

२. टुक नीद से अंखियां खोल जरा, ओ गाफिल रब (प्रभु) से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नही, रब जागत है तूं सोवत है॥

३. अनजान ! भुगत करणी अपनी, ओ पापी ! पाप में चैन कहां ?
जब पाप की गठड़ी शीश धरी, फिर शीश पकड़ क्यो रोवत है ?

४. जो काल करे सो आज ही कर, जो आज करे सो अब करले।
जब चिड़ियन खेती चुगि डारी, फिर पछताये क्या होवत है ?

(७१)

१. उठ भोर भई टुक जाग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु।
अब नीद अविद्या त्याग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

२. जग जाग उठा तूं सोता है, अनमोल समय यह खोता है।
तूं काहे प्रमादी होता है, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

३. यह समय नही है सोने का, है वक्त पाप–मल धोने का।
अरु सावधान चित होने का, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

४. तूं कौन कहा से आया है, अब गमन कहां मन लाया है।
टुक सोच यह अवसर पाया है, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

६. रे चेतन चतुर हिसाब लगा, क्या खाया खरचा लाभ हुआ।
निज ज्ञान जमा तूं संभाल सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

५. गति चार चौरासी लाख रुला, यह कठिन कठिन शिवराह मिला।
अब भूल कुमार्ग विषे मत जा. भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

(७२)

एकज ए अभिलाष – मम हृदये तव वास—एकज०

१. ना चाहूं जग कीरति मेवा, ना स्वर्ग निवास।
सिद्धि मिले, भले जीवन बलि हो, ए अन्तर नी आस—एकज०

२. सफल विफलनी ना मुझ परवाह, परवाह गुरुजन सेवा।
महा आंधी मां भले रहूं निरन्तर, तुझ चरणे विश्वास—एकज०

(७३)

१. एक सांस खाली मत खोय रे जगत् बीच,
कीचड़ कलक अग धोयने तो धोयले ।।टेर।।
२. उर अन्धियार पाप पूर को भरियो है जामें।
ज्ञान की चिराग चित्त जोय ले तो जोय ले—एक सांस०
३. मानुष जनम ऐसो फेर न मिलेगो मूढ़।
परम प्रभु से प्यारे होय ले तो होय ले—एक सांस०
४. क्षण भगुर देह या में जनम सुधारबो है।
बिजली के झलके मोती पोय ले तो पोय ले—एक सांस०

(७४)

१. ए जी ! थांने आई अनादि की नींद, जरा टुक जोवो तो सही।
ए जी ! थांने सुमति कहे कर जोड़, सन्मुख होओ तो सही–एजी०
२. मोह मद छक रही नीद निवाणी, टोओ तो सही।
अजी जरा ! ज्ञान शुद्धोदक छांट, अंखियन पट खोलो तो सही–एजी०
३. काल अनन्त दुःख देख पिया ! क्यों फिर मोहो छो सही।
अजी ! इन कुमति सखियन संग बैठ बैठ, पेठ क्यों खोओ छो सही–एजी०
४. क्रोध कपट मद लोभ, विषयवश होओ छो सही।
अजी यो ! चतुर्गति को बीज, चतुरां ! किम बोओ छो सही–एजी०
५. सत्य – मत – मुक्ता – माल प्रेम धर पोओ तो सही।
अजी ! या निज-सुख-सेज 'सुजाण' सुगुण मन सोओ तो सही–एजी०

(७५)

करलो श्रुतवाणी का पाठ, भविक जन मन मल हरने को ।।टेर।।

१. बिन स्वाध्याय ज्ञान नही होगा ज्योति जगाने को ।
राग द्वेष की गाठ गले नही बोधि मिलाने को ।।

२. जीवादिक स्वाध्याय से जानो करणी करने को ।
बंध मोक्ष का ज्ञान करो भव भ्रमण मिटाने को ।।

३. तुंगियापुर में स्थविर पधारे ज्ञान सुनाने को ।
सुज्ञ उपासक मिलकर पूंछे सुर पद पाने को ।।

४. स्थविरों के उत्तर थे सब जन मन हर्षाने को ।
गौतम पूछे स्थविर समर्थ है उत्तर देने को ।।

५. जिनवाणी का सदा सहारा श्रद्धा रखने को ।
बिन स्वाध्याय न संगत होगी भव दुःख हरने को ।।

६. सुबुद्धि ने भूप सुधारा भव जल तिरने को ।
पुद्गल परिणति को समझा कर धर्म दिपाने को ।।

७. नित स्वाध्याय करो मन लगाकर शक्ति बढ़ाने को ।
'गज मुनि' चमत्कार कर देखो निज बल पाने को ।।

(७६)

करलो सामायिक रो साधन जीवन उज्वल होवेला ।।टेर।।

१. तन का मैल हटाने खातिर नित प्रति नहावेला ।
मन पर मैल चहूं ओर जमा है कैसे धोवेला—करलो०

२. बाल्यकाल मे जीवन देखो दोष न पावेला ।
मोहमाया का संग कियां से दाग लगावेला—करलो०

३. ज्ञान गंगा ने क्रिया घुलाई जो कोई धोवेला ।
काम क्रोध मद लोभ दाग को दूर हटावेला—करलो०

४. सत्संगत और शान्त स्थान दोष बचावेला।
फिर सामायिक साधन करने शुद्धि मिलावेला—करलो०

५. दोय घड़ी निज रूप रमणकर जग विसरावेला।
धर्मध्यान में लीन होय चेतन सुख पावेला—करलो०

६. सामायिक से जीवन सुधरे जो अपनावेला।
निज सुधार से देश जाति सुधरी हो जावेला—करलो०

७. घिसत घिसत प्रतिदिन रस्सी भी शिला घिसावेला।
करत करत अभ्यास मोह का जोर मिटावेला—करलो०

(७७)

१. कैसे करि केतकी कणर एक कह्यो जाय।
आक-दूध गाय-दूध अन्तर घणेरो है॥

२. रीरी होत पीरी पण हौंस करे कंचन की।
कहां काग-वाणी कहां कोयल की टेर है॥

३. कहां भानु तेज कहां आगियो विचारो कहां।
पूनम उजियारो कहां अमावस अंधेरो है॥

४. पक्ष छोड़ि पारखी निहारो नेक नीके करी।
जैन वैन और वैन अन्तर घणेरो है॥

५. वीतराग वाणी सांची मुक्ति की निसण्णी जाणी।
सुकृत की खानि ज्ञानी मुख से बखाणी है॥

६. इनको आराध के तिरे हैं अनन्त जीव।
ताको ही जहाज जान श्रद्धा मन आणी है॥

७. सरधा है सार धार सरधा से खेवो पार।
श्रद्धा विन जीव ख्वार निश्चै कर मानी है॥

८. वाणी तो घणेरी पर वीतराग तुल्य नहीं।
इसके सिवाय और छोरो-सी कहानी है ।।

(७८)

घणो सुख पावेला, जो गुरु वचनों पर प्रीति वढावेला ।।टेर।।

१. विनयशील की कैसी महिमा, मूल सूत्र बतलावेला।
वचन प्रमाण करे सो जन सुख सम्पति पावेला ।।

२. गुरु सेवा और आज्ञाधारी, शिक्षा खूब मिलावेला।
जलपाये तरुवर सम वे, जग मे सरसावेला ।।

३. वचन प्रमाणे जो नर चाले, चिन्ता दूर भगावेला।
आपमती आरति नित भोगे, धोखा खावेला ।।

४. एकलव्य लखि चकित पाडुसुत, मन मे सोच करावेला।
कहा गुरु से हाल भील की भक्ति बतावेला ।।

५. देख भक्ति उस भील युवा की, वन देवी खुश होवेला।
बिना अंगूठे बाण चले यो वर दे जावेला ।।

६. गुरु कारीगर के सम जग मे वचन टंक जो खावेला।
पत्थर से प्रतिमा जिम वो नर महिमा पावेला ।।

७. कृपा दृष्टि गुरुदेव की मुझ पर ज्ञान शांति बरसावेला।
'गजेन्द्र' गुरु महिमा का नहीं कोई पार मिलावेला ।।

(७९)

१. चेतन ! अब मोहि दर्शन दीजे।
तुम दर्शन शिवसुख पामीजे, तुम दर्शन भव छीजे ।।ध्रु०।।

२. तुम कारन तप संयम किरिया, कहो कहां लौ कीजै ?
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी, अन्तर चित्त न भीजै ।।

(८०)

चेतन रे ! तूं ध्यान आरत क्यूं ध्यावे, हां रे नाहक कर्म संचावे—चे०

१. जो जो भगवन्त भाव देखिया सो सो ही बरतावै।
घटै बढै नहीं रंचहु तामें, तो काहे तूं मन डोलावे—चे०

२. आरत ध्यान ज्यों चिन्ता अग्नि, उपजत सहू विरणसावै।
शोकातुर वीते दिन रैणी, तो धर्म ध्यान घट जावे—चे०

३. सुख सूं निद्रा आत न रातन, अन्न उदक नहि भावै।
पहिरण ओढण चित्त नही चावे, नही राग न रंग सुहावे—चे०

४. भुगत्यां विन छूटै नहि कबहूं, अशुभ उदय जब आवै।
साहूकार शिरोमणि सो ही, जो हर्ष सुं कर्ज चुकावै—चे०

५. सुख न रहे तो दुःख किम रहसी, यह भी श्यात् गुजर जावै।
कर्म बन्ध भुगतण सही पड़सी, तो आतम ने ढंढावै—चे०

६. प्रभु सुमरण अरु तपस्या करतां, दुष्कृत रज झड़ जावै।
'ज्येष्ठ' कहे समता रस पीतां, तुरत ही आनन्द पावै—चे०

(८१)

१. वृषभ चिह्न ऋषभ को, अजित को गजराज।
संभव को अश्व, अभिनन्दन को कपि है॥
सुमति प्रभु को क्रौंच, कमल पद्म प्रभुजी को।
स्वस्तिक सुपार्श्व अरू, चन्द्र चन्द्रप्रभ को॥

२. मकर सुविधि को चिह्न, शीतल को है श्रीवत्स।
श्रेयांस को गेंडा, वासुपूज्य को महिष है॥
विमल वराह, श्येन अनन्त, वज्र धर्मनाथ।
शान्ति को हरिण, कुंथुनाथजी को छाग है॥

६. नन्द्यावर्त अरजी को, मल्ली को कलश पुनि ।
कूर्म मुनिसुव्रत, नीलोत्पल नमि जिन को ।।
शंख नेमिनाथजी को, पारस को सर्पराज ।
'गजसिंह' कहे चिह्न, सिंह महावीर को ।।

(८२)

१. जग उठरे रे मारा चतुर पांवणा अब थारी गाड़ी हकबा में ।
पल पल में थारी ऊमर जावे–मौत फागती आवे जीवड़ा–अब०
२. मोह नींद रे वश में सोग्यो भूल आपणो पथ जीवड़ा–अब०
बचपन खेलण मांही गंवायो जोबन मे मद छायो जीवड़ा–अब०
३. पर की निन्दा कर कर आपणा घर मे कचरो लायो जीवड़ा–अब०
मुनियांरो उपदेश न मान्यो धरम ध्यान नही आयो जीवड़ा–अब०
४. ज्ञान्यां रो उपदेश न धार्यो धरम ध्यान नही ध्यायो जीवड़ा–अब०
बीती सो तो बीत गई रे अब तूं चेत चेत जीवड़ा–अब०
५. पाप करम सब भरम छोड़ कर धरम सुं नेह लगा जीवड़ा–अब०
प्रभु सुमिरण है सब दुःख नासी 'कुमुद' सदा सुखदाई जीवड़ा–अब०

(८३)

१ जगत में, बडो समझ को आंटो, बड़ो समझ को आंटो ।।टेर।।
सुण सुण धर्म शर्म नही उपजत, विषम कर्म को काटो ।
२. सवर त्याग वटोरत आश्रव कष्ट करे उफराटो ।
मन वच काय कमावत सावज्ज पड़ रही भूल निराटो–जगत०
३. जग दुःख टाल हिये सुख माने रुक्यो ज्ञान गुण घाटो ।
आपो भूल पड्यो इन्द्रिय वश मिटे न मोह को फांटो–जगत०
४ श्री जिन वचन दिवाकर प्रगट्या, उड्यो भर्म को टाटो ।
'रतनचन्द' आनद भयो अब, लख्यो सार रस लाटो–जगत०

(८४)

१. जिनदेव ! तेरे चरणों में मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास हो ।
जीवन-समर में हे प्रभो ! मुझे एक तेरी आस हो ॥
२. कर्त्तव्य-पथ से जो डिगाने विघ्न-गण आवें मुझे ।
सन्तोष, भक्ति और दया का मन्त्र मेरे पास हो ॥
३. संसार-सागर में बहा दूं प्रेम की मन्दाकिनी ।
दिल में तड़प हो प्रेम की और प्रेम जल की प्यास हो ॥
४. निज भाव भाषा देश का गौरव मुझे दिन रात हो ।
निज धर्म हित यह प्राण हों और मन कभी न निराश हो ॥
५. संसार-सागर में न भटके नाव मेरी हे प्रभो ।
मैं खुद खिवैया बन सकूं वह शक्ति मेरे पास हो ॥
६. मैं बालपन में ब्रह्मचारी, रह सभी विद्या पढ़ूं ।
यौवन दशा में बन के श्रावक अन्त में सन्यास हो ॥
७. यह आत्मा ही बन सके ऐ राम ! खुद परमात्मा ।
हे नाथ ! मेरी आत्मा का अन्त मोक्ष-निवास हो ॥

(८५)

१. जीवन उन्नत करना चाहो तो सामायिक साधन कर लो ।
आकुलता से बचना चाहो तो—सा०
२. तन धन परिजन सब सुपने हैं, नश्वर जग में नहीं अपने हैं ।
अविनाशी सद्‌गुण पाना हो तो—सा०
३. चेतन निज घर को भूल रहा, पर घर माया मे भूल रहा ।
सद् चित् आनन्द को पाना हो तो—सा०
४. विषयों में निज गुण भूलो मत, अब काम क्रोध में मत भूलो ।
समता के सर में नहाना हो तो—सा०

५. तन पुष्टि हित व्यायाम चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला ।
आध्यात्मिक बल पाना चाहो तो—सा०

६. सब जग जीवो मे बन्धु भाव, अपना लो तज के वैर भाव ।
सब जन के हित मे सुख मानो तो—सा०

७. निर्व्यसनी-हों प्रामाणिक-हो, धोखा न किसी जन के संग हो ।
संसार मे पूजा पाना हो तो—सा०

८. स्वाध्याय सामायिक संघ बने, सब जन सुनीति के भक्त बनें ।
नर लोक मे स्वर्ग बसाना हो तो—सा०

(८६)

१. जीवन चरित महापुरुषो के हमे नसीहत देते हैं,
हम भी अपना अपना जीवन स्वच्छ रम्य कर सकते हैं ।

२. हमे चाहिए हम भी अपने बना जायं पद चिह्न ललाम,
इस धरती की रेती पर जो, वक्त पड़े आवें कुछ काम ।

३. देख देख जिनको उत्साहित, हो पुनि वे मानव मतिधर,
जिनकी नष्ट हुई हो नौका, चट्टानो से टकराकर ।

४. लाख लाख संकट सहकर भी, फिर भी हिम्मत बांधें वे,
जाकर मार्ग मार्ग पर अपना, 'गिरिधर' कारज साधें वे ।

(८७)

१. जो केश काले भवर थे, गाले रुई के बन गये ।
थे दांत हाथीदांत सम, मजबूत गिरने लग गये ।।

२. आखें चुरा आखे गई हैं, दृष्टि मन्दी पड़ गई ।
मुख हो गया है खोखला, तृष्णा अधिक है बढ गई ।।

३. नहिं कान देते काम अब, ऊचा बहुत सुनने लगे।
पग डगमगाते चल रहे हैं, हाथ भी हिलने लगे ॥

४. काया गली, झुर्री पड़ी, हड्डी हुई है खोखली।
ज्यों जौंक चिन्ता-सर्पिणीने रक्त चर्बी शोष ली ॥

५. इन्द्रियां बलहीन हैं, धनु सम कमर है झुक गई।
काया हुई बूढ़ी मगर, आशा नहीं बुड्ढी हुई ॥

६. यमदूत तुमको दे रहे हैं, कूच की यह सूचना।
आश्चर्य है आश्चर्य अति, होती नहीं क्यों चेतना ॥
आश्चर्य है अब भी तुम्हें, होती नहीं क्यों चेतना ॥

(८८)

१. जो दस बीस पचास भये, शत होंय हजार तो लाख मगेगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब भये तो, धरापति होने की चाह जागेगी ॥

२. स्वर्ग पाताल को राज मिले, तृष्णा तबहूं अति आगे बढ़ेगी।
'सुन्दर' एक संतोष बिना, शठ ! तेरी तो भूख कभी न भगेगी ॥

(८९)

१. जोवनियां की मौजां फौजां जाय नगाड़ा देती रे,
चेत ! चेत रे ! चेत ! चतुर नर ! चिड़ियां चुग गई खेती रे–जोव०

२. छिनक छिनक मे आयुष छीजै क्यों कड़िया वरण एती रे,
ओछा जीवत कारण चेतन ! पड़ मुगत सूं छेनी रे–जोव०

३. मात पिता त्रिया सुत बन्धव मिली सम्पदा एती रे,
पलक पलक में सघली पलटे ज्यों जल भरियो रेती रे–जोव०

४. काल की फौज चढ़ी शिर ऊपर फिरे लपेटा लेती रे,
अविचल सुख की चाह हुए तो प्रीति करो प्रभु सेती रे–जोव०

५. जोवन लहर रंग पतंग सम कहूं खीजावण केती रे,
इण में 'रतन' वया सुखकारी आराध्या सुख देती रे–जोव०

(९०)

तूं क्यों ढूंढे वन वन मे, तेरा नाथ बसे नैनन में ।।टेर।।

१. कई यक जात प्रयाग वाराणसी, कई यक वृन्दावन मे ।
प्राणवल्लभ बसे घट अन्दर, खोज देख तेरा मन मे—तूं०

२. तज घर वास बसे वन भीतर, राख लगावे तन मे ।
धर बहु भेष रचे बहु माया, मुगत नही छे इन में—तूं०

३. कर बहु सिद्धि, रिद्धि निधि आपे, बगसे राज बचन मे ।
ये सहु छोड़ जोड़ मन जिन सुं, मुगति देय इक छिन में—तूं०

४. मूल मिथ्यात मेट मन को भ्रम, प्रकटे ज्योत 'रतन' मे ।
सद् गुरु ज्ञान अजब दरसायो, ज्यों मुखड़ा दरपण मे—तूं०

(९१)

१. दयामय होवे मंगलाचार, दयामय होवे वेडा पार ।
करें विनय हिल-मिल कर सब ही, हो जीवन उद्धार ।।टेर।।

२. देव निरंजन ग्रन्थहीन गुरु, धर्म दयामय धार ।
तीन तत्व आराधन मे मन, पावे शान्ति अपार—दयामय०

३. नर भव सफल करण हित हम सब, करें शुद्ध आचार ।
पावें पूर्ण सफलता इसमे, ऐसा हो उपकार—दयामय०

४. ज्ञान धर्म में रमे रहे हम, उज्ज्वल हो व्यवहार ।
तन धन अर्पण करें हर्ष से, नही हो शिथिल विचार—दयामय०

५. दिन दिन बढे भावना सब की, घटे अविद्या भार ।
यही कामना 'गजमुनि' की हो, तुम्हीं एक आधार—दयामय०

(६२)

१. दया सुखों नी वेलड़ी, दया सुखों नी खान।
अनन्ता जीव मुक्ति गया, दया तणां फल जान ॥

२. हिंसा दुःखों नी वेलड़ी, हिंसा दुःखों नी खान।
अनन्ता जीव नरके गया, हिंसा तणा फल जान ॥

३. चेतो रे! भवी प्राणियां, ओ संसार असार।
स्थिरता कोई दीसे नहीं, धन जोवन परिवार ॥

४. धर्म करो तमे प्राणियां, धर्म थकी सुख होय।
धर्म करंतां जीव ने, दुखिया न दीठा कोय ॥

५. जीव दया पाली सही, पाली सही छ काय।
वस्ता घरनो पाहुणो, मीठा भोजन खाय ॥

६. जीव दया पाली नही, पाली नहीं छ काय।
सूना घरनो पाहुणो, जिम आयो तिम जाय ॥

७. रत्न पड्युं छे बाजारमां, रह्यो गरद लिपटाय।
मूरख जाणे काकरो, चतुरां लियो उठाय ॥

८. चौहटा केरा बजारमां, लांबा पान खिजूर।
चढ़े सो चाखे प्रेम रस, पड़े सो चकना चूर ॥

९. ए शीखामण सांची कही, सर्व ने हितकार।
कांइक दया करुणा राखजो, थांने साभल्या नुं परिमाण ॥

१०. खरो मारग वीतरागनो, सूक्ष्म जेहना भेद।
शाणा थईने श्रद्धजो, मनमां राखि उमेद ॥

११. डिगाव्या डिगजो मती, निश्चल राखजो मन।
हिंसाथी रहेजो वेगला, कहेवाशो धन धन ॥

१२. ढील न कीजे धर्मनी, तप जंप लीजे लूट ।
जैसी सीसी काचकी, जाय पलकमों फूट ॥

१३. दुषम आरो पंचमो, निश्चल राखजो मन ।
थोड़ामां नफो घणो, जेम कूंडा मांही रतन ॥

१४. साधु चन्दन बावना, शीतल जांको अंग ।
लहर उतारें भुजंग की, देवें ज्ञानको रंग ॥

१५. साधु बड़े परमारथी, मोटो जिनको मन ।
भर भर मुष्टी देत है, धर्म रुपियो धन ॥

१६. हलु करमी जीवने, रुचे ए उपदेश ।
खरो मारग वीतरागनो, जेमां कूड़ नहीं लवलेश ॥

(६३)

१. दया सुखां री बेलडी, दया सुखां री खान ।
अनन्त जीव मुगते गया, दया तणां फल जान ॥

२. हिंसा दुःखां री बेलड़ी, हिंसा दुःखां री खान ।
अनन्ता जीव नरके गया, हिंसा तणां फल जान ॥

३. जिम सुणो तिम ही कहो, तो पहुंचो निर्वाण ।
कइ एक हिरदे राखजो, थांने सुण्यांरो परमाण ॥

४. साधु भाव समुचे कह्या, मत कोई लीजो ताण ।
कइ एक हिरदे राखजो, थांने सांभलियां रो परमाण ॥

५. चेतो रे भवि प्राणियां, यो ससार असार ।
थिर कोई दीसे नही, धन, जोवन, परिवार ॥

६. धर्म करो तमे प्राणियां, धर्म थकी सुख होय ।
धर्म करंतो जीव ने, दुखिया न दीठा कोय ॥

७. धर्म करत ससार-सुख, धर्म करत निर्वाण ।
धर्मपंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ॥

८. जहां दया तहां धर्म है, जहां लोभ तहां पाप ।
जहां क्रोध तहां काल है, जहां क्षमा तहां आप ॥

९. क्षमा तुल्य कोउ तप नहीं, सुख सन्तोष समान ।
नहिं तृष्णा सम व्याधि हूं, धर्म दया सम जान ॥

१०. दु.ख मे सुमरण सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमरण करे, दुःख काहे को होय ॥

(९४)

दुनिया दुःखकारी तूं छोड़ सके तो छोड़ ॥टेर॥

१. पाप अठारह करना पड़ता पाप कर्म भी बढ़ता जाता ।
करम बन्ध की ठोड़ दुनिया दुःखकारी—तूं०

२. पेट पापीयो खूब सतावे देश देशावर में भटकावे ।
करनी दौडा दौड़-दुनियां दुःखकारी—तूं०

३. कोई के घर मे पुत्र कंस-सा कोई के घर नार कर्कशा ।
होती माथा फोड़-दुनियां दुःखकारी—तूं०

४. कोई के घर सासु लडती, नणन्द भोजाई झगड़ा करती ।
बोले कड़वा बोल-दुनियां दु.खकारी—तूं

५. घर में बेटा पोता पोती, दादी रसोई न्यारी करती ।
दुःख सूं कांपे हाड़-दुनियां दुःखकारी—तूं०

६. कोई के घर मे नौ दस बेटा, परण्या न्यारा हो गया मोटा ।
बूढो कमावे दौड़, दुनियां दुःखकारी—तूं०

७. लड़की मोटी वर नही मिलियो कोई कहवे वर खोटो मिलियो ।
गयो दिशावर छोड़-दुनियां दुःखकारी—तूं०

८. घणी बेटिया दुःखड़ो मोटो, इज्जत राखनी धन को टोटो ।
पुत्र मर्यो दिल तोड़, दुनियां दुःखकारी—तूं०

९. मनको चायो कुछ नही होवे, जो नही चावे वो झट होवे ।
या जग मे मोटी खोड़-दुनिया दुःखकारी—तूं०

१०. तन मे मन मे लगी बिमारी, रोगशोक से दुखि यों भारी ।
जीव झुरे चहूं ओर, दुनिया दुःखकारी—तूं०

११. जन्म मरण रा दुःख अनन्ता, दुखड़ा जैसा सुई चुभता ।
साड़ा तीन करोड़-दुनियां दुःखकारी—तूं०

१२. गर्भावास मे उन्धो लटक्यो, नौ महिना मल मूत्र मे लिपट्यो ।
पढ़ियो थो अग सिकोड, दुनिया दु.खकारी—तूं०

१३. नरक गति का दुःख अनन्ता, छेदन भेदन खूब करन्ता ।
सिला पर देत पछाड़-दुनिया दु.खकारी—तूं०

१४. तिर्यन्च गति का दुःख अपारा मरता, डुलाता भागे विचारा ।
दुःख सुं पाड़े राड़-दुनियां दुःखकारी—तूं०

१५. जो सुख चाहो दुनियां छोड़ो, संयम से तुम नाता जोडो ।
पाप कर्म सब छोड़-दुनिया दुःखकारी—तूं०

(९५)

नर नारायण बन जावेगा, जो आत्म ज्योति जगावेगा ।।टेर।।

१. पापो के बन्धन टूटेंगे, विषयों के नाते छूटेंगे ।
जो सोया सिंह जगावेगा, नर नारायण०

२. घट में बैठा इक ईश्वर है, जाने माने ज्ञानेश्वर हैं ।
सब जन्म मरण मिट जावेगा, नर नारायण०

३. बादल के पीछे दिनकर है, कर्मों के पीछे ईश्वर है ।
जो सर्वही ज्योति जगायेगा, नर नारायण०

४. गुरु के चरणो में जाकर के, श्रद्धा के कुसुम चढा करके ।
'मुनि कुमुद' जो आनन्द पावेगा, नर नारायण बन जावेगा ॥

(९६)

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार ।
क्या जानूं कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार—ध्रु०

१. बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, चलत न लागे वार ।
बिरछके ज्यों पात टूटे, लागे नहीं पुनि डार—नहिं०

२. भवसागर अति जोर कहिये विषम श्रोखी धार ।
सुरतका नर बांधे बेड़ा वेगि उतरे पार—नहिं०

३. साधु सन्तां ते महंतां चलत करत पुकार ।
दासी 'मीरां' लाल गिरिधर जीवना दिन चार—नहिं०

(९७)

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा, सत्यवचन क्यों छोड़ दिया ?—ध्रु०

१. झूठे जग में दिल ललचा कर, असल वतन क्यों छोड़ दिया ?
कौड़ी को तो खूब सम्हाला, लाल रतन क्यों छोड़ दिया ?

२. जिहिं सुमिरन ते अति सुख पावे, सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?
'खालस' इक भगवान भरोसे, तन, मन, धन क्यों न छोड़ दिया ?

(९८)

१. प्रथम कषाय वश पड़्यो है जगत जीव ।
अनन्तानुबन्धी चौकड़ी मे उमर गमाई है ॥

२. क्रोध है पत्थर लीक, मान है वज्र थंभ ।
मुड़यो न मुड़त जाकी ऐसी करड़ाई है ॥

३. माया है बांस केरी जड, लोभ है किरमची रंग ।
धोयो न धोवत जाकी, ऐसी छवि छाई है ॥

४. मरि जावे नरक घोर, ताकूं नही और ठौर ।
ऐसे दुष्ट जीव जेहने समकित न पाई है ॥

५. जासुं आगे चौकडी को नाम है अप्रत्याख्यान ।
जामे जीव वर्ष एक, केरी स्थिति पाई है ॥

६. क्रोध, मान, माया, लोभ जामे जीव रह्यो खोभ ।
आदि केरी चौकड़ी सुं अति हलकाई है ॥

७. क्रोध है तालाब की लीक, मान दात केरो थंभ ।
माया मीढा सींग सम, एवी दुःख दाई है ॥

८. लोभ है मोरी केरो रंग ताको नही होत भंग ।
मरीने तिर्यन्च होय, शुद्ध वृत्ति नही आई है ॥

९. प्रत्याख्यानी चौकड़ी मे, बस्यो है, चेतन राय ।
जीव जीहा चार मास, केरी स्थिति पाई है ॥

१०. क्रोध है बालू की लीक, मान वेंत केरो थभ ।
पिछली से कछु कम ज्ञानी बतलाई है ॥

११. माया वैल केरो मूत, समय की नही कूत ।
धर्म सेती राखे हेत, श्रावक वृत्ति पाई है ॥

१२. लोभ है खंजन (गाडा) को रंग, तासु जीव राखे संग ।
तिर्यन्च देह छांड़ि जीव मनुष्य देह पाई है ॥

१३. संज्वलन को क्रोध जैसो, पाणी केरी लीक जान ।
आगे होय काढत है, पाछे ही मिटाई है ॥

१४. मेण थंभ मान कह्यो, धूप लागी गली गयो ।
ताकी मास केरी थिती पाई है ॥

१५. माया तागा केरो बल, ऐसो जीव करे छल ।
केवल की हाण करे, साधु विरती ग्राई है ॥

१६. लोभ है हलद रंग, धोयां सेती होय भंग ।
मोक्ष नही जासी जीव, देवगति पाई है ॥

(६६)

१. प्रभु ! मोरे अवगुण चित न धरो ।
सम-दरशी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो ॥

२. इक नदिया इक नाड़ कहावत मैलो ही नीर भर्यो ।
जब मिल करके इक बरन भये सुरसरि नाम पर्यो ॥

३. इक लोहा पूजामें राखत, इक घर बधिक पर्यो ।
पारस गुण अवगुण नहि चितवत, कंचन करत खरो ॥

४. यह माया भ्रम-जाल कहावत 'सूरदास' सगरो ।
अबकी बेर मोहि पार उतारो, नहि प्रण जात टरो ।

(१००)

पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो ॥टेर॥

१. वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ।
जनम जनमकी पूंजी पाई, जगमें सभी खोवायो ॥

२. खरचै न खुटै, वाको चोर न लूटै, दिन दिन बढ़त सवायो ।
सत की नाव, खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो ॥

३. मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो ।

(१०१)

१. बालो पांखा बाहिर आयो, माता बेण सुणावे यूं ।
म्हारी कोख सराहिजे बाला, मैं थने सखरी घूंटी दूं—माता०

२. तेज कटारी नाड़ो मोड्यो, नाड़ो मोड़त बोली यूं ।
बैर्यांरी फौजां मे जाईने, सत्य विजय कर आइजे तूं—माता०

३. मेड़ी चढ़कर थाल बजायो, थाल बजावत बोली यूं ।
चार खूंट चौखण्ड रे बाला, नोपतड़ी घमकाइजे तूं—माता०

४. कुए पूजकर फलसे आई, फलसे बढ़तां बोली यूं ।
फलसा में ढोला रे ढमके आरतड़ी करवाइजे तूं—माता०

५. गोदयां सूतो बालो चूंखे माता बोल सुणावे यूं ।
धोला दूध में कायरता रो कालो दाग न लगाइजे तूं—माता०

६. बालो मां छाती से चेप्यो छाती चेपत बोली यूं ।
दीन दुखी असहाय जणां ने, छाती से चिपकाइजे तूं—माता०

७. बालो मांय भुजा पर लीन्हो, भार वहन्ती बोली यूं ।
धरती मां को भार हटाइजे, मत ना भार बढाइजे तूं—माता०

८. सोहन पालने बालो झूले, झोटत झोटत बोली यूं ।
इतनी बार हिलाइजे धरती, मैं थंने जितरा झोटा दूं—माता०

९. उड़न खटोले बालो सूतो, माता बोल सुणावे यूं ।
बैर्यांरी चतुरंगणी सेना, गाढ़ी नीद सुलाइजे तूं—माता०

(१०२)

१. बीत गये दिन भजन विना रे ।।ध्रु०।।
बाल-अवस्था खेल गंवाई, जब जोबन तब मान घना रे ।

२. लाहे कारन मूल गंवायो, अजहुं न गई मनकी तृस्ना रे ।।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, पार उतर गये सन्त जना रे ।

(१०३)

भजमन भक्तियुक्त भगवान, भरोसा क्या जिन्दगानी का ।
क्या जिन्दगानी का, भरोसा क्या जिन्दगानी का ।।टेर।।

१. चंचल अमल कमल दल ऊपर, ज्यों कण पानी का।
जान तरल त्यों तन क्षण भंगुर, जग में प्राणी का—भ०

२. उदय अस्त लौं राज हुवा था, पति इन्द्राणी का।
बना तद्यपि रहा लोभ, तोय हा, कौड़ी कानी का—भ०

३. शरद जलद बुदबुद सम जाहिर, जोर जवानी का।
मत कर गर्व गुमान, मान कहना गुरु ज्ञानी का—भ०

४. या जग मे कहो कौन दैत्य, दशमुख की सानी का।
बता पता है कहां, उसी रावण अभिमानी का—भ०

५. है दुर्गति दातार प्रेम, दूजी दिल-जानी का।
को नही पाया क्लेश, प्रेमकर त्रिया विरानी का—भ०

६. क्या विश्वास श्वास का पुनि, इस दुनिया फानी का।
लेले संबल संग, नही घर आगे नानी का—भ०

७. जिनधर्म का श्रीसंघ रसिक है, श्री जिनवाणी का।
'माधव मुनि' कहे कथन मान मन सुमति सयानी का—भ०

(१०४)

१. भावना दिन रात मेरी सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, प्रचार घर-घर द्वार हो॥

२. शान्ति अरु आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीरवाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥

३. रोग अरु भय शोक होवे, दूर सब परमात्मा।
कर सके कल्याण 'ज्योति', सब जगत की आत्मा॥

४. गुरुजनों के चरणों में, दृढ़ प्रीति अरु उल्लास हो।
काम अरु क्रोधादि दुष्टों, का सर्व संहार हो॥

५. ज्ञान अरु विज्ञान का, सब विश्व मे प्रचार हो।
सब जगत् के प्राणियों का, धर्म मे संचार हो ॥

६. आचार्य देवो के विचारो, का जगत् मे मान हो।
'दास देवी' को गुरु की शान पर अभिमान हो ॥

(१०५)

भेष धर यूं ही जनम गमायो।
लच्छन स्याल, स्वांग धर सिंह को, खेत लोकां को खायो ॥टेर॥

१. कर कर कपट निपट चतुराई, आसण दृढ जमायो,
अन्तर भोग, योग की बतियां, बग-ध्यांनी छल छायो—भेष०

२. कर नर नार निपट निज रागी, दया धर्म मुख गायो,
सावज्ज-धर्म सपाप सरूपी, जग सघलो बहकायो—भेष०

३. वस्त्र—पात्र—आहार—थानक मे, सबलो दोष लगायो,
सन्त दशा बिन सन्त कहायो, ओ कांई कर्म कमायो—भेष०

४. हाथ सुमरणी, हिये कतरणी, लट पट होठ हिलायो,
जप तप सयम आतम गुण बिन, गाडर सीस मुंडायो—भेष०

५ आगम वयण अनुपम सुणने, दयाधर्म दिल भायो,
'रतन चन्द' आनन्द भयो अब, आतम राम रमायो—भेष०

(१०६)

मनवा माटी की या काया—आखिर माटी मे मिल जासी।

१. हिंसा बढा कर, पाप कमाकर—जोडे धन की राशि,
काना की कुड़क्यां तक बेटो—गांठ बाध ले आसी—मनवा०

२. फूलो की शैया भी चुभती—वा देह मित्र उठासी,
नीचे लकडी ऊपर लकडी—चुन चुन चिता बणासी—मनवा०

३. जिण रे मोह में हुवो दीवाणो–वे या प्रीत निभासी,
प्राण प्यारो बेटो ही पहले–थांरे आग लगासी—मनवा०

४. फुंक गया, कई फुंक रया है–फेर कई फुंक जासी,
पण या भी राखजे याद एक दिन–तूं भी अठे ही आसी—मनवा०

५. माटी बण माटी में मिलग्यो–फेर बण्यो बणतो जासी,
जब तक है माटी सुं ममता–मिटे न यम की फांसी—मनवा०

६. काला का तो धोला होग्या–फेर क्यूं करावे हांसी,
जनम मरण का बन्ध बढ्या तो–जनम जनम पछतासी—मनवा०

७ काल अनन्ता चक्कर खायो–फिर्यो लाख चोरासी,
पण अब के तो बणजा 'जीतमल'–अजर-अमर-अविनासी–मनवा०

(१०७)

मानवता की भव्य भूमि से बोल गये भगवान।
मानव मानव एक समान ।।टेर।।
यही शान्ति का राज मार्ग है महावीर फरमान–मानव०

१. विषम वर्ग की आग बुझाना, अब न ज्यादा लोभ बढ़ाना,
गिरा पड़ोसी दौड़ उठाना, पढ़ना समता पाठ पढ़ाना।
तभी विश्व प्रेमके होंगे सफल सभी अरमान–मानव०

२. भूखा पेट और फटी लंगोटी मांगे तुमसे कपड़ा रोटी,
बोलो कितनी मांग है छोटी आज तुम्हारी खरी कसौटी।
दुखियाओ का करुणा क्रन्दन गाता क्रान्ति गान–मानव०

३. अब नही उल्टी हवा बहेगी, दुःखी आत्मा साफ कहेगी,
भूखी जनता अब ना सहेगी धन और धरती बटके रहेगी।
खूनी क्रान्तियां रोकन हो तो देदो झटपट दान–मानव०

४. धरती किसकी बनी रही है, किसी एक के बंधी नही है,
माया बादल छाया कही है, बोलो, किसके साथ गई है।
धन धरती का गर्व न करना यह तो है महमान–मानव०

५. प्राणी मात्र से प्रेम बढाग्रो मानवता के फूल खिलाओ,
अपनी अच्छी याद बसाओ सुख चाहो तो सुख पहुंचाग्रो।
'अशोक मुनि' मानव जीवन से कर लो परम उत्थान–मानव०

(१०८)

१. मानव तन को पायो हो हो करणी कर लो रे।
लक्ष चौरासी मे भटकत आयो,
चिन्तामणि सम नरतन पायो, इसको सार्थक कर लो–हो हो०

२. दुर्व्यसनो मे व्यर्थ ही फसकर,
प्राप्त समय को यों ही गंवाकर पुण्य कलश मत ढोलो–हो हो०

३. कौन हूं मैं अरु कहां से आया,
ऐसा विचार जरा कर लो धर्म ध्यान दिल धर लो–हो हो०

४. सब स्वारथ की ही है माया,
इसमे दिल को क्यो उलझाया जिन चरणन मन कर लो–हो हो०

५. 'श्रेयस्कर' की यही कामना,
अपना कर्त्तव्य पालन करना, पाप कर्म सब टालो–हो हो०

(१०९)

१. जिस ने राग-द्वेप कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥

२. बुद्ध, वीर, जिन, हरिहर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी मे लीन रहो॥

३. विषयों की आशा नही जिनको, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशि दिन तत्पर रहते हैं॥

४. स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दु:ख समूह को हरते है॥

५. रहे सदा सत्संग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे।
उन्ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥

६. नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नही कहा करूं।
पर धन वनिता पर न लुभाऊ, सन्तोषामृत पिया करूं॥

७. अहंकार का भाव न रक्खूं, नही किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं॥

८. रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं॥

९. मैत्री-भाव जगत में मेरा, सब जीवो से नित्य रहे।
दीन-दु:खी जीवो पर मेरे, उर से करुणा-स्रोत बहे॥

१०. दुर्जन-क्रूर कुमार्ग-रतो पर, क्षोभ नही मुझको आवे।
साम्य-भाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

११. गुणी जनों को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, कर के यह मन सुख पावे॥

१२. होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥

१३. कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखो वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे॥

१४. अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥

१५. हो कर सुख मे मग्न न फूलें, दु:ख में कभी न घबरावें।
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नही भय खावें॥

१६. रहे अडोल अकंप निरंतर, यह मन दृढतर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग मे, सहन-शीलता दिखलावें॥

१७. सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर, पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥

१८. घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावें॥

१९. ईति भीति व्यापे नही जग मे, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥

२० रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत मे, फैल सर्व-हित किया करे॥

२१. फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नही, कोई मुख से कहा करे॥

२२. बन कर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नतिरत रहा करें।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दु:ख संकट सहा करे।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, निजानन्द मे रमा करें॥

(११०)

मेरे अन्तर भयो प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश ॥टेर॥

१. काल अनन्त रुला भववन में बंधा मोह के पाश,
काम क्रोध मद लोभ भाव से बना जगत का दास—मेरे०

२. तन धन परिजन सब ही पर हैं, परकी निवारो आश,
पुद्गल को अपना कर मैंने किया स्वत्व का नाश—मेरे०

३. रोग शोक का नही मुझको रे! जरा मात्र भी त्रास,
सदा शान्तिमय मैं हूं मेरा, अचल रूप है खास—मेरे०

४. इस जग की ममता ने मुझको डाला गर्भावास,
अस्थि मांस मय अशुचि देह में मेरा हुआ निवास—मेरे०
५. ममता से संताप उठाया, आज हुआ विश्वास,
भेद ज्ञान की पैनी धार से काट दिया वह पाश—मेरे०
६. मोह मिथ्यात्व की गांठ गले तब हो विज्ञान प्रकाश,
'गजेन्द्र' देखे अलख रूप को फिर न किसी की आश—मेरे०

(१११)

मैं हूं उस नगरी का भूप, जहां नहीं होती छाया धूप।
१. तारा-मण्डल की न गति है, जहां न पहुंचे सूर।
जग मग ज्योति सदा जगती है, दीसे यह जग कूप—मैं०
२. मैं नही श्याम-गौर वर्णी हूं, मैं न सुरूप कुरूप।
नाहिं लम्बा-बौना भी मै हूं, मेरा अविचल रूप—मैं०
३. अस्थि मांस मज्जा नहिं मेरे, मैं नहिं धातु रूप।
हाथ पैर शिर आदि अंग में, मेरा नही स्वरूप—मैं०
४. दृश्य जगत पुद्गल की माया, मेरा चेतन रूप।
पूरण गलन स्वभाव धरे तन, मेरा अव्यय रूप—मैं०
५. श्रद्धा नगरी वास हमारा, चिन्मय कोष अनूप।
निराबाध सुख में झूलूं मैं, सद् चिद् आनन्द रूप—मैं०
६. शक्ति का भण्डार भरा है, अमल अचल मम रूप।
मेरी शक्ति के सम्मुख नहिं, देख सके अरि भूप—मैं०
७. मैं न किसी से दबने वाला, रोग न मेरा रूप।
'गजेन्द्र' निजपद को पहचानो, सो भूपों का भूप—मैं०

(११२)

१. यदि भला किसी का कर न सको तो बुरा किसी का मत करना।
अमृत न पिलाने को घर में तो जहर पिलाते भी डरना।।

२. यदि सत्य मधुर न बोल सको तो झूठ कठिन भी मत बोलो।
यदि मौन रखो सबसे अच्छा, कम से कम विष तो मत घोलो ।।

३. बोलो तो ! पहले तुम तोलो फिर मुख ताल खोला करना।
यदि घर न किसी का बांध सको तो झौपड़िया न जला देना ।।

४. यदि मरहम पट्टी कर न सको तो खार नमक न लगा देना।
यदि दीपक ! बनकर जल न सको तो अन्धकार भी मत करना ।।

५. यदि फूल नही बन सकते तो काटे बन कर न बिखर जाना।
मानव बनकर सहला न सको तो दिल भी किसी का दुखाना ना ।।

६. यदि देव नही बन सकते तो दानव बन कर भी मत मरना।
यदि सदाचार अपना न सको तो पापो मे मत पग धरना ।।

७. किन्तु न कभी शैतान बनो और कभी न तुम हैवान बनो।
'मुनि पुष्प' अगर भगवान नही तो कम से कम इन्सान बनो ।।

(११३)

यह पर्व पर्यूषण आया, सब जग मे आनन्द छाया रे ।।टेर।।

१. यह विषय कषाय घटाने, यह आतम गुण विकसाने।
जिनवाणी का बल लाया रे—यह०

२. यह जीव रुले चहु गति मे, ये पाप करण की रति मे।
निज गुण सम्पद को खोया रे—यह०

३. तुम छोड़ प्रमाद मनाओ, नित धर्म ध्यान रम जाओ।
लो भव भव दुःख मिटाओ रे—यह०

४. तप जप से कर्म खपाओ, दे दान द्रव्य फल पाओ।
ममता त्यागो सुख पाओ रेय—ह०

५. मूरख नर जन्म गमावे, निन्दा विकथा मन भावे।
इनसे ही गोता खाया रे—यह०

६. जो दान शील अराधें, तप द्वादश भेदे साधें।
शुद्ध मन जीवन सरसाया रे—यह०

७. बेला तेला और अठायां, संवर पौषध करे मन भाया।
शुद्ध पालो शील सवाया रे—यह०

८. तुम विषय कषाय घटाओ, मन मलिन भाव मत लाओ।
निन्दा विकथा तज माया रे—यह०

९. कोई आलस में दिन खोवे, सतरंज तास रमे या सोवे।
पिक्चर में समय गमाया रे—यह०

१०. संयम की शिक्षा लेना, जीवों की जयणां करना।
जो जैन धर्म तुम पाया रे—यह०

११. जन जन का मन हरषाया, बालक गण भी हुलसाया।
आत्म शुद्धि हित आया रे—यह०

१२. समता से मन को जोड़ो, ममता का वन्धन तोड़ो।
है सार ज्ञान का पाया रे—यह०

१३. सुरपति भी स्वर्ग से आवें, हर्षित हो जिन गुण गावें।
जग जन को अभय दिलाया रे—यह०

१४. 'गज मुनि' निज मन समझावे, यह सोई शक्ति जगावे।
अनुभव रस पान कराया रे—यह०

(११४)

रहना नहिं देस बिराना है ।।ध्रु०।।

१. यह संसार कागदकी पुड़िया, बूंद पड़े घुलि जाना है।
यह संसार कांटे की बाड़ी, उलझ उलझ मरि जाना है ।।

२. यह संसार झाड़ औ झांखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ।।

(११५)

राम कहो, रहमान कहो कोऊ, कान्ह कहो, महादेव री ।
पारसनाथ कहो, कोऊ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ।।ध्रु०।।

१. भाजन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री ।
तैसे खंड कल्पनारोपित, आप अखंड सरूप री ।।

२. निजपद रमे राम सो कहिये, रहम करे रहिमान री ।
कर्षे करम कान्ह सो कहिये, महादेव निर्वाण री ।।

३. परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री ।
इह विधि साधो आप 'आनन्दघन', चेतनमय निकर्म री ।।

(११६)

१. रे चेतन पोते तूं पापी, पर ना छिद्र चितारे क्यूं ।
निरमल होय कर्म कर्दम सूं, निज गुण अंबु नितारे तूं ।।

२. सम्यक्दृष्टि नाम धरावे, सेवे पाप अठारे तूं ।
नरक निगोद थकी किम छूटे, जो पर हियो न ठारे तूं ।।

३. जिम-तिम करने शोभा अपणी, या जग माहि दिखावे तूं ।
प्रकट कहाय धर्म को धोरी, अन्तर भर्यो विकारे तूं ।।

४. परमेश्वर साखी घट-घट को, जांकी शरण न धारे तूं ।
कुंभीपाक नरक मे पड़सी, अन्तर सल न निवारे तूं ।।

५. पर निन्दा अघ पिंड भरीजे, आगमसाख संभारे तूं ।
'विनयचन्द' कर आतम निन्दा, भव-भव दुष्कृत टारे तूं ।।

(११७)

रे मन ! भज-मन दीनदयाल ।
जाके नाम लेत इक छिन में, कटें कोटि अघजाल ।।टेर।।

१. परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी, देखे होत निहाल ।
सुमरन करत परम सुख पावत, सेवत भाजे काल ।।

२. इन्द फनिंद चक्कधर गावें, जाको नाम रसाल ।
जाको नाम ज्ञान परगासै, नाशै मिथ्या-जाल ।।

३. जाके नाम समान नही कछु ऊरध मध्य पाताल ।
सोई नाम जपो नित 'द्यानत', छोड़ विषय विकराल ।।

(११८)

१. रे मन ! मूरख जनम गंवायो ।
करि अभिमान विषय-रस राच्यो श्याम-सरन नहिं आयो ।।

२. यह संसार फूल सेमर को सुन्दर देखि लुभायो ।
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयो ।।

३. कहा भयो अबके मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो ।
कहत 'सूर' भगवंत भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछितायो ।।

(११९)

रोज शाम को जीवन खाता खोलो करो विचार-।
श्रावक यह तेरा आचार ।
मोक्ष मार्ग मे चरण बढ़ाये, कितने दो या चार ?
करले बारम्बार विचार ।

१. जो शुभ निश्चय किये सवेरे, कितने पूर्ण हुए वे तेरे ?
विघ्न देखकर घबराया या, डटकर रहा तैयार—करले०

२. कितने कार्य किये पुण्यों के ? कितने कार्य किये पापों के ?
देख तोलकर पुण्य-पाप को किधर है कितना भार—करले०

३. कितने अवगुण त्यागे तू ने ? कितने सद्‌गुण धारे तू ने ?
तूं तूं मैं मैं व्यर्थ लगाकर, अथवा की तकरार—करले०

४. कितना संग किया गुणियोंका, कितना लाभ लिया मुनियोंका ?
या खेल तमाशे ठट्टे हंसी में, मस्त रहा बेकार—करले०

५. मानव जीवन सफल बनाले, इस नर तन से लाभ उठाले ।
लक्ष चौरासी योनि मे यह, मिले न बारम्बार—करले०

६. संवर करले तप ग्रादर ले, पुण्य कमा ले पाप खपाले ।
केवल कहते 'पारस' सुन रे, यह जीवन दिन चार—करले०

(१२०)

राष्ट्रगीत

वन्दे मातरम् ।
सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां शस्य-श्यामलां मातरम् ।
शुभ्र-ज्योत्स्नां पुलकित-यामिनी फुल्ल-कुसुमित-द्रुम-दल-शोभिनीम् ।।
सुहासिनीं सुमधुर-भाषिणी सुखदां वरदां मातरम्—वन्दे मातरम् ।

जनगणमन-ग्रधिनायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।
पंजाब सिंधु गुजरात मराठा, द्राविड उत्कल बंगा ।
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा, उच्छल-जलधि तरंगा ।
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ ग्राशिस मागे—गाये तव जय-गाथा ।
जनगण-मंगलदायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।
जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

(१२१)

वाट घणो दिन थोड़ो, बटाऊ वीरा ! वाट घणो दिन थोड़ो ।
घर रयो दूर सूरज घर हाल्यो, दौड़ सको तो दौड़ो ।
निरभे होय नगर जा पहुंचो, ग्रध बिच पड़सी थाने फोड़ो ।।
होय हुसियार हिम्मत मत हारो, हांक घणेरो घोडो ।
'ग्रोघड़' कहे रह गुरों रे सरणे, मारग लख्यो मोड़ो ।।

(१२२)

१. वीर-हिमालय तें निकसी, गुरु गौतम के मुख-कुंड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर हरी है।।

२. ज्ञान-पयोदधि मांहि रली, बहु भंग तरंगन तें उछरी है।
ता शुचि शारद-गग नदी प्रति, मैं अंजली निज शीश घरी है।।

३. ज्ञान-सुनीर भरी सरिता, सुरघेनु प्रमोद सुखीर निधानी।
कर्मज व्याधि हरंत सुधा, अघ-मैल नसन्त शिवाकर मानी।।

४. वीर जिनागम ज्योति बड़ी, सुरवृक्ष समान महा सुखदानी।
लोक अलोक प्रकाश भयो, मुनिराज वखानत है जिनवानी।।

५. शोभित देव विषे मघवा, उडुवृन्द विषे शशि मंगलकारी।
भूप समूह विषे वलि चक्र-पति प्रगटे बल केशव भारी।।

६. नागन मे घरणेन्द्र बड़ो, चमरेन्द्र असुरन में अधिकारी।
त्यों जिनशासन संघ विषै, मुनिराज दिपै श्रुतज्ञान भंडारी।।

(१२३)

१. वृक्षनसे मति ले, मन तूं वृक्षनसे मति ले,
काटे वांको क्रोध न करहीं।
सिंचत न करहि सनेह—मन तूं०

२. घूप सहत अपने सिर ऊपर, औरको छांह करेत।
जो वाहीको पत्थर चलावे, ताहीको फल देत—मन तूं०

३. धन्य धन्य ये पर-उपकारी, वृथा मनुजकी देह।
'सूरदास' प्रभु कहं लगि बरनौं, हरिजन की मति ले—मन तूं०

(१२४)

वैष्णव (श्रावक) जन तो तेने कहीए, जे पीड़ पराई जाणे रे,
पर दुखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे—ध्रु०

१. सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन्य धन्य जननी तेनी रे–वैष्णव०

२. समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे–वैष्णव०

३. मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे,
रामनाम शुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे–वैष्णव०

४. अणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे 'नरसैयो' तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे–वैष्णव०

(१२५)

१. श्री जिनेश्वर देव की दृढ भक्ति मेरे पास हो।
जिन प्ररूपित तत्व पर, मेरा अटल विश्वास हो॥

२. त्याग मय जीवन बनाया त्याग कर ससार को।
ऐसे गुरुओ की चरण सेवा का नित अभ्यास हो॥

३. मद्य मांस शिकार जुवा, चोरी पर नारी विषय।
स्वप्न मे भी इनके सेवन की नही अभिलाष हो॥

४. सत्य सेवा तप क्षमा, सन्तोष उच्च विचार हो।
व्याप्त इस जीवन के उपवन मे सदैव सुवास हो॥

५ धर्म मय आजीविका हो मधुरतम व्यवहार हो।
आचरण की शुद्धता से, पूर्ण आत्म विकास हो॥

६. वीतरागो का बताया मार्ग ही सन्मार्ग हो।
इसपे चलने मे लगा प्रत्येक श्वासोच्छ्वास हो॥

(१२६)

१. शिवपुरपथ-परिचायक जय हे, सन्मति युग-निर्माता !
गगा कल-कल स्वर मे गाती, तव-गुण-गौरव-गाथा।

सुर-नर-किन्नर, तव पद-युग में, नित नत करते माथा ।
सब तेरे गुण गाते, सादर शीश झुकाते ॥
हे सद्बुद्धि प्रदाता !
दु:ख-हारक, सुख-दायक जय हे, सन्मति युग-निर्माता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे ॥

२. मंगल-कारक, दया-प्रचारक, खग-पशु-नर-उपकारी ।
भविजन-तारक, कर्म-विदारक, सब जग तव आभारी ॥
जब तक रवि शशि तारे, तब तक गीत तुम्हारे ।
विश्व रहेगा गाता, चिर सुख शान्ति-विधायक जय हे ॥
सन्मति युग-निर्माता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे ॥

३. भ्रातृ-भावना भुला परस्पर, लड़ते है जो प्राणी ।
उनके उर मे प्रेम बसाती, तेरी मीठी वाणी ॥
सब मे करुणा जागे, जग से हिंसा भागे ।
पावें सब सुख साता !
हे दुर्जय, दु:ख-त्रायक जय हे, सन्मति युग-निर्माता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे ॥

(१२७)

१. शूर संग्रामको देख भागै नही, देख भागै सोई शूर नाही ।
काम औ' क्रोध, मद, लोभसे जूझना, मंडा घमसान तहं खेत मांही ॥
२. शील औ' शौच, संतोप साही भये, नाम समसेर तहं खूब बाजे ।
कहै 'कवीर' कोई जूझि है शूरमा, कायरां भीड़ तहं तुरत भाजै ॥

(१२८)

१. षट्द्रव्य ज्यामें कह्यो भिन्न भिन्न आगम सुणत वखान ।
पंचास्तिकाया नव पदारथ, पांच भाख्या ज्ञान ॥

२. चारित्र तेरह कह्या जिनवर, ज्ञान दर्शन प्रधान ।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ।।

३. चौबीस तीर्थङ्कर लोक माही, तिरण तारण जहाज ।
नव बासु–नव प्रतिवासुदेवा, बारह चक्रवर्ती जाण ।।

४. बलदेव नव सब हुआ त्रेसठ, घणा गुणारी खान ।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ।।

५ चार देशना दिवी हो जिनवर, कियो पर उपकार ।
पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चार शिक्षा धार ।।

६. पाच संवर जिनेश भाख्या, दया धर्म प्रधान ।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ।।

७. और कहां लग करू जी वर्णन, तीन लोक परमाण ।
सुणत पाप विनाश जावे, पावे पद निरवाण ।।

८ देव विमाणिक माहे पदवी, कहीज पच परधान ।
जो शास्तर नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ।।

(१२६)

समझो चेतन जी ! अपना रूप, यो अवसर मत हारो ।।टेर।।

१. ज्ञान दर्शन मय रूप तिहारो, अस्थि मास मय देह न थारो ।
दूर करो अज्ञान, होवे घट उजियारो--समझो०

२. पोपट ज्यूं पिंजर वधायो, मोह कर्म वश स्वांग रचायो ।
रूप धरे है अनपार, अब तो करो किनारो–समझो०

३. तन धन के नहिं तुम हो स्वामी, ये सब पुद्गल पिंड है नामी ।
सद् चिद् गुण भण्डार, तू जग देखन हारो–समझो०

४. भटकत-भटकत नर तन पायो, पुण्य उदय सब योग सवायो ।
ज्ञान की जोति जगाय, भर्मतम दूर निवारो–समझो०

५. पुण्य पाप का तूं है कर्त्ता, सुख-दुःख का भी तूं है भोक्ता।
तूं ही छेदन हार, ज्ञान से तत्व विचारो–समझो०

६. कर्म काट कर मुक्ति मिलावे, चेतन निज पद को तब पावे।
मुक्ति के मारग चार, जानकर दिल में धारो–समझो०

७. सागर में जलधार समावे, त्यूं शिव पद मे ज्योति मिलावे।
होवे 'गज' उद्धार अचल है निज अधिकारो–समझो०

(१३०)

साधो मनका मान त्यागो।
काम क्रोध संगत दुर्जनकी, ताते अहनिस भागो ॥ध्रु०॥

१. सुख-दुःख दोनों सम करि जानैं, और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता, तिन जग तत्त्व पिछाना–साधो०

२. अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागे, खोजैं पद निरवाना।
जन 'नानक' यह खेल कठिन है, कोऊ गुरु-मुख जाना–साधो०

(१३१)

सुने री मैंने निर्वलके वल राम।
पिछली साख भरूं संतनकी अड़े संवारे काम ॥ध्रु०॥

१. जब लग गज वल अपनो बरत्यो नेक सर्‌यो नहिं काम।
निर्वल ह्वै वल राम पुकार्यो आये आधे नाम ॥

२. द्रुपद-सुता निर्वल भई ता दिन गहलाये निज धाम।
दुःशासनकी भुजा थकित भइ वसन रूप भये श्याम ॥

३. अप-वल तप-वल और बाहु-वल चौथा है वल दाम।
'सूर' किशोर कृपासे सब बल हारेको हरिनाम ॥

(१३२)

१. संग से पुष्प को चन्द्र मिले, अरु संग से लोहा स्वर्ण कहावे ।
संग से मूरख ज्ञानि बने, अरु संगसे शूद्र अमर-पद पावे ॥
२. संग से काष्ठ के लोह तरे, तन को सत्संग हि पार लगावे ।
संग से सन्त को स्वर्ग मिले, अरु संग कुसंग से नरक मे जावे ॥

(१३३)

१. सन्त समागम कीजे रे भवियां, सन्त समागम कीजे ।
दुष्कृत हरण चरण धर मस्तक, परम विनय सांचीजे—संत०
२. चन्द चकोर ज्यूं आनन निरखी, नयनामृत भरलीजे ।
सुख साधन की गिरा सुधा सम, उमग उमग रस पीजे—संत०
३. सूत्र अर्थ कुं स्वाति बूंद ज्युं, चातक जेम ग्रहीजे ।
पुद्गल रो परपंच समझ ने, आतम रूप लखीजे—संत०
४. किंचित् वित्त रे प्रापत हुयां, बदन कमल विकसीजे ।
अखय खजाना ज्ञान देत तसु, गुण निधि केम तजीजे—संत०
५. लोह अचेतन चुम्बक सगे, कहो केहवो बिलमीजे ।
तूं चेतन सेवे नहिं तारक, किसो उलंभो दीजे—संत०
६. परदेसी राजा गुरु भेटी, छोड़ मिथ्या धर्म भीजे ।
क्रोध कियो नहिं निज तिय पे ज्यों, समकित रंग रंगीजे—संत०
७. 'ज्येष्ठ' कहे निस्तार चहे तो, विषय कषाय तजीजे ।
सकट सकल टलें भव संचित, सिद्ध स्वरूप थईजे—संत०

(१३४)

१. हे प्रभो ! आनन्द दाता ! ज्ञान हमको दीजिये ।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये ॥

२. लीजिये हमको शरण में हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर व्रतधारी बनें॥

३. प्रेम से हम गुरुजनो की नित्य ही सेवा करें।
सत्य बोलें, झूठ त्यागें, मेल आपस मे करें॥

४. निंदा किसी की हम किसी से भूल कर भी ना करे।
धैर्य बुद्धि मन लगाकर वीर गुण गाया करें॥

५. हे सरस्वती मात ! हमको ज्ञान का भण्डार दो।
हम अबोधों के हृदय में आप अपना वास दो॥

६. ऐसा अनुग्रह औ कृपा हम पर करो परमातमा !
हो प्रजा शासक सभी ससार में धर्मात्मा॥

७. हे प्रभो ! यह प्रार्थना है, आपसे स्वीकृत करें।
सब सुखी संसार हो यह भाव रग-रग में भरे॥

(१३५)

१२ अणुव्रत

जैनागमों में जैन श्रावको के लिये १२ अणुव्रती होने का विधान है। संक्षेप मे इन १२ अणुव्रतो को निम्न रीति से प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी धारण करके प्रभु महावीर का सही अनुयायी एवं जैन धर्म का सच्चा आराधक बन सकता है। इन व्रतो सम्बन्धी विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचनात्मक जानकारी अपने धर्मगुरु एवं तत्वो के ज्ञाता से ली जा सकती है।

प्रथम अणुव्रत–स्थूल प्राणातिपात-विरमण—मैं सब निरपराधी दो-तीन-चार तथा पांच इन्द्रियो वाले त्रस जीवो का मन वचन काया से हनन करने एवं कराने का जीवन पर्यन्त त्याग करता हूं।

दूसरा अणुव्रत–स्थूल मृषावाद विरमण—मैं ऐसे मोटे झूठ बोलने एवं दूसरो से बुलवाने का भी मन-वचन-काया से जीवन पर्यन्त त्याग करता हूं,

जिससे संसार में निन्दा हो, अप्रतीति हो, किसी प्राणी को भारी हानि पहुँचे, कुल, जाति, समाज व देश को कलंक लगे एवं उनमे अशान्ति पैदा हो जैसे कन्या या वर सम्बन्धी, गाय-बैल आदि पशु-पक्षी सम्बन्धी, भूमि-भवन एव धन-सम्पत्ति सम्बन्धी, किसी की धरोहर दवा लेने सम्बन्धी, झूठी गवाही देने या जाली दस्तावेज बनाने सम्बन्धी इत्यादि इत्यादि ।

तीसरा अणुव्रत–स्थूल अदत्तादान विरमण—मै सब प्रकार की बडी चोरी, जिसके कारण राज्य दण्ड दे या कुल जाति समाज एव देश मे अपमान का एव अपयश का पात्र बनना पड़े, जैसे किसी के मकान अथवा दुकान मे, गोदाम मे अथवा कार्यालय आदि मे सेंध कर चोरी करना, गाठ खोलकर किसी वस्तु की चोरी करना, तिजोरी, आलमारी-मकान अथवा सन्दूक इत्यादि का ताला तोड़कर या स्वामी की बिना स्वीकृति के कुंजी से ताला खोलकर किसी वस्तु की चोरी करना, राह चलते या न चलते किसी को लूट लेना, किसी की गिरी हुई वस्तु को उठा लेना, या विना स्वामी की आज्ञा के किसी की कोई भी वस्तु ले लेना इत्यादि प्रकार की चोरी करने का अथवा दूसरों के द्वारा करवाने का जीवन-पर्यन्त मन, वचन, काया से त्याग करता हू ।

चौथा अणुव्रत–स्थूल मैथुन विरमण—मै गुरु अथवा पंचो की साक्षी से केवल स्व-पत्नी के साथ एक मास/वर्ष मे[1] ———दिनो से अधिक मैथुन सेवन का जीवन-पर्यन्त पच्चक्खाण करता हू एव देव-देवी सम्बन्धी काम-भोग सेवन करने एवं कराने का मन, वचन व काया से एव मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी काम-भोग काया से सेवन करने का जीवन-पर्यन्त त्याग करता हूं ।

(१ यहां अपनी शक्ति अनुसार जितने दिन रखने हो, रक्खे । जिन श्रावको ने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया हो वे इस व्रत को इस तरह से स्वीकार करे—"मैंने स्त्री/पुरुष सम्बन्धी मैथुन सेवन का पूर्ण रूप से पच्च-क्खाण जीवन-पर्यन्त के लिये ले लिया है । अब मैं उसे शुद्ध रूप से पालूंगा ।")

पांचवां अणुव्रत–परिग्रह का परिमाण—मैं समस्त लोक के द्रव्यों में से नौ प्रकार के द्रव्यों का उपभोग करने की जीवन-पर्यन्त एक करण तीन योग से (यानि मन, वचन व काया से) नीचे लिखे अनुसार मर्यादा करता हूं:-

१. **खुली जमीन** यानि खेत, बाग, बगीचा आदि——एकड़ से अधिक नही रक्खूंगा। २. **ढकी हुई जमीन** यानि घर, मकान, दुकान, बंगला, गोदाम इत्यादि के रूप में——संख्या/परिमाण से अधिक नहीं रक्खूंगा। ३. **चांदी** एवं इससे निर्मित जेवर आदि वस्तुएं——वजन से अधिक नहीं रक्खूंगा। ४. **सोना** एवं इससे निर्मित जेवर आदि वस्तुएं——वजन से अधिक नहीं रक्खूंगा। ५. **सोना चांदी से निर्मित** मोहर, गिन्नी, रुपया, अथवा किसी प्रकार का सिक्का एवं अनेक प्रकार के हीरा, माणक, मोती आदि रत्नादि एवं इनसे निर्मित वस्तुएं——वजन/परिमाण/नग से अधिक नहीं रक्खूंगा। ६. **सभी प्रकार के धान्य** एक वर्ष मे——वजन से अधिक नहीं रक्खूंगा। ७. **द्विपद** यानि नौकर, चाकर, दास, दासी अथवा दो पैरों वाले कोई भी प्राणी——संख्या से अधिक नहीं रक्खूंगा। ८. **चतुष्पद** यानि चार पैरों वाले गाय, भैंस, बैल, बकरी आदि पशु——संख्या से अधिक नही रक्खूंगा। ९. **कुप्य (कुविय) धातु** यानि सोना, चांदी से भिन्न अन्य धातुओं जैसे तांबा, पीतल, लोहा, जस्ता आदि से निर्मित वस्तुएं एवं अन्य गृहोपयोगी लकड़ी आदि से निर्मित पलंग, टेबुल, कुर्सी, चौकी, रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन आदि वस्तुएं एवं सूती, ऊनी, रेशमी एवं टेरीन आदि कपड़े एवं इनसे सिले वस्त्र एवं इनसे निर्मित सभी प्रकार की अन्य वस्तुएं आदि वर्ष भर में/अथवा जीवन भर में ——नग/मूल्य की से अधिक नहीं रक्खूंगा।

(नोट—ये उपरोक्त मर्यादाएं केवल घर खर्च अथवा स्व उपयोग के निमित्त से सम्बन्धित हैं। जो साधक/श्रावक इन वस्तुओं के व्यापार में लगे हुए हों अथवा लगना चाहते हों वे इन वस्तुओं की मर्यादा उस हिसाब से अपने व्यापार की सुविधाओं को देखते हुए कर लें। इसके लिये अपने धर्म गुरुओं

अथवा इस विषय के ज्ञाताओं से विस्तार से और भी सूक्ष्म जानकारी एवं परामर्श ले लेना उत्तम रहेगा ।)

छठा अणुव्रत-दिशा परिमाण—अपने निवास स्थान से जल, स्थल, आकाश मार्ग अथवा भूमिगत मार्ग से घरेलू कार्य पर्यटन अथवा व्यापारादि के निमित्त से यात्रा करनी पड़े तो पूर्व दिशा मे——,पश्चिम दिशा में——, दक्षिण दिशा मे——उत्तर दिशा मे——, ऊर्ध्व दिशा मे——, अधो दिशा मे——कोस/मील/किलो मीटर के उपरान्त जाने का जीवन-पर्यन्त एक करण तीन योग से त्याग करता हूं ।

सातवां अणुव्रत-भोगोपभोग परिमाण—जो वस्तु एक बार भोगने मे आती है उसे भोग्य वस्तु कहते है जैसे अन्न, जल, फल आदि एवं जो वस्तु अनेक बार भोगने मे आए उसे उपभोग्य वस्तु कहा जाता है जैसे वस्त्र, पात्र, आभूषण, मकान आदि । गृहस्थ जीवन इन दोनो प्रकार की वस्तुओ के उपभोग के बिना नही चलता । गृहस्थ इनका व्यापार भी करते है । ऐसी स्थिति मे पांचवें अणुव्रत मे निर्दिष्ट दिशा के अनुसार स्व जीवन निर्वाह के निमित्त मैं निम्न प्रकार की वस्तुएं जैसे.—१. **अंगोछा,** २. **दतौन,** मजन, पेस्ट आदि, ३. **स्नान में** काम आने वाले फल एव उनके चूर्ण आदि, जैसे–आवला, शीका काई आदि, ४. **मालिश** के योग्य तेल, ५. **उबटन** पीठी आदि, ६. **स्नान** के लिये जल की मात्रा, ७. **वस्त्र**-ऊनी, सूती, रेशमी, टेरीन आदि, सभी प्रकार के पहिनने, बिछाने, ओढ़ने के निमित्त, ८. **चन्दन,** इत्र, तेल विलेपन हेतु ९. **फूल** सभी प्रकार के, १०. **आभूषण,** ११ **धूप**–अगरबत्ती-कपूर आदि, १२. **पेय पदार्थ** दूध, चाय, शरबत, लेमन आदि सात्विक पदार्थ मात्र, १३. **मिष्टान्न**–पक्वान्न, १४. **रांधे हुए अन्न** थूली, खिचडी, चांवलादि, १५. **दालें,** १६. **विगय,** घी, तेल, दूध, दही, मीठा शहद आदि, १७. **साग** हरी व सूखी, १८ **मधुर फल** हरे व सूखे मेवे के रूप मे, १९. **भोजन**–जीमण, २०. **पीने का पानी,** २१ **मुखवास**–सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि, २२. **वाहन** सभी प्रकार के रेल, मोटर, तागा, स्कूटर, साइकिल, नाव, जहाज,

हवाई जहाज आदि, २३. **उपानह** जूते, बूट, मौजे आदि, २४. **शयन**–खाट-पलंग-पाट आदि, २५. **सचित्त--द्रव्य** २६. **द्रव्य**–सचित्त एवं अचित्त सभी प्रकार के द्रव्य ---मात्रा/संख्या/तोल/नाप आदि से अधिक नहीं भोगने का जीवन-पर्यन्त एक करण तीन योग से पच्चक्खाण करता हूं एवं कर्मादान के नाम से कहे जाने वाले निम्न पन्द्रह प्रकार के अत्यधिक हिंसाकारी एवं पाप कर्मवर्धक व्यापारों का सम्पूर्ण त्याग तीन करण तीन योग से (करूं नहीं–कराऊ नही–करते को भला जानू नही–मन-वचन और काया से) जीवन-पर्यन्त के लिये करता हूं:—(१) **इंगाल कर्म** यानि लकड़ी से कोयला बनाना, चूने-ईंटे-लोहा इत्यादि के भट्टे पकाना आदि अगार-जनक व्यापार, (२) **वन कर्म** यानि वन कटवाने और उनको वेचने आदि का व्यापार, (३) **साड़ी कर्म** यानि भाडे पर चलाने के हेतु सभी प्रकार के वाहन गाडी, ट्रके, कारें, स्कूटरें, इक्का, तागा आदि बनाने और वेचने का व्यापार, (४) **भाड़ी कर्म** घोड़ा, तांगा, मोटर, ट्रक, स्कूटर आदि रखकर उनको भाड़े पर चलाने का व्यापार, (५) **फोड़ी कर्म**–खाने, तालाब, नहरे–बाध आदि खुदवाने का व्यापार, (६) **दन्त वाणिज्य**—हाथी दात, हड्डी व केसर–कस्तूरी आदि आदि का व्यापार, (७) **लाख वाणिज्य**–लाक्षा, चपड़ी, साबुन, सोड़ा, नमक आदि का व्यापार, (८) **रस वाणिज्य**–मादक अपेय समझे जाने वाले रस पदार्थ, मद्य, मदिरा, ताड़ी आदि नशीली वस्तुओं का व्यापार, (९) **केश वाणिज्य**–चमरी गाय, घोड़ा एवं दास-दासी आदि का व्यापार, (१०) **विष वाणिज्य** विष, सखिया, अफीम, गाजा, चरस आदि विषैले, नशीले एवं समाज मे हेय समझे जाने वाले पदार्थों का व्यापार, (११) **यन्त्र-पीलण-कर्म**–कल-कार-खाने, कोल्हू, चक्की आदि बनाने एव चलाने का व्यापार, (१२) **निलंछन-कर्म**–बैल आदि को खस्सी कराने का कार्य, (१३) **दावाग्नि-कर्म**–जंगल, खेत, घास आदि जलाने का कार्य, (१४) **सर-दह-तालाब-परिशोषण कर्म**–तालाब, द्रह, नदी, बन्ध आदि जलाशयो को सुखाने का कार्य, १५. **असंयति-जन-पोषण-कर्म**–वैश्या, दुश्चरित्र पुरुष-महिला, शिकारी-पशु-पक्षियों आदि के पोषण-पालने आदि के कार्य।

आठवां अणुव्रत-अनर्थादण्ड-विरमण—अनर्थ-दण्ड मे गिने जाने वाले निम्न प्रकार की चार प्रमुख बातो को सेवन करने एव कराने का मैं मन, वचन, काया से जीवन-पर्यन्त पच्चक्खाण करता हूं। उसमे आठ आगार रखता हूं जो आत्मा, राजा, जाति, परिवार, देव, नाग, यक्ष, एव भूत-पिशाचादि से सम्बन्धित है :—

(१) **अपध्यान** यानि आर्त्त-रौद्र ध्यान, इष्ट-वियोग-अनिष्ट योग मे चिन्ता, क्रन्दन आदि करना, दूसरों को मारने-काटने दु:खी बनाने आदि का विचार करना आदि, (२) **प्रमाद-चर्या** मदिरा-पान, निद्रा आलस्य मे ही अधिक समय गंवाना, विकथा करना, विषय एवं कपायादि का सेवन करते रहना, (३) **हिंसा-प्रधान** उपकरणो, तलवार, बन्दूक, राइफल, पिस्तौल, हथगोले, कुदाली आदि का सग्रह करना एवं इन्हे दूसरो को देना आदि, (४) **पाप कर्म का उपदेश**—निरर्थक आरम्भ-समारम्भ आदि पाप-कर्म प्रधान कार्यो का उपदेश देना जैसे–मकान-भवन, महल, कल-कारखाना आदि बनाना।

नवमां अणुव्रत–सामायिक— सर्व प्रकार की सावद्य (पापकारी) क्रियाओ के सेवन से निवृत्त रहते हुए एव दूसरो को भी इन क्रियाओ के सेवन के लिये प्रेरित नही करते हुए आत्म-चिन्तन, धर्म ध्यान एव प्रभु-भजन-भक्ति-भाव आदि मे लगे रहने को सामायिक कहते है। घड़ी भर यानि ४८ मिनट तक की जाने वाली इस प्रकार की क्रिया को एक सामायिक करना कहते है इस प्रकार की सामायिक मैं कम से कम एक साल/मास/प्रतिदिन मे——सख्या मे सुखे समाधे जीवन-पर्यन्त करूगा।

दसवां अणुव्रत–दिसावगासिक व्रत–प्रथम अणुव्रत से सातवे अणुव्रत तक जो मर्यादाए जीवन भर के लिये की है उनको सूर्योदय से लेकर एक अहोरात्रि तक सक्षिप्त करने को दिशावगासिक व्रत कहते है। इस व्रत मे सभी दिशाओ की मर्यादा की जाती है। उस मर्यादा से बाहर जाकर पाच प्रकार के आश्रव सेवन का त्याग दो करण तीन योग से यानि करना नही, कराना नही,

मन, वचन, काया से व भोगोपभोग द्रव्यों का पच्चक्खाण एक करण तीन योग से किया जाता है। ऐसा व्रत सुखे समाधे एक वर्ष/मास में——संख्या में करने की मैं प्रतिज्ञा लेता हूं।

इस व्रत के अन्तर्गत "दया" व्रत भी गिना गया है। "दया व्रत" भी मैं एक वर्ष/मास में——संख्या में सुखे समाधे करने की प्रतिज्ञा लेता हूं।

ग्यारहवां अणुव्रत–प्रतिपूर्ण पौषधव्रत—इस व्रत में सूर्योदय से लेकर एक अहोरात्रि तक चार प्रकार के आहारो का, मैथुन सेवन का, मणि-स्वर्ण-माला आदि आभूषणों का और लेप, विलेपन, फूल-माला आदि से शरीर को अलंकृत करने का व शस्त्र मूसलादिक सावद्य योग सेवन करने का त्याग दो करण तीन योग यानि करूं नही, कराऊं नहीं, मन, वचन, और काया से, किया जाता है। ऐसे पौषध व्रत सुखे समाधे एक वर्ष/मास में——संख्या में करने का मैं व्रत लेता हूं।

बारहवां अणुव्रत-अतिथि संविभाग—इस व्रत में श्रावक को, मुनियों को, साधु-साध्वियों को प्रासुक एवं एषणीय १४ प्रकार के आहार आदि निर्दोष वस्तुओं के दान देने का विधान है। इस व्रत में केवल भावना होती है प्रतिज्ञा करना सम्भव नही। अतः मैं भावना करता हूं कि ऐसे सत्पात्रो को दान देने का योग मिलने पर उत्कृष्ट भाव से निष्काम बुद्धि से केवल आत्म-कल्याण हेतु दान दूंगा।

इन बारह प्रकार के अणुव्रतों के शास्त्रकारों ने प्रत्येक के मोटे तौर पर पांच के हिसाब से ६० अतिचार बताये हैं। इन ६० अतिचारों की जानकारी १२ अणुव्रतधारी को रखनी चाहिये पर उनका सेवन नही करना चाहिये। इन ६० अतिचारों को श्रावक प्रतिक्रमण में विस्तार से समझाया गया है।

अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी इन बारह अणुव्रतों को धारण करना साधक की शक्ति-सामर्थ्य पर निर्भर करता है।

इन अणुव्रतों को धारने के साथ ही, अथवा इसके पूर्व या इसके बिना भी प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी साधक या श्रावक के लिये सम्यक्त्व/समकित अथवा सम्यग्दर्शन का धारण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है। इसके बिना साधक की सारी साधनाएं एवं क्रियाएं निरर्थक हैं। अतः सम्यक्त्व (समकित अथवा सम्यग्दर्शन) को प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी, श्रावक या साधक अनिवार्य रूप से सर्व प्रथम निम्न प्रकार से स्वीकार करे:-

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं॥

अर्थात्—जिन्होने रागद्वेषादि समस्त कर्म-शत्रुओ को जीत लिया है वे अरिहन्त मेरे उपास्य देव हैं। पंच महाव्रतधारी, जिन धर्म के उपासक सुसाधु मेरे गुरु हैं और उन्ही वीतराग जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित दयामय, विनयमूलक, आत्मा एवं कर्म के भेद-विज्ञान को प्रकट कराने वाला एवं मोक्षतत्व का प्रकाशक जिन धर्म ही मेरा धर्म है। ऐसी समकित (सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन) मैं श्रद्धापूर्वक जीवन भर के लिये स्वीकार करता हूं। यही नही, जिन प्रभु से मैं निरन्तर प्रार्थना करता हू कि यही समकित मुझे जन्म जन्मान्तर तक प्राप्त होती रहे ताकि मैं इस ससार-कारागार से मुक्त होकर सिद्ध-बुद्ध, निरंजन-निराकार अजर अमर हो सकूं और तब वह मेरी समकित भी सादि अनन्त बन जाय।

इस समकित—पाठ के भी छ आगार एव पांच अतिचार आचार्यों ने बतलाये हैं, जिनका वर्णन—विवेचन भी श्रावक प्रतिक्रमण मे किया गया है। साधक इसकी जानकारी वहा से करें।

इसी समकित धारण करने को जैन दर्शन मे बोधिरत्न की प्राप्ति होना भी कहा गया है। इसी की सही अर्थो मे प्राप्ति की आन्तरिक अभिलाषा अनेकानेक जैनाचार्यों, जैन धर्मोपदेष्टाओ एवं निर्ग्रन्थ जैन सन्त-सतियों ने जिन प्रभु से अनेकानेक प्रकार की स्तुतियों, प्रार्थनाओं एवं गाथाओ के माध्यम से प्रकट की है और इसकी सर्वोच्च महिमा गाई है। उदाहरण के रूप में एक-दो

आचार्यों द्वारा की गई वहु प्रचलित एक-दो प्रार्थनाओं की कुछ कड़ियां नीचे दी जाती हैं :—

(१) इय संथुओ महायस ! भत्तिब्भरनिब्भरेण हियएण।
ता देव ! दिज्ज बोहिं भवे भवे पास जिणचन्द !

(२) दीनोद्धार धुरन्धरस्त्वदपरो, नास्ते मदन्यः कृपा—,
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर ! तथाप्येतां न याचे श्रियम्।
किन्त्वर्हन्निदमेव केवलमहो, सद्बोधिरत्नं शिवम्,
श्रीरत्नाकर – मगलैकनिलय ! श्रेयस्करं प्रार्थये ॥

(३) नो मुक्त्यै स्पृहयामि नाथ ! विभवै कार्यं न सांसारिकै,
किन्त्वायोज्य करौ पुनः पुनरिदं त्वामीशमभ्यर्थये।
स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने सुखे-दुःखे मन्दिरे,
कान्तारे निशिवासरे च सततं भक्तिर्ममास्तु त्वयि ॥

(१३६)

सात कुव्यसनों का निषेध

जुआ खेलना, मास, मद, वैश्या—व्यसन, शिकार।
चोरी, पर – रमणी – रमण, सातो नरक द्वार ॥

१. जुआ—शर्त लगा कर ताश आदि खेलना, चांदी का व अन्य पदार्थों का सट्टा व रेस का भी सट्टा एक प्रकार का जुआ है। (इसका यदि सर्वथा त्याग न कर सकें तो परिमाण अवश्य करना चाहिये।) २. मांस-भक्षण करना, अण्डे, मछली आदि का प्रयोग करना। ३. मदिरापान करना, भांग, गांजा, सुलफा, चरस, तम्बाखू आदि का सेवन करना। ४. वैश्या-गमन करना। ५. शिकार खेलना, अथवा विना अपराध किसी भी नर-नारी, बालक एव अन्य त्रस प्राणी को सकरण पूर्वक मारना, उन पर घातक हमला या वार करना। ६. चोरी करना यानि विना दी हुई वस्तु लेना, अथवा ७. पर-स्त्री गमन करना।

ये सातों नरक के द्वार है। प्रत्येक साधक व्यक्ति को इन सातों ही कुव्यसनों का जीवन-भर के लिये त्याग कर देना चाहिये। इनका त्याग करने से प्राणीमात्र के लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है, अन्यथा नही। जीवन को उन्नत बनाने व चरित्र-निर्माण के लिये निर्व्यसनी होना आवश्यक है। ये सातो व्यसन दुर्गति के कारण एवं अधर्म को वढाने वाले हैं। अतः साधको एवं व्रती बनने वालो को इन कुव्यसनो का पहले त्याग करना आवश्यक है। प्राथमिक साधना की दृष्टि से भी इनका जीवन भर के लिये त्याग कर देना चाहिये। इनका त्याग ही वस्तुत मनुष्य को मनुष्य बनाने वाला है, मानव जीवन का उत्थान एवं कल्याण करने वाला है।

(१३७)

श्रावक के ३ मनोरथ

वो दिन धन होसी, जद करस्यू धर्म विचार ।।टेर।।

१. एक जीव के कारणे कियो आरम्भ वेशुमार।
परिग्रह की सीमा नही कोई दिन दिन वढे अपार – वो०

२. धर्म ध्यान निपजे नही, नही कीनो पर उपकार।
आरंभ परिग्रह छोडने, निवृत होसूं जिण वार – वो०

३. भव-भव मे भटकत फिर्यो, कोई चोरासी मझार।
साधु या श्रावक पणो, नही कीनो अगीकार – वो०

४. ब्रह्मचर्य व्रत पालसूं, कोई सजम सतरे प्रकार।
पंच महाव्रत धार ने, कोई वणसूं जद अणगार – वो०

५. अत सथारो धारसूं, अट्ठारे पाप परिहार।
अरिहन्त सिद्ध साधु केवली, ए चारो शरणा धार – वो०

६. सव ही जीव खमावसूं, कोई खमशु वारबार।
शुद्ध भावे पडित मरण, कोई करशुं देह विसार – वो०

७. तीन मनोरथ ए कह्या, जो नित चिन्ते नर नार।
इण भव पर भव जीव के, कोई खर्ची बांधे लार।
तीन मनोरथ पूरजो, म्हारे होसी मंगलाचार – वो०

श्रावक के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल सामायिक करते समय अथवा वैसे भी मनोरथो के द्वारा भविष्य के लिए शुभ संकल्प करे। भगवान् महावीर ने स्थानांग सूत्र में ३ मनोरथों का वर्णन किया है।

१. श्रावक पहले मनोरथ में यह विचार करे कि "वह धन्य दिन कब होगा, जब मैं अपने धन संपत्ति-रूप परिग्रह का पीड़ित जनता के हित के लिए त्याग करूंगा। यह परिग्रह मेरी आत्मा के लिए सबसे बड़ा बन्धन है। यह ममता का जहर आध्यात्मिक जीवन को दूषित कर रहा है। धन का सच्चा उपयोग सग्रह में अथवा अपने स्वार्थ के पोषण मे नही है, प्रत्युत जन-हित के लिए अर्पण कर देने मे है। अस्तु, जिस दिन मैं अपने परिग्रह को जन सेवा मे त्याग कर प्रसन्नता अनुभव करूंगा ममता के भार से हल्का हो जाऊंगा, वह दिन मेरे लिए महान कल्याणकारी होगा।"

२. श्रावक दूसरे मनोरथ मे यह विचारे कि "वह धन्य दिन कब होगा, जब मैं संसार की मोह, माया और विषय वासना का त्याग करके साधु जीवन स्वीकार करूंगा? अहिंसा आदि पांच महाव्रतों को धारण कर और परिषह उपसर्गों को समभाव से सहन कर जिस दिन मुनि पद की ऊंची भूमिका मे विचरण करूंगा, वह दिन मेरे लिए महान् कल्याणकारी होगा।"

३. श्रावक तीसरे मनोरथ में यह चिन्तन करे कि "वह धन्य दिन कब होगा, जब मैं अपनी संयम यात्रा को सकुशल-निर्विघ्न भाव से पूर्ण कर अन्त समय मे आलोचना, निंदना एवं गर्हणा करके संथारा ग्रहण करूंगा? सब प्रकार की उपधि, आहार और जीवन की ममता का भी त्याग कर जिस दिन मैं पूर्ण रूप से अपने आपको वीतराग भगवान् की उपासना में लगाऊंगा, वह दिन मेरे लिए कल्याणकारी होगा।"

(१३८)

चौवह-नियम

सचित दव्व विगग्न पन्नी तबोल वत्थ कुसुमेसु ।
वाहण सयण विलेवण, बम्भ दिसि न्हाण भत्त सु ।।

१. **सचित**–जीव सहित वस्तु अर्थात् कच्चा पानी, फल फूल, मूल, बीज आदि । कोई भी सचित वस्तु, जो छेदन-भेदन होकर तथा अग्नि आदि का शस्त्र पाकर अचित न हुई हो ।
२. **द्रव्य**–रोटी, दाल, भात आदि द्रव्य ।
३. **विगय**–दूध, दही, घी, तेल आदि ।
४. **उपानत्**–जूते, चप्पल आदि ।
५. **ताम्बूल**–मुखवास, पान, सुपारी आदि ।
६. **वस्त्र**–पहनने-ओढ़ने के सब वस्त्र ।
७. **कुसुम**–सूंघने की वस्तु-फूल, इतर आदि ।
८. **वाहन**–घोड़ा, हाथी, जहाज, मोटर आदि ।
९. **शयन**–पलंग, खाट, बिछौने आदि ।
१०. **विलेपन**–चन्दन, तेल, उबटन आदि ।
११. **ब्रह्मचर्य**–मैथुन का त्याग ।
१२. **दिशा**–ऊंची, नीची, तिरछी, दिशा ।
१३. **स्नान**–स्नान का जल ।
१४. **भक्त**–मिष्ठान्न आदि भोजन ।

सूचना–चौदह नियम नित्यप्रति ग्रहण करें । ऊपर लिखित चौदह वस्तुओं की, आवश्यकता के अनुसार, जितनी मर्यादा (परिमाण) रखनी हो, रखकर उसके उपरान्त का त्याग कर लेना चाहिये । जितना त्याग, उतनी ही शान्ति । चौदह नियम नियमित रूप से प्रतिदिन ग्रहण करने से समुद्र जितना पाप घट कर बूंद के बराबर रह जाता है ।

(१३६)

बारह भावना

१. अनित्य — राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार ।।

२. अशरण — दल बल देवी देवता, मात–पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखन हार ।।

३. संसार — दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णा वश धनवान ।
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ।।

४. एकत्व — आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यो कब हूं या जीव को, साथी सगा नहिं कोय ।।

५. अन्यत्व — जहां देह अपनी नही, तहां न अपना कोय ।
घर सम्पति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ।।

६. अशुचि — दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पीजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नही घिन गेह ।।

७. आस्रव — जग वासी घूमें सदा, मोह नींद के जोर ।
सब लूटे नही दीसता, कर्म चोर चहु ओर ।।

८. संवर — मोह नीद जब उपशमे, सत गुरु देय जगाय ।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय ।।

९. निर्जरा — ज्ञान दीप तप तैल भर, घर शोवे भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसे नही, पैठे पूरब चोर ।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पच प्रकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ।।

१०. लोक — चौदह राजु उत्तंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामे जीव अनादि ते, भरमत है बिन ज्ञान ।।

११. बोधि-दुर्लभ तन-धन-कंचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार मे, एक यथारथ ज्ञान ।।

१२. धर्म जांचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन ।
बिन जाचे बिन चिन्तये, धर्म सदा सुख दैन ।।

अनित्य अशरण संसार है एकत्व परपंख जाण ।
अशुचि आश्रव संवरा निर्जरा लोक बखाण ।।
बोधिदुर्लभ धर्म ये बारह भावना जाण ।
इनको भावे जो सदा क्यो न लहे निर्वाण ।।

(१४०)

श्री सामायिक सूत्र

श्री पंचपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं ।
णमो सिद्धाणं ।
णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं ।
णमो लोए सव्वसाहूणं ।

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाण च सव्वेसिं, पढमं हवइ मगल ।।

तिक्खुत्तो (गुरु वन्दन) का पाठ

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिण, करेमि, वंदामि, णमसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाण, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि ।

इच्छाकारेणं का पाठ

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं ! इरियावहियं पडिक्कमामि, इच्छं । इच्छामि पडिक्कमिउं, इरियावहियाए, विराहणाए । गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिग-पणग-दग-मट्टी-मक्कड़ा-संताणा-संक्कमणे । जे मे जीवा विराहिया-एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

तस्स उत्तरी (आत्म शुद्धि) का पाठ

तस्स उत्तरी करणेणं, पायच्छित्त करणेणं, विसोहि करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि, काउस्सग्गं । अन्नत्थ ऊससिएणं, निसस्सिएणं, खांसिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए । सुहुमेहिं अंग संचालेहिं सुहुमेहि खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो । जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमोक्कारेणं न पारेमि, ताव कायं ठाणेणं, मोणेणं झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि ।

लोगस्स (चौबीस जिन स्तुति) का पाठ

१. लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ।।

२. उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।

३. सुविहिं च पुप्फदतं, सीयल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।

४. कुन्थुं अरं च मल्लि, वन्दे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वन्दामि रिट्ठनेमिं, पास तह वद्धमाणं च ।।

५. एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयतु ।।

६. कित्तिय वन्दिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग बोहिलाभ समाहिवरमुत्तमं दिन्तु ।।

७. चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगम्भीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु ।।

सामायिक लेने का पाठ

करेमि भन्ते ! सामाइयं सावज्ज जोगं पच्चक्खामि । जाव नियमं[1] पज्जुवासामि । दुविह तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा । तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि, निन्दामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

नमोत्थुणं (शक्र स्तव) का पाठ

(अरिहन्त-सिद्ध-स्तुति)

१. नमोत्थु णं ! अरिहताणं भगवंताणं ।

२. आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं ।

३. पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवर—
पुण्डरियाणं पुरिसवर गंधहत्थीणं ।।

४. लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं ।
लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं ।।

५. अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं ।
सरण–दयाणं जीव दयाणं बोहिदयाणं ।।

---

१. जितनी सामायिक लेनी हो उनकी गिनती प्रकट कहकर आगे पाठ बोलना चाहिए । एक सामायिक एक मुहूर्त (४८ मिनट) की गिनी जाती है ।

६. धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं।
धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टीणं ॥
७. दीवोताणं सरण-गइपइट्ठाणं अप्पडिहयवरनाण—
दंसणधराणं विअट्टछउमाणं ॥
८. जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं।
बुद्धाणं बोहियाणं मुत्ताणं मोयगाणं ॥
९. सव्वण्णूणं सव्वदरिसिणं सिव-मयल-मरुय-मणंत-
मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावित्ति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं
संपत्ताणं[1] णमो जिणाणं जिय-भयाणं ॥

सामायिक पारने का पाठ

१ एयस्स नवमस्स सामाइय वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तंजहा मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय-दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

२. सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

३. सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के इन बत्तीस दोषो में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

४. सामायिक मे स्त्री कथा, भात कथा, देश कथा, राज कथा इन चार विकथाओं मे से कोई विकथा की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

५. सामायिक मे आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा इन चार सज्ञाओ मे से किसी का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

६. सामायिक मे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार सम्बन्धी जानते अजानते मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

---

१. अरिहतस्तुति मे 'ठाण सम्पत्ताणं' के स्थान पर 'ठाणसंपाविउ कामाणं बोलें।

७. सामायिक व्रत विधि से लिया हो, विधि से पाला हो, विधि से करते हुए कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

८. सामायिक मे काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, कम, ज्यादा पढा हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

सामायिक लेने की विधि :—

पूंजनी से स्थान को पूंज कर और आसन बिछा कर बैठे । फिर मुख-वस्त्रिका बांध कर गुरुजी को तिक्खुतो के पाठ से तीन बार वन्दन करके चउवीसस्तव की आज्ञा लेकर नमस्कार-मन्त्र, इच्छाकारेणं एवं तस्सउत्तरी करणेणं का पाठ बोलें । फिर इच्छाकारेण के पाठ का ध्यान करे । नमो अरिहंताण कह कर ध्यान मे आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान न ध्याया हो, ध्यान मे मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं यह कह कर ध्यान पाले । फिर लोगस्स का पाठ बोलकर गुरुजी महाराज विराजमान हो तो उनसे, यदि वे नही हो तो, उत्तर-पूर्व दिशा (ईशानकोण) की ओर मुंह करके शासनपति की आज्ञा लेकर करेमि भन्ते के पाठ से सामायिक लेवें । उसके पश्चात् बाया (डावा) घुटना खड़ा करके दो बार नमोत्थुणं का पाठ बोले ।

सामायिक पारने की विधि :—

नमस्कार—मन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी का पाठ बोल कर एक लोगस्स का ध्यान करना, फिर उपरोक्त रीति से ध्यान पाल कर एक लोगस्स प्रकट कहे फिर बायाँ (डावा) घुटना खडा करके दो बार नमोत्थुणं बोलकर एयस्स नवमस्स का पाठ बोलें और फिर तीन बार नमस्कार-मन्त्र का ध्यान करके सामायिक पालें ।

सामायिक के बत्तीस दोष :—

मन के दस दोष :—

१. विवेक बिना सामायिक करे तो अविवेक दोष ।

२. यशकीर्ति के लिए सामायिक करे तो यशोवांछा दोष ।
३. धनादि के लाभार्थ सामायिक करे तो लाभवांछा दोष ।
४. अहङ्कार युक्त सामायिक करे तो गर्व दोष ।
५. राज्यादिक के अपराध के भय से सामायिक करे तो भय दोष ।
६. सामायिक मे नियाणा करे तो निदान दोष ।
७. फल में सन्देह रख कर सामायिक करे तो संशय दोष ।
८. सामायिक मे क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो रोष दोष ।
९. विनयपूर्वक सामायिक न करे, तथा सामायिक में देव, गुरु, धर्म की अविनय आशातना करे तो अविनय दोष ।
१०. भक्तिभावपूर्वक सामायिक न करके वेगारी की तरह सामायिक करे तो अवहुमान दोष ।

वचन के दस दोष :—

१. बुरे वचन बोले तो कुवचन दोष ।
२. विना विचारे बोले तो सहसात्कार दोष ।
३. राग-रागनियो से सम्बन्धित गाने गावे तो स्वच्छन्द दोष ।
४. सामायिक के पाठ और वाक्यों को संक्षिप्त करके बोले तो संक्षेप दोष ।
५. सामायिक में क्लेशकारी वचन बोले तो कलह दोष ।
६. स्त्री-पुरुष कथा, भोजन कथा, देश कथा, राज कथा इन चार कथाओ मे से कोई कथा करे तो विकथा दोष ।
७. सामायिक मे हंसी ठट्ठा करे तो हास्य दोष ।
८. सामायिक मे उतावला २ पाठ को अशुद्ध बोले तो अशुद्ध दोष ।
९. सामायिक मे उपयोग बिना बोले तो निरपेक्ष दोष ।
१०. अस्पष्ट-मुण-मुण बोले तो मुम्मण दोष ।

काया के १२ दोष :—

१. सामायिक में अयोग्य-अभिमान आदि के आसन से बैठे तो कुआसन दोष ।

२. सामायिक मे स्थिर ग्रासन पर न बैठे तथा ग्रासन बार-बार बदलता रहे तो चलासन दोष ।
३. सामायिक मे इधर उधर दृष्टि फेरे तो चलदृष्टि दोष ।
४. सामायिक मे सावद्य क्रिया, सीना पिरोना ग्रादि गृहकार्य करे तो सावद्य क्रिया दोष ।
५. सामायिक मे भीतादि का सहारा लेवे तो ग्रालम्बन दोष ।
६. सामायिक में बिना कारण हाथ पांव फैलावे समेटे तो ग्राकुंचन-प्रसारण दोष ।
७. सामायिक में ग्रङ्ग मोड़े तो ग्रालस्य दोष ।
८. सामायिक मे हाथ पैर की ग्रगुलियो का कड़का निकाले तो मोटन दोष ।
९. सामायिक मे मैल उतारे तो मल दोष ।
१०. गले या गाल पर हाथ लगाकर शोकासन से बैठे तो विमासण दोष ।
११. निद्रा लेवे तो निद्रा दोष ।
१२. विना कारण दूसरो के पास से वैयावृत्य (सेवा) करावे तो वैयावृत्य दोष ।

सामायिक का महत्व

जैन धर्म मे जीव दो प्रकार के बतलाए गये हैं (१) ससारी (२) सिद्ध । ससारी जीव ही ग्रपने ग्रनादि के लगे हुए कर्मो को क्षय करके सिद्ध ग्रवस्था को प्राप्त करता है । इस सिद्ध गति को पहुचने की ग्रनेक क्रियाग्रो मे सामायिक का एक महत्वपूर्ण स्थान है ।

सामायिक एक प्रकार का ग्राध्यात्मिक व्यायाम है जिससे वह ग्राते हुये कर्म दलिको का निरुधन करता है ग्रौर समभाव के द्वारा पूर्व सचित कर्मों का सेवन कर उनको नष्ट करता है । जिस प्रकार दवाई व पथ्य रोगी को रोग से मुक्त करते हैं ग्रौर शरीर को स्वस्थ बनाते हैं, उसी प्रकार सामायिक नवीन कर्मो के बध को रोक करके ग्रौर पूर्व कृत कर्मो का क्षय करके जीव को मोक्ष का अधिकारी बनाता है । यह क्रिया ग्रात्मा को बाह्य भाव से हटाकर स्वभाव

में रमण कराती है। समभाव साधना ही सामायिक है और एक शब्द में कहें तो सामायिक मोक्ष की साधना का प्रथम व अन्तिम चरण है।

समता सर्व भूतेपु संयमः शुभ भावना ।
आर्त्त-रौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ।।

अर्थात्—प्राणीमात्र मे समभाव रखना, संयम एवं शुभ भावनाओ में रमण करना, आर्त्त ध्यान एवं रौद्र ध्यान का त्याग कर देना—ये सामायिक व्रत के लक्षण है। इसी को सामायिक कहते है।

दिवसे दिवसे लक्ख, देई सुवण्णस्स खंडियं एगो ।
एगो पुण सामाइय, करेइ न पहुप्पए तस्स ।।

अर्थात्—ऐसी सामायिक की साधना करने वाले साधक व्यक्ति की वरावरी वह व्यक्ति भी नही कर सकता, जो व्यक्ति प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान देकर पुण्यार्जन करता है।

"ॐ शान्ति प्रभु जय शान्ति प्रभु पार्श्वनाथ महावीर प्रभु" इस जाप की ११५८ मालाएं फेरने से १। लाख के जाप की पूर्ति होती है। इस जाप की बहुत बड़ी महिमा है।

—०—

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणई ।।
(मैं करता क्षमा सब जीवो को, क्षमा करें सब जीव मुझे।
मैत्री भाव है सबसे मेरा, नहीं किसी से वैर मुझे ।।)

(१४१)

(आलोयणा-पाठ, तर्ज—विमल जिनेश्वर सेविये)

१. हिवे राणी पद्मावती, जीवराशि खिमावे।
जाणपणुं जग मे भलुं इण वेला जो आवे ।।

२. ते मुझ मिच्छामि दुक्कडं, अरिहंतो नी साख ।
जे मै जीव विराधिया, चौरासी लाख — ते०

३. सात लाख पृथ्वी तणा, साते अपकाय ।
सात लाख तेऊ तणा, साते वली वाय — ते०

४. दश लाख प्रत्येक वनस्पति, चउदे साधारण ।
बे-ती चौरिंद्रिय जीव नी, बे बे लाख विचार — ते०

५. देवता तिर्यंच नारकी, चार चार प्रकाशी ।
चौदह लाख मनुष्य ना, ये लाख चौरासी — ते०

६. इण भव परभव सेविया, जे पाप अठार ।
त्रिविध त्रिविध करि परिहरूं दुर्गति ना दातार — ते०

७. हिंसा कीधी जीव नी, बोल्या मृषावाद ।
दोष अदत्तादान ना, मैथुन उन्माद — ते०

८. परिग्रह मेल्यो कारमो, कीधो क्रोध विशेष ।
मान माया लोभ मै किया, वली राग ने द्वेष — ते०

९. कलह करी जीव दूहव्या, दीधा कूड़ा कलक ।
निन्दा कीधी पार की, रति अरति निःशक — ते०

१०. चाडी कीधी पार की, कीधो थापण मोसो ।
कुगुरु कुदेव कुधर्म नो, भलो आण्यो भरोसो — ते०

११. खटीक ने भवे मैं किया, जीव ना वध घात ।
चिड़ीमार भवे चिड़कला, मार्या दिन ने रात — ते०

१२. काजी मुल्ला ने भवे, पढी मन्त्र कठोर ।
जीव अनेक जिबह किया, कीधा पाप अघोर — ते०

१३. माछी ने भवे माछला, झाल्या जल वास ।
धीवर भील कोली भवे, मृग पाड़्या पास — ते०

१४. कोटवाल ने भवे मैं किया, आकरा कर दण्ड ।
बन्दीवान मराविया, कोरड़ा छड़ी दण्ड — ते०

१५. परमाधामी ने भवे, दीवा नारकी दुःख।
छेदन भेदन वेदना, ताड़न अतितिक्ख – ते०

१६. कुंभार ने भवे मैं घणा, नीमाह पचाव्या।
तेली भवे तिल पीलिया, पापे पिण्ड भराव्या – ते०

१७. हाली-भवे हल खेड़िया, फोड्या पृथ्वी ना पेट।
सूड़ निनाण किया घणां, दीवी बलदां चपेट – ते०

१८. माली भवे रूंख रोपिया, नाना विध वृक्ष।
मूल पत्र फल लता, फूललाग्या पाप ज लक्ष – ते०

१९. अवोवाइया ने भवे, भरिया अधिका भार।
पोठी पूठे कीड़ा पड्या दया न आणी लिगार – ते०

२०. छीपा ने भवे छेतर्‌या कीधा रांगण पास।
अग्नि आरंभ किया घणा, धातुवाद अभ्यास – ते०

२१. शूर पणे रण जूझता, मार्‌या माणस वृन्द।
मदिरा मांस माखण भख्या खाधा मूल ने कन्द – ते०

२२. खाण खणावी धातुनी, सर पाणी उलीच्या।
आरम्भ कीधा अति घणा, पोते पापज संच्या – ते०

२३. अङ्गार कर्म किया वली, वन में दव दीधा।
सौगन्ध खाई वीतराग नी, कूड़ा दोषज दीधा – ते०

२४. बिल्ली भवे उन्दर गिल्या, गिलोरी हत्यारी।
मूढ़ गंवार तणे भवे, मैं जूं लीखां मारी – ते०

२५. भड़भूंजा तणे भवे, एकेन्द्रिय जीव।
जुवार चणा गेहूं सेकिया, पाड़ंता रीव – ते०

२६. खांडन पीसण गारना, किया आरम्भ अनेक।
रांधण इंधण अग्नि ना, कीवा पाप उद्वेग – ते०

२७. विकथा चार कीधी वली, सेव्या पच प्रमाद।
इष्ट वियोग पड़ाविया, रोवण विख वाद – ते०

२८. साधू अने श्रावक तणा, व्रत लेई ने भाग्या ।
मूल अने उत्तर गुण तणा, मुझ दूषण लाग्या – ते०

२६ सांप बिच्छू सिंह चीतरा, सिकरा ने समली (चील)।
हिंसक जीव तणे भवे, हिंसा कीधी सबली – ते०

३०. सुवावड़ी दूषण घणा, वली गर्भ गलाव्या ।
जीवाणी ढोली घणी, शील व्रत भंजाव्या – ते०

३१. भव अनन्त भमता थका, कीधो देह सम्बन्ध ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबन्ध – ते०

३२. भव अनन्त भमता थकां, कीधो परिग्रह सम्बन्ध ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबध – ते०

३३. भव अनन्त भमतां थका, कीधा कुटुम्ब सम्बन्ध ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबध – ते०

३४. इण विध इह भव पर भवे, कीधा पाप अखत्र ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, करू जन्म पवित्र – ते०

३५. इण विध यह आराधना, भावे करसे जेह ।
'समय सुन्दर' कहे पाप थी, वली छूट से तेह – ते०

(१४२)

वृहदालोयणा

१. सिद्ध श्री परमात्मा, अरिगंजन अरिहृत ।
इष्टदेव वदूं सदा, भयभजन भगवंत ।।

२ अरिहंत सिद्ध समरूं सदा, आचारज उवज्झाय ।
साधु सकल के चरण कूं, वंदूं शीश नमाय ।।

३. शासन नायक सुमरिये, भगवंत वीर जिनन्द ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ।।

४. अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भंडार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार॥
५. श्री गुरुदेव प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध।
ज्यों जल वरसत वेलि तरु, फूल फलन की वृद्ध॥
६. पंच परमेष्टी देवको, भजनपूर पहिचान।
कर्म अरि भाजे सभी, होवे परम कल्याण॥
७. श्री जिनयुगपद कमल मे, मुझ मन भमर वसाय।
कब ऊगे वो दिन करू, श्रीमुख दर्शन पाय॥
८. प्रणमी पदपकज भणी, अरिगजन अरिहंत।
कथन करूँ अब जीव को, किंचित मुझ विरतंत॥
९. आरभ विषय कषाय वश, भमियो काल अनंत।
लख चौरासी योनि से, अब तारो भगवंत॥
१०. देव गुरु धर्म सूत्र मे, नव तत्वादिक जोय।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कडं मोय॥
११. मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, भरियो रोग अथाग।
वैद्यराज गुरु शरण से, औषध ज्ञान वैराग॥
१२. जे मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार।
प्रभो ! तुमारी साख से, वारंवार धिक्कार॥
१३. बुरा बुरा सब को कहूं, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूँ आपणो, तो मोसूं[1] बुरा न कोय॥
१४. कहवा में आवे नही, अवगुण भरया अनंत।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जानो श्री भगवंत॥
१५. करुणानिधि करुणा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रंथि भेद[2]॥

---

१ मेरे से, २ कर्मों की गांठ को तोड़ना।

१६ पतित उधारण नाथजी, अपनो विरुद विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारंबार ।।

१७. माफ करो सब माहरां, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील सतोष ।।

१८. आत्म निंदा शुद्ध भणी, गुणवंत वंदन भाव।
रागद्वेष पतला करी, सब से खिमत खिमाव ।।

१९. छूटूं पिछला पाप से, नवा न बांघू कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफ़ल मनोरथ होय ।।

२०. परिग्रह ममता तजि करी, पंच महाव्रत धार।
अंत समय आलोयणा, करूं संथारो सार ।।

२१. तीन मनोरथ[1] ए कह्या, जो ध्यावे[2] नित्य मन्न।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख धन्न ।।

२२. अरिहंत देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवलिभाषित शासतर, यही जैनमत मर्म ।।

२३. आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार ।।

२४. खिण[3] निकमो रहणो नही करणो आतम काम।
भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम[4] ।।

२५. अरिहंत सिद्ध सब साधुजी, जिन आज्ञा धर्मसार।
मगलिक उत्तम सदा, निश्चय शरणा चार ।।

२६. घडी घडी पल पल सदा, प्रभु सुमिरण को चाव।
नरभव सफलो जो करे, दान शील तप भाव ।।

—०—

१. मन की अभिलाप, २. चिन्तन करना, ३. थोड़ी देर भी, ४. वगीचा।

१. सिद्धां जैसो जीव है, जीव सो ही सिद्ध होय ।
कर्म मैल को आंतरो, बूझै[1] विरला कोय ।।
२. कर्म पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान ।
दो मिल कर बहुरूप है, विछड़यां[2] पद निरवाण ।।
३. जीव करम भिन्न भिन्न करो, मनुष्य जनम को पाय ।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान लगाय ।।
४. द्रव्य थकी जीव एक है, क्षेत्र असंख्य प्रमाण ।
काल थकी सर्वदा रहे, भावे दर्शन ज्ञान ।।
५. गर्भित[3] पुद्गल पिंड में, अलख[4] अमूरति[5] देव ।
फिरे सहज भव चक्र मे, यह अनादि की टेव[6] ।।
६. फूल अतर घी दूध मे, तिल मे तेल छिपाय ।
यूं चेतन जड़ करम संग, बध्यो ममत दु.ख पाय ।
७. जो जो पुद्गल की दशा, ते निज माने हंस[7] ।।
या ही भरम विभाव ते, बढे करम को वश ।।
८. रतन बंध्यो गठड़ी विषे, सूर्य छिप्यो घन मांय ।
सिंह पिंजरा मे दियो, जोर चले कछु नांय ।।
९. ज्यों बन्दर मदिरा पीयां, विच्छू डकित गात ।
भूत लग्यो कौतुक करे, त्यो कर्मो का उत्पात ।।
१०. कर्म संग जीव मूढ है, पावे नाना रूप ।
कर्मरूप मल के टले, चेतन सिद्ध सरूप ।।
११. शुद्ध चेतन उज्ज्वल दरव रह्यो कर्म मल छाय ।
तप संयम से धोवतां ज्ञान ज्योति वढ़ जाय ।।
१२. ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूप ।
चारित्र से आवत रुके, तपस्या क्षपण सरूप ।।

---

१. समझे, २. अलग होना, ३. मिला हुआ, ४. दिखाई न देने वाला, ५. आकार रहित, ६. आदत, ७. आत्मा ।

१३. कर्म रूप मल[1] के शुधे, चेतन चांदी रूप।
निर्मल ज्योति प्रगट भयां, केवल ज्ञान अनूप[2] ।।

१४. मूसी पावक सोहगी फूका तणो उपाय।
राम चरण चारु मिल्यां, मैल कनक[3] को जाय ।।

१५. कर्मरूप बादल मिटे, प्रगटे चेतन चन्द।
ज्ञानरूप गुण चादनी, निर्मल ज्योति अमन्द[4] ।।

१६. राग द्वेष दो बीज से, कर्म बन्ध की व्याध[5] ।
ज्ञानातम वैराग्य से, पावे मुक्ति समाध ।।

१७. अवसर बीत्यो जात है, अपने वश कछु होत।
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक दीपक ज्योत ।।

१८. कल्प वृक्ष चिन्तामणि, इस भव मे सुखकार।
ज्ञान वृद्धि इन से अधिक, भव दुःख भंजनहार ।।

१९. राई मात्र घट वध नही, देख्या केवल ज्ञान।
यह निश्चय कर जान के, तजिये परथम[6] ध्यान ।।

२०. दूजा[7] कूं कभी न चिंतिये, कर्मबन्ध बहु दोष।
तीजा[8] चौथा[9] ध्याय के, करिये मन सन्तोष ।।

२१. गई वस्तु सोचे नही, आगम वाछा नाय।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग माय ।।

२२. अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यो धाय खिलावे बाल ।।

२३. सुख दुःख दोनु वसत है, ज्ञानी के घट माय।
गिरि[10] सर[11] दीसे दर्पण[12] मे, भार भीजवो नाय ।।

---

१ मैल, २. उपमा रहित, ३ सोना, ४ उत्कृष्ट, ५ पीडा, ६ आर्त्त ध्यान ७. रौद्रध्यान, ८ धर्म ध्यान, ९. शुक्ल ध्यान, १०. पर्वत, ११. तालाव, १२. काच ।

२४. जो जो पुद्गल फरसना, निश्चय फरसे सोय।
ममता समता भाव से, करमबन्ध खय होय ॥
२५. वांध्या सोही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित चाव ॥
२६. वांध्या बिन भुगते नही, बिन भुगत्यां न छुड़ाय।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ॥
२७. पथ[1] कुपथ[2] घट वध करी, रोग हानि वृद्धि थाय।
यूं पुण्य पाप किरिया करी, सुख दुःख जग में पाय ॥
२८. सुख दियां सुख होत है, दुःख दियां दुःख होय।
आप हणे नही अवर कूं, तो अपने हणे न कोय ॥
२९. ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष।
इनकूं कभी न छांड़िये, श्रद्धा शील सन्तोष ॥
३०. सत मत छोड़ो हो नरां, लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख दुःख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ॥
३१. गोधन गज धन रतन धन, कंचन खान सुखान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान ॥
३२. शील रतन मोटो रतन, सब रतनां की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील मे आन ॥
३३. शीले सर्प न आभड़े[3], शीले शीतल आग।
शीले अरि करि[4] केसरी[5], भय जावे सब भाग ॥
३४. शील रतन के पारखी, मीठा बोले वैन।
सब जग से ऊंचा रहे, जो नीचा राखे नैन ॥
३५. तन कर मन कर वचन कर, देत न काहु दुःख।
कर्म रोग पातक झड़े, देखत वा का मुख ॥

———

१. पथ्य-गुणकारी, २. कुपथ्य-अवगुण करने वाला, ३. डसे, ४. हाथी, ५. सिंह

१. पान खिरन्तो इम कहे, सुन तरुवर वनराय।
अब के बिछुड़े कब मिलें, दूर पड़ेंगे जाय॥
२. तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र इक वात।
इस घर एही रीत है, इक आवत इक जात॥
३. वरस दिनो की गांठ को, उच्छव गाय बजाय।
मूरख नर समझे नही, वरस गाठ को जाय॥
४. पवन तणो विश्वास किण कारण तें दृढ कियो।
इनकी एही रीत, आवे के आवे नही॥
५. करज विराणा काढ के, खरच किया बहु दाम।
जब मुद्दत पूरी हुवे, देणा पडसी दाम॥
६. विन दियां छूटे नही, यह निश्चय कर मान।
हस हस के क्यो खरचिये, दाम बिराना जान॥
७. जीव हिंसा करतां थका, लागे मिष्ट अज्ञान।
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलियो पकवान॥
८. काम भोग प्यारा लगे, फल किंपाक समान।
मीठी खाज खुजावता, पीछे दु:ख की खान॥
९. जप तप संजम दोहिलो, औषध कड़वी जाण।
सुख कारण पीछे घणो, निश्चय पद निरवाण॥
१०. डाभ अणी[1] जल विंदुवो, सुख विषयन को चाव।
भवसागर दु:ख जल भर्यो, यह ससार स्वभाव॥
११. चढ उत्तंग[2] जहां से पतन, शिखर नही वो कूप[3]।
जिस सुख अंदर दु:ख बसे, सो सुख भी दु:ख रूप॥
१२. जब लग जिसके पुण्य का, पहुंचे नही करार।
तब लग उसकूं माफ है, अवगुण करे हजार॥

---

१. कुश के अग्र भाग पर, २. ऊंचा, ३. कुआ।

१३. पुण्य खीण जब होत है, उदय होत है पाप।
दाझे[1] बन की लाकड़ी, प्रजले आपों आप ॥

१४. पाप छिपायां ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग ॥

१५. बहु बीती थोड़ी रही, अब तो सुरत संभार।
पर भव निश्चय जावणो, वृथा जन्म मत हार ॥

१६. चार कोश ग्रामान्तरे, खरची बांधे लार।
परभव निश्चय जावणो, करिये धर्म विचार ॥

१७. रज बिरज ऊंची गई, नरमाई के पाण।
पत्थर ठोकर खात है, करड़ाई के ताण ॥

१८. अवगुण उर धरिये नही, जो हुवे विरख[2] बबूल।
गुण लीजे 'कालू' कहे, नही छाया मे शूल ॥

१९. जैसी जापे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
वांका बुरा न मानिये, वो लेन कहां से जाय ॥

२० गुरु कारीगर सारिखा, टांची वचन विचार।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार ॥

२१. सन्तन की सेवा कियां, प्रभु रीझत[3] है आप।
जां का बाल खिलाइये, तां का रीझत बाप ॥

२२. भवसागर संसार में, दीपा श्री जिनराज।
उद्यम करी पहुचे तीरे, बैठ धर्म की जहाज ॥

२३. निज आतम कूं दमन कर, पर आतम कूं चीह्न[4]।
परमातम को भजन कर, सोई मत परवीन ॥

२४. समझूं शके पाप से, अणसमझूं हरषंत।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म बधंत ॥

---

१. जलना, २. वृक्ष, ३ खुश होना, ४. पहिचान।

२५. समझ सार संसार मे, समझूं टाले दोष।
समझ समझ कर जीव ही, गया अनन्ता मोक्ष ॥
२६. उपशम विषय कषाय नो, संवर तीनूं योग।
किरिया जतन विवेक से, मिटे कुकर्म दु:ख रोग ॥
२७. रोग मिटे समता वधे, समकित व्रत आराध।
निर्वैरी सब जीव का, पावे मुक्ति समाध ॥
—इति भूल चूक मिच्छामि दुक्कडं ॥

———

१. सिद्ध श्री परमात्मा अरिगजन अरिहत।
इष्टदेव वन्दूं सदा, भयभंजन भगवन्त ॥
२. अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता क्रोड।
वर्तमान जिनवर सभी, केवली दो क्रोड़ी नव क्रोड़ ॥
३. गणधरादिक सर्व साधुजी, समकित व्रत गुणधार।
यथायोग्य वन्दन करू, जिन आज्ञा अनुसार ॥
(प्रथम एक नवकार गिनना)
४. पंच परमेष्ठी देव को, भजनपूर पहिचान।
कर्म अरि भाजे सभी, शिवसुख मगल थान ॥
५. अरिहंत सिद्ध समरू सदा, आचारज उवज्झाय।
साधु सकल के चरण कूं, वन्दूं शीष नमाय ॥
६. शासन नायक सुमरिये, वर्द्धमान जिन चन्द।
अलिय विधन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥
७. अगुष्ठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वाछित फल दातार ॥
८. श्री जिन युगपद् कमल मे, मुझ मन भ्रमर वसाय।
कब ऊगे वो दिन करू, श्री मुख दर्शन पाय ॥

९. प्रणमी पद पंकज भणी, अरिगंजन अरिहन्त ।
कथन करूं अब जीव को, किंचित् मुझ विरतन्त ।।
हूं अपराधी अनादि को, जनम जनम गुनाह किया भरपूर के ।
लूटीया प्राण छकाय ना, सेविया पाप अठारह क्रूर के ।।
—श्री मुनि सुव्रत साहिबा०

आज दिन तक इस भव में और पहिले संख्यात, असंख्यात अनन्त भवों मे कुगुरु कुदेव और कुधर्म की सद्दहणा परूपना फरसना सेवनादिक सम्बन्धी पाप दोष लगा उनका मिच्छामि दुक्कडं । मैंने अज्ञानपन से, मिथ्यात्वपन से, अव्रतपन से, कषायपन से, अशुभयोग से प्रमाद करके अपछंदा अविनीतपन किया, श्री अरिहंत भगवन्त वीतरागदेव, केवलज्ञानी, गणधरदेव, आचार्यजी महाराज, धर्माचार्यजी महाराज, उपाध्यायजी महाराज, साधुजी महाराज, आर्याजी महाराज तथा सम्यग्दृष्टि, स्वधर्मी श्रावक और श्राविका इन उत्तम पुरुषों की तथा शास्त्र, सूत्रपाठ, अर्थ, परमार्थ और धर्म सम्बन्धी समस्त पदार्थों की अभक्ति, अविनय, अशातना आदि की, कराई, अनुमोदी, मन वचन काया से, द्रव्य क्षेत्र काल भाव से सम्यक् प्रकार विनय भक्ति आराधना पालना फरसना सेवनादिक यथायोग्य अनुक्रम से नही की, नही कराई, नहीं अनुमोदी तो मुझे धिक्कार धिक्कार वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं । मेरी भूल चूक अवगुण अपराध सब मुझे माफ करो, मैं मन वचन काया करके खमाता हूं ।

१. मैं अपराधी गुरुदेव को, तीन भुवन को चोर ।
ठगूं विराना माल मैं, हा हा कर्म कठोर ।।
२. कामी कपटी लालची, अपछन्दा अविनीत ।
अविवेकी क्रोधी कठिन, महापापी 'रणजीत'[1] ।।
३. जे मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार ।
नाथ ! तुमारी साख से वारम्वार धिक्कार ।।

---

[1]. पाठक यहां अपना अपना नाम बोलें ।

पहला पाप प्राणातिपात—मैंने छकायपन से छकाय की बिराधना की, पृथ्वी–अप–तेउ–वायु–वनस्पतिकाय, वेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चउरिन्द्रिय पचेन्द्रिय सन्नी असन्नी गर्भज, चौदह प्रकार के सम्मूर्च्छिम आदि त्रस स्थावर जीवो की विराधना मन वचन काया से की, कराई, अनुमोदी, उठते वैंठते सोते हिलते डुलते शस्त्र वस्त्र मकानादिक उपकरण उठाते धरते लेते देते, वर्तते वर्तावते, अप्पडिलेहणा दुप्पडिलेहणा सम्बन्धी, अप्रमार्ज्जना दु.प्रमार्ज्जना संबंधी न्यूनाधिक विपरीत पडिलेहणा संबंधी और आहार विहार आदि अनेक प्रकार के कर्त्तव्यों मे सख्यात, असंख्यात और निगोद आसरी अनन्त जीवों के जितने प्राण लूटे उन सब जीवो का मैं पापी अपराधी हू, निश्चय करके बदले का देनदार हूं, सब जीव मेरे प्रति माफ करो, मेरी भूल चूक अवगुण अपराध सब माफ करो।

देवसी रायसी पक्खी चउमासी और सम्वत्सरी सम्बन्धी वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं, वारम्बार मैं खमाता हूं वे सव जीव मुझे क्षमा करें।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥

वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं छ: काय के वैर वदले से निवृत्त होऊंगा, समस्त चौरासी लाख जीवा योनि को अभयदान देऊंगा वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा।

—दोहा—

सुख दियां सुख होत है, दु:ख दियां दु.ख होय।
आप हणे नही अवर कूं, आप कूं हणे न कोय ॥

दूजा पाप मृषावाद—झूठ वोलना। क्रोध के वश, मान के वश, माया के वश, लोभ के वश, हास्य करके, भय के वश, मृषा (झूठ) वचन वोला, निन्दा विकथा की, कर्कश कठोर मर्म वचन वोला, इत्यादि अनेक प्रकार से मृषावाद झूठ बोला, वुलवाया और अनुमोदा, उनका मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं।

—दोहा—

थापनमोसा मैं किया, करी विश्वासघात।
परनारी धन चोरीया, प्रकट कह्यो नहीं जात ।।

वह मुझे धिक्कार धिक्कार वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं। वह दिन धन्य होवेगा जिस दिन मैं सर्व प्रकार से मृषावाद का त्याग करूंगा, वह दिन मेरा कल्याणरूप होवेगा।

तीसरा पाप अदत्तादान—विना दी हुई वस्तु चोरी करके लेना। यह बड़ी चोरी लौकिक विरुद्ध है। अल्प चोरी मकान सम्वन्धी अनेक प्रकार के कर्तव्यों मे उपयोग सहित या विना उपयोग से अदत्तादान, चोरी मन वचन काया से की, कराई और अनुमोदी तथा धर्म सम्वन्धी ज्ञान दर्शन चारित्र और तप श्री भगवन्त गुरुदेव की विना आज्ञा किया उसका मुझे धिक्कार धिक्कार वारम्वार मिच्छामि दुक्कड। वह दिन मेरा धन्य होगा जिस दिन सर्व प्रकार से अदत्तादान का त्याग करूंगा वह दिन मेरा परम कल्याण का होवेगा।

चौथा पाप मैथुन सेवन करना – मैथुन सेवन करने के लिये मन वचन और काया का योग प्रवर्ताया, नववाड़ सहित ब्रह्मचर्य नही पाला, नववाड़ मे अशुद्धपन में प्रवृत्ति हुई, मैंने सेवन किया, दूसरो से सेवन करवाया और सेवन करने वाले को अच्छा समझा, उसका मन वचन काया से मुझे धिक्कार धिक्कार वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं। वह दिन मेरा धन्य होगा जिस दिन मैं नववाड़ सहित ब्रह्मचर्य-शील-रत्न आराधूंगा। यानि सर्वथा प्रकार से काम विकार से निवर्तूंगा वह दिन मेरा परम कल्याण का होवेगा।

पांचवा परिग्रह—सचित्त परिग्रह तो दास दासी द्विपद चतुष्पद (पशु) आदि अनेक प्रकार के और अचित्त परिग्रह सोना चांदी वस्त्र आभूषण आदि अनेक प्रकार के हैं उनकी ममता मूर्च्छा की, क्षेत्र घर आदि नव प्रकार के बाह्य परिग्रह और चौदह प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह को रखा, रखवाया और अनुमोदा तथा रात्रि भोजन अभक्ष्य आहारादि सम्वन्वी पाप दोष सेव्या होय तो उसका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्वार मिच्छामि दुक्कडं। वह दिन मेरा

धन्य होवेगा जिस दिन सब प्रकार से परिग्रह का त्याग कर संसार के प्रपंच से निवर्तूंगा, वह दिन मेरा परम कल्याण रूप होवेगा।

छठा क्रोध—क्रोध करके अपनी आत्मा को तथा पर आत्मा को दुःखी की।

सातवां मान—अहंकार भाव लाया, तीन गारव और आठ मद आदि किया।

आठवां माया—धर्म सम्बन्धी तथा संसार सम्बन्धी अनेक कर्त्तव्यो में कपट किया।

नवमा लोभ—मूर्च्छा भाव लाया, आशा तृष्णा वाच्छा आदि की।

दसवां राग—मनपसन्द वस्तु से स्नेह किया।

ग्यारहवां द्वेष—अपसन्द वस्तु देख कर उस पर द्वेष किया।

बारहवां कलह—अप्रशस्त (खराब) वचन बोल कर क्लेश उत्पन्न किया।

तेरहवां अभ्याख्यान—झूठा कलंक दिया।

चौदहवां पैशुन्य—दूसरे की चुगली की।

पन्द्रहवा परपरिवाद—दूसरे का अवगुणवाद (निन्दावाद) बोला।

सोलहवां रति अरति—पांच इन्द्रिय के २३ विषय और २४० विकार हैं, इनमे मन के पसन्द पर राग किया और अपसन्द पर द्वेष किया तथा सयम तप आदि पर अरति की तथा आरंभादिक असयम प्रमाद मे रति भाव किया।

सतरहवां माया मृषावाद—कपट सहित झूठ बोला।

अठारहवां मिथ्यादर्शनशल्य—श्री जिनेश्वर देव के मार्ग मे शंका कंखा आदि विपरीत प्ररूपणा की। यहां १८ पाप स्थानो की आलोचना विशेष विस्तार पूर्वक अपनी इच्छानुसार करनी चाहिये।

इस प्रकार अठारह पापस्थान द्रव्य से क्षेत्र से काल से भाव से जानते अजानते मन वचन और काया से सेवन किया, कराया और अनुमोदा, दिवा

वा राई वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा इस भव में पहिले के संख्यात, असंख्यात, अनन्त भवों में भवभ्रमण करते आज दिन तक राग द्वेष विषय कषाय आलस प्रमाद आदि पौद्गलिक प्रपंच परगुणपर्याय की विकल्प भूल की, ज्ञान की विराधना की, दर्शन की विराधना की, चारित्र की विराधना की, चारित्राचारित्र की, तप की विराधना की, शुद्ध श्रद्धा शील सन्तोष क्षमा आदि निज स्वरूप की विराधना की, उपशम, विवेक, संवर, सामायिक, पौषध, पडिक्कमणा, ध्यान, मौन आदि व्रत पच्चक्खाण दान शील तप वगैरह की विराधना की, परम कल्याणकारी इन बोलों की आराधना पालनादिक मन वचन और काया से नही की, नही कराई और नहीं अनुमोदी। छह आवश्यक को सम्यक् प्रकार विधि उपयोग सहित आराधा नही, पाला नही, फरसा नही, विधि उपयोग रहित निरादरपने से किया किन्तु आदर सत्कार भाव भक्ति सहित नही किया, ज्ञान के चौदह, समकित के पांच, बारह व्रतों के साठ, कर्मादान के पन्द्रह, संलेखणा के पांच ऐसे निन्नाणवे अतिचारो में तथा १२४ अतिचारो मे तथा साधुजी के १२५ अतिचारो मे तथा बावन अनाचार का श्रद्धानादिक मे विराधना आदि जो कोई अतिक्रम व्यक्तिक्रम अतिचार आदि सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा जानते अजानते मन वचन काया से उनका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं।

मैंने जीव को अजीव श्रद्धया, प्ररूप्या, अजीव को जीव श्रद्धया प्ररूप्या, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म श्रद्धया प्ररूप्या तथा साधुजी को असाधु और असाधु को साधु श्रद्धया प्ररूप्या तथा उत्तम पुरुष साधु मुनिराज महासतियाजी की सेवा भक्ति मान्यता आदि यथा विधि नहीं की, नही कराई, नहीं अनुमोदी तथा असाधुओ की सेवा भक्ति मान्यता आदि का पक्ष किया, मुक्तिमार्ग में संसार का मार्ग यावत् पच्चीस मिथ्यात्व में किसी मिथ्यात्व का सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा मन वचन और काया से, पच्चीस कषाय सम्बन्धी, पच्चीस क्रिया सम्बन्धी, तेतीस आशातना सम्बन्धी, ध्यान के १९ दोष, वन्दना के ३२ दोष, सामायिक के ३२ दोष, पौषध के १८ दोष सम्बन्धी मन वचन

और काया से जो कोई पाप दोष लगा, लगाया, अनुमोदा उसका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं । महामोहनीय कर्मबन्ध के तीस स्थानों को मन वचन और काया से सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा शील की नववाड तथा आठ प्रवचन माता की विराधनादि, श्रावक के इक्कीस गुण और बारह व्रत की विराधनादि मन वचन और काया से की, कराई, अनुमोदी तथा तीन अशुभ लेश्या के लक्षणो की और बोलो की विराधना की चर्चा वार्ता वगैरह मे श्री जिनेश्वर देव का मार्ग लोपा, गोपा, नही माना, अछते की थापना की, छते की थापना नही की और अछते का निषेध नही किया, छते की थापना और अछते का निषेध करने का नियम नही किया, कलुषता की तथा छ प्रकार के ज्ञानावरणीय बन्ध का बोल, ऐसे ही छ प्रकार के दर्शनावरणीय बन्ध का बोल, आठ कर्म की अशुभ प्रकृति वध का बोल, पचपन कारणो से पाप की बयासी प्रकृति बांधी, बंधाई, अनुमोदी, मन वचन काया करके उनका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं । एक एक बोल से लगा कर कोड़ाकोड़ी यावत् संख्याता असंख्याता अनन्ता अनन्त बोलो मे से जानने योग्य बोलों को सम्यक् प्रकार जाना नही, श्रद्धया नही, प्ररूप्या नही, तथा विपरीत-पने से श्रद्धा आदि की, कराई, अनुमोदी, मन वचन काया से उनका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं ।

एक एक बोल से यावत् अनन्ता बोलो मे छोड़ने योग्य बोल को छोड़ा नही, उनको मन वचन काया से सेवन किया, सेवन कराया और अनुमोदा उनका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं । एक एक बोल से लगा कर जाव अनन्तां अनन्त बोलो मे आदरने योग्य बोलों को आदरा नही, आराधा नही, पाला नही, फरसा नही, विराधना खंडना आदि की, कराई, अनुमोदी, मन वचन काया से उनका मुझे धिक्कार धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं । श्री जिन भगवन्तजी महाराज आपकी आज्ञा मे जो जो प्रमाद किया और सम्यक् प्रकार उद्यम नही किया, नही कराया, नहीं अनुमोदा मन वचन काया करके तथा अनाज्ञा मे उद्यम किया, कराया, अनुमोदा, एक अक्षर के

अनन्तवें भाग मात्र दूसरा कोई स्वप्नमात्र में भी श्री भगवन्त महाराज आपकी आज्ञा से न्यूनाधिक विपरीत प्रवर्ता होऊं तो उनका मुझे धिक्कार धिक्कार वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं ।

---

१. श्रद्धा अशुद्ध प्ररूपणा, करी फरसना सोय ।
अनजाने पक्षपात मे, मिच्छा दुक्कडं मोय ।।

२. सूत्र अर्थ जानूं नही, अल्पवुद्धि अनजान ।
जिनभाषित सव शास्त्र का, अर्थ पाठ परमाण ।।

३. देव गुरु धर्म सूत्र कूं, नव तत्वादिक जोय ।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कडं मोय ।।

४. हूं मगसेलीयो[1] हो रह्यो, नहीं ज्ञान रस भीझ ।
गुरु सेवा न करी सकूं, किम मुझ कारज सीझ ।।

५. जाने देखे जे सुने, देवे सेवे मोय ।
अपराधी उन सबन का, वदला देसूं सोय ।।

६. गवन करूं वुगचा रतन, दरव भाव सव कोय ।
लोकन मे प्रगट करूं, सूई पाई मोय ।।

७. जैनधर्म शुद्ध पाय के, वरते विषय कषाय ।
एह अचंभा हो रह्या, जल में लागी लाय ।।

८. जितनी वस्तु जगत में, नीच नीच में नीच ।
सब से मैं पापी बुरो, फसूं मोह के बीच ।।

९. एक कनक अरु कामिनी, दो मोटी तलवार ।
उठयो थो जिन भजन कूं, विच मैं लीयो मार ।।

१० मैं महापापी छांड के संसार छार, छार ही का विहार करूं,
अगला कुछ धोय कीच फेर कीच वीच रहूं, विषय सुख चाहूं मन्न,
प्रभुता बवारी है । करत फकीरी ऐसी,
अमीरी की आश करूं, काहे कूं धिक्कार सिर पगड़ी उतारी है ।

११. त्याग न कर संग्रह करू, विषय वचन जिम आहार।
तुलसी ए मुझ पतित कूं बारम्बार धिक्कार॥

१२. राग द्वेष दो बीज है, कर्म बंध फल देत।
इनकी फासी मे बंध्यो, छूटू नही अचेत॥

१३. रतन बंध्यो गठड़ी विषे, भानु छिप्यो घन मांय।
सिंह पिंजरा मे दियो, जोर चले कछु नाय॥

१४. बुरा बुरा सब को कहू, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूं आपणो तो मोसूं बुरा न कोय॥

१५. कामी कपटी लालची, कठिन लोह को दाम।
तुम पारस परसग थी, सुवर्ण थासूं स्वाम॥

१६ मैं जपहीन हूं तपहीन हू, प्रभु हीन सबर समगतं। हे दयाल!
कृपाल करुणानिधि, आयो तुम शरणागत। प्रभु आयो तुम शरणागत।

१७. नही विद्या नही वचन बल, नही धीरज गुण ज्ञान।
तुलसीदास गरीब की, पत राखो भगवान्॥

१८. विषय कषाय अनादि को, भरियो रोग अगाध।
वैद्यराज गुरु शरण से, पाऊ चित्त समाध॥

१९. कहवा मे आवे नही, अवगुण भरिया अनन्त।
लिखवा मे क्यो कर लिखूं, जाणो श्री भगवन्त॥

२०. आठ कर्म प्रबल करी, भमियो जीव अनादि।
आठ कर्म छेदन करी, पावे मुक्ति समाधि॥

२१. पथ कुपथ कारण करी, रोग हानि वृद्धि थाय।
इम पुण्य पाप किरिया करी, सुख दु:ख जग मे पाय॥

२२. बाध्या विन भुगते नही, बिन भुगत्यां न छुटाय।
आपही करता भोगता, आपे दूर कराय॥

२३. सुसाया से अविवेक हूं, आख मीच अधियार।
मकड़ी जाल बिछाय के, फसूं आप धिक्कार॥

२४. सर्व भक्षी जिम अग्नि हूं, तपियो विषय कषाय।
अपच्छंदा अविनीत मैं, धर्मी ठग दुःख दाय ॥

२५. कहा भयो घर छाड़ि के, तजियो न माया संग।
नाग तजी जिम कांचली, विष नहीं तजियो अंग ॥

२६. आलस विषय कषाय वश, आरम्भ परिग्रह काज।
योनि चौरासी लख भम्यो, अब तारो महाराज ॥

२७. आतम् निन्दा शुद्ध भणी, गुणवन्त वन्दन भाव।
राग द्वेष उपशम करी, सब से खमत खिमाव ॥

२८. पुत्र कुपुत्रज मैं हुओ, अवगुण भरया अनन्त।
या हित वृद्धि विचार के, माफ करो भगवन्त ॥

२९. शासनपति वर्द्धमानजी, तुम लग मेरी दौड़।
जैसे समुद्र जहाज बिन, सूझत और न ठौर ॥

३०. भव भ्रमण संसार दुःख, ताका वार न पार।
निर्लोभी सतगुरु बिना, कौन उतारे पार ॥

३१. भव सागर ससार मे, दीपा श्री जिनराज।
उद्यम करि पहुंचे तीरे, बैठो धर्म जहाज ॥

३२. पतित उद्धारण नाथजी, अपनो विरुद विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार ॥

३३. माफ करो सब मांहरा, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील सन्तोष ॥

३४. देव अरिहंत गुरु निर्ग्रन्थ, संवर निर्जरा धर्म।
केवलि भाषित सासतर, यही जैन मत मर्म ॥

३५. इस अपार संसार में, शरण नही अरु कोय।
या ते तुम पद कमल ही, भक्त सहायी होय ॥

३६. छूटूं पिछला पाप से, नवा न बंधूं कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ॥

३७ आरम्भ परिग्रह तजी करी, समकित व्रत आराध ।
अन्त अवसर आलोय के, अनशन चित्त समाध ।।

३८. तीन मनोरथ ए कह्या, जे ध्यावे नित्य मन्न ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख धन्न ।।

श्री पंच परमेष्ठी भगवन्त गुरुदेव महाराजजी आपकी आज्ञा है सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र तप संयम संवर निर्जरा मुक्ति मार्ग यथा शक्ति से शुद्ध उपयोग सहित आराधने पालने फरसने सेवने की आज्ञा है, बारम्बार शुभयोग सम्बन्धी सज्झाय ध्यानादिक अभिग्रह नियम पच्चक्खाणादिक करने कराने की समिति गुप्ति प्रमुख सर्व प्रकारे आज्ञा है ।

१. निश्चय चित्त शुद्ध मुख पढ़त, तीन योग थिर थाय ।
दुर्लभ दीसे कायरा, हलुकर्मी चित भाय ।।

२. अक्षर पद हीणो अधिक, भूल चूक कही होय ।
अरिहन्त सिद्ध आतम साख से, मिच्छा दुक्कडं मोय ।।
भूल चूक मिच्छामि दुक्कडं ।

---

(१४३)

'आलोयणा'

हो नाथ जी ! पाप आलोऊं पाछला
केई भातरा, दिन रातरा

१. किया पंचेन्द्रिय विनाश, मार्या गल देई पाश, घणा खाया मद मास ।
दीनानाथजी ! सुणो बात जी, जोडूं हाथ जी,
ते मुझ मिच्छामि दुक्कडं ।।टेर।।

२, हो नाथ जी ! लूट्या छः कायारा प्राण ने, केई जाण ने, केई अजाण ने ।
नहीं जाणी पर पीड़ा, दाब्या कुन्थुआ ने कीड़ा,
चाव्या पानाहन्दा बीड़ा—दीनानाथजी ॥

३. हो नाथ जी ! वनस्पति तीन जातरी, केई भांतरी, छमकी सांतरी ।
छेद्या पान फल फूल, सेक्या गाजर कन्द मूल,
भर्या लूण अनुकूल—दीनानाथजी ॥

४. अहो नाथजी ! आचार कीना हाथ सूं, चीर्या दांत सूं, घणी खात सूं ।
मांहे घाल्या है मसाला, खाया भर भर प्याला,
आया लीलण फूलण जाला—दीनानाथजी ॥

५. अहो नाथजी ! पाणी उलीच्या तलाव रा, कूआ वावड़ी, नदी नाव रा ।
फोड़ी सरवरिया री पाल, तोड़ी तरवरिया री डाल,
वरफ गड़ा दिया गाल—दीनानाथजी ॥

६. अहो नाथजी ! अधर आकाशरा झेलिया, भर भर मेलिया,
ऊना ठण्डा भेलिया ।
अर्थे अनर्थे दिया ढोल, कीनो अणगल सु अंगोल,
जाणे माण्डी भैंसा रोल—दीनानाथजी ॥

७. अहो नाथजी ! माता सु पुत्र विछोहिया, घणा-रोइया, दूधां धोइया ।
कोस्या नानडिया रा बाल, पर पेटां वाली झाल,
तोड्या पंखीड़ारा माल—दीनानाथजी ॥

८. अहो नाथजी ! जूं माकड़ ने माखियां, रोकी राखिया रास्ते नांखियां ।
तड़के मांचा दिया मेल, मांथे ऊनां पाणी ढोल,
आगे होसी घणी हेल—दीनानाथजी ॥

९. अहो नाथजी ! सियाले सिगड़ी करी, खीरां भरी, चौडे धरी ।
माय पड़ पड़ मरिया जीव, पाप किया निश दीव,
दीनी नरकां केरी नीव—दीनानाथजी ॥

१०. अहो नाथजी ! उनाले वायु बिजाविया, फूल बिछाविया,
जल सीचाविया ।
कीनी बागां मांही गोठ, खाया चूरमा ने रोठ,
बांधी पाप तणी पोट—दीनानाथजी ।।

११. अहो नाथजी ! चौमासे हल हाकिया, बैल भूखा राखिया,
मार्या चाबख्या ।
फोड्या जमी तणा पेट, माये सांप सपलेट,
दया नही आणी ढेट—दीनानाथजी ।।

१२. अहो नाथजी ! जूना नवा कर बेचिया, सुलिया सचिया, नही सोचिया ।
अणजोया लिया पीस, ईल्यां मांरी दस बीस,
आगे रोसी देई चीस—दीनानाथजी ।।

१३. अहो नाथजी ! दूध दही आछ चाछना, शरबत दाखनां, केरी पाकना ।
घाली बरतन तेल, लिया उघाड़ा ई मेल,
कीडीया आई रेल पेल—दीनानाथजी ।।

१४. अहो नाथजी ! कूड़ कपट छल ताकिया, छाने राखिया, नही भाखिया ।
मुख बोले घणी झूठ, धाडा पाड़ लिया लूट,
जन्म मंत्र मारी मूठ—दीनानाथजी ।।

१५. अहो नाथजी ! परनारी धन चोरिया, खेली होलिया, गाई डोरिया ।
देख्या तमाशा ने तीज, ताल्या पीटी होई हीज,
गाल्यां गाई घणी रीझ—दीनानाथजी ।।

१६. अहो नाथजी ! अवगुणवाद गुरा तणा, बोल्याघणा, असुहावणा ।
दु:ख दिया मैं अज्ञानी निन्दा कीनी छानी छानी,
नही दीनो अन्न पानी—दीनानाथजी ।।

१७. अहो नाथजी ! भोजन भली भली भातरा, आधी रातरा खाया सातरा ।
पिया अणछाण्या इ पानी, मन, करुणा नही आणी,
पर पीड़ा न पिछाणी—दीनानाथजी ।।

१८. अहो नाथजी ! सासु शोक सुवासणी, पाडोसण भणी, सताई घणी।
मुख सूं बोली मीठी गाल, कई कूड़ा दिया आल,
चाली छलकारी चाल—दीनानाथजी ॥

१६. अहो नाथजी ! संशय या म्हें मोटका केई छोटका, हुआ खोटका।
करी छाने राख्या पाप, सो तो देख रह्या आप,
म्हारे थे ही माय वाप—दीनानाथजी ॥

२०. अहो नाथजी ! स्त्री सूं भांत पड़ाविया, गर्म गलाविया,
जीव जलाविया।
मारी जूं फोड़ी लीख, वेठी पापी रे नजीक,
नही मानी गुरु सीख—दीनानाथजी ॥

२१. अहो नाथजी ! थापण राखी पार की, केई हजार की, साहूकार की।
देता किया सिर पीठ, मांग्यां कह्यो गयो नीठ,
लिया समूचाई गिट—दीनानाथजी ॥

२२. अहो नाथजी ! तप जप संयम शील री, देता दान री, भणता ज्ञानरी।
दीनी मोटी अन्तराय, तेतो भुगती नही जाय,
पडियो करसी हाय हाय—दीनानाथजी ॥

२३. अहो नाथजी ! मात पिता गुरु देवां तणो, अविनय पणो, कियो घणो।
वसियो चौरासी रे मांय, ज्यासुं कियो वैर भाव,
खमो खमो चित चाव—दीनानाथजी ॥

२४. अहो नाथजी ! सार करी ने संभारज्यो, मती विसारज्यो,
पार उतारज्यो।
संवत् ऊगणीसे वासठ, झाको मती करो हठ,
दर्शन दीज्यो अव झठ—दीनानाथजी ॥

२५. अहो नाथजी ! आलोयणा इम कीजिए, मिच्छामि दुक्कड़ं दीजिए,
करम छीजिए।
जयपुर माहे "जड़ाव" आणी उज्जल भाव,
ढ़ाल कीनी धर चाव—दीनानाथजी ॥

(१४४)

अनगारी संलेखना

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायाञ्च नि.प्रतीकारे ।
धर्मार्थे तनुविमोचनमाहु. सलेखनामार्याः ।।
—(रत्नकरण्डकश्रावकाचार)

अर्थात्—प्राणान्तकारी उपसर्ग के आने पर, अन्न-पानी की प्राप्ति न हो सके ऐसे दुर्भिक्ष के पड़ने पर, वृद्धावस्था के कारण, शरीर के अत्यन्त ही जीर्ण हो जाने पर, असाध्य रोग उत्पन्न हो जाने पर, इस प्रकार का संकट आ जाने पर कि जब प्राण बचने का कोई उपाय न हो—तब, अथवा निमित्त ज्ञान आदि के द्वारा अपनी आयु का निश्चित रूप से अन्त समीप आया जान कर, प्राणान्त सकट के उपस्थित होने पर अथवा अपने धर्म की रक्षा के लिए उद्यत होने के फल-स्वरूप प्राणान्त निकट जानकर शरीर के त्याग करने का नाम संलेखना तप है । इस विषय मे गणधरो ने कहा है—

सलेहणा हि दुविहा, अब्भन्तरिया य वाहिरा चेव ।
अब्भन्तरा कसाएसु, बाहिरा होइ हु सरीरे ।।२११।।
—(भगवती आराधना)

अर्थात्—क्रोध आदि कषायो का त्याग करना आभ्यन्तर सलेखना है और शरीर का त्याग करना बाह्य संलेखना है । इस प्रकार सलेखना दो तरह की है ।

संलेखना की विधि—संलेखना को 'अपच्छिम मरणतिय सलेहणा झूसणा आराहणा' भी कहते है । जब मृत्यु निकट आ जाय तो उसे सुधारने के लिए धर्म सेवन पूर्वक शरीर का त्याग करने के लिए सावधान हो जाना चाहिए । जिनकी मनोकामना ससार के कामो से निवृत्त हो गई है, अर्थात् जिन्हे अब संसार का कोई भी कार्य नही करना है, वही आत्मार्थ साधन करने के लिए अर्थात् संथारा करने के लिए तैयार हो सकते हैं । जो सलेखना

करने को उद्यत हुआ है उसका कर्त्तव्य है कि—पहले इस भव मे सम्यक्त्व और व्रतों को ग्रहण करने के पश्चात् सम्यक्त्व में और व्रतों में जो जो अतिचार लगे हों, उनकी उपयोगपूर्वक गवेषणा करे। अतिचारों की गवेषणा करने पर स्ववश, परवश या मोहवश जो जो अतिचार लगे हों, उन सब छोटे-बड़े अतिचारो की आलोचना करने के लिए आचार्य, उपाध्याय अथवा साधु, जो उस अवसर पर निकट में विराजमान हों, उनके समक्ष निवेदन कर दें। कदाचित आलोचना सुनने योग्य साधु मौजूद न हों तो गम्भीरता आदि गुणों से युक्त साध्वीजी के सामने अपने दोषों को प्रकट करे। अगर साध्वीजी का योग भी न मिले तो उक्त गुणयुक्त श्रावक के समक्ष और श्रावक भी मौजूद न हो तो श्राविका के सामने अपने दोषों को प्रकट कर दे। कदाचित् श्राविका भी न हो तो जंगल में जाकर पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर मुख करके, सीमन्धर स्वामी को नमस्कार करके, हाथ जोड़ कर खड़ा हो और पुकार कर कहें—"प्रभो ! मैंने अमुक-अमुक अनाचीर्ण का आचरण किया है, मैं अपनी समझ के अनुसार उसका प्रायश्चित आपकी साक्षी से स्वीकार करता हूं अगर वह न्यून या अधिक हो तो 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं'।

इस प्रकार निशल्य होकर फिर संथारा करे। जैसे काले रंग का कोयला आग मे पड़ कर श्वेत वर्ण की राख के रूप मे परिणत हो जाता है, उसी प्रकार सथारा रूपी अग्नि मे झोंकने से आत्मा भी पाप की कालिमा को त्याग कर उज्ज्वल हो जाती है। अतएव संथारा करने के इच्छुक साधक को ऐसे स्थान पर जाना चाहिए जहां खान-पान भोग-विलास के पदार्थ विद्यमान न हों, संसार-व्यवहार सम्बन्धी शब्द और दृश्य सुनने तथा देखने में न आवें। जहां त्रस एवं स्थावर जीवो की हिंसा होने की सम्भावना न हो। ऐसे उपाश्रय, पौषधशाला आदि स्थानो मे अथवा जंगल, पहाड़, गुफा आदि स्थानों मे जायं। वहां जाकर जहां चित्त की समाधि का योग हो ऐसे शिला आदि स्थानो को रजोहरण से आहिस्ते-आहिस्ते प्रमार्जन करे। कचरे को किसी पाटी आदि पर ले ले और निर्जीव जगह देख कर विधिपूर्वक परठ दे। फिर

लघुनीति और बड़ी नीति, श्लेष्म और पित्त आदि को परठने की भूमिका का प्रतिलेखन करे। वह भूमि हरितकाय, अंकुर, चीटी आदि के बिल वगैरह से रहित होनी चाहिए। उसे सूक्ष्म दृष्टि से देख कर फिर संथारा करने की जगह आ जाय।

इतना सब कर चुकने के पश्चात् प्रतिलेखन और प्रमार्जन करने मे तथा गमन-आगमन करने में जो पाप लगा हो, उसकी निवृत्ति के लिए पूर्वोक्त विधि के अनुसार 'इच्छाकारेण' का तथा 'तस्सउत्तरी' का पाठ कह कर 'इच्छाकारेण' का कायोत्सर्ग करे, तत्पश्चात् 'लोगस्स' का पाठ बोले। फिर निम्नलिखित शब्द कहे—प्रतिलेखना मे पृथ्वीकाय आदि किसी भी काय की विराधना की हो या कोई भी दोष लगा हो तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।'

इसके पश्चात् अगर शरीर कष्ट सहन करने मे समर्थ हो तो जमीन पर या शिला पर बिछौना करके उस पर सथारा करे। अगर शरीर असमर्थ प्रतीत हो तो गेहू, चावल, कोद्रव, राल आदि, पराल या घास, जो साफ और सूखा हो और जिसमे धान्य के दाने बिलकुल न हो, मिल जाय तो उसे लाकर उसका ३।। हाथ लम्बा और सवा हाथ चौडा बिछौना करे। उसे श्वेत वस्त्र से ढक कर उसके ऊपर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके, पर्यङ्क आसन (पालथी मार कर) आदि किसी सुखमय आसन से बैठे। अगर बिना सहारे बैठने की शक्ति न हो तो भीत (दीवार) आदि किसी वस्तु का सहारा लेकर बैठे। अथवा लेटे-लेटे ही इच्छानुसार आसन करे। फिर दोनो हाथ जोड कर दसो अंगुलियां एकत्र करे। जिस प्रकार अन्य मतावलम्बी आरती घुमाते हैं, उसी प्रकार जोड़े हुए हाथो को दाहिनी ओर से बाईं ओर उतारते हुए तीन बार घुमावे। फिर मस्तक पर स्थापित करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित 'नमुत्थु णं' के पाठ का उच्चारण करे:—

नमुत्थु णं—नमस्कार हो
अरिहंताणं भगवंताणं—अरिहन्त भगवान् को
आइगराणं—धर्म की आदि करने वाले

तित्थयराणं—तीर्थ की स्थापना करने वाले
सयं संवुद्धाणं—स्वयं ही वोध को प्राप्त
पुरिसुत्तमाणं—पुरुषो में उत्तम
पुरिससीहाणं—पुरुषों मे सिंह के समान
पुरिसवरपुंडरीयाणं—पुरुषों में प्रधान पुण्डरीक कमल के समान
पुरिसवरगंधहत्थीण—पुरुषो मे गंधहस्ती के समान
लोगुत्तमाणं—लोक में उत्तम
लोगनाहाण—लोक के नाथ
लोगहियाणं—लोक के हितकर्त्ता
लोगपईवाण—लोक मे दीपक के समान प्रकाश करने वाले
लोगपज्जोयगराण—लोक मे उद्योत करने वाले
अभयदयाण—अभयदान के दाता
चक्खुदयाणं—ज्ञान रूप चक्षु के देने वाले
मग्गदयाण—मोक्ष-मार्ग के दाता
सरणदयाणं—शरणदाता
जीवदयाणं—जीवन दान देने वाले
वोहिदयाणं—वोधि वीज-सम्यक्त्व के दाता
धम्मदयाणं—धर्म के दाता
धम्मदेसयाणं—धर्म का उपदेश करने वाले
धम्मनायगाणं—धर्म के नायक
धम्मसारहीण—धर्म रूपी रथ के सारथी
धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं—धर्म की चारों दिशाओ का शासन करने वाले चक्रवर्ती के समान
दीवो ताणं सरण गइ-पइट्ठाणं—द्वीप के समान, शरणभूत, गतिरूप और प्रतिष्ठा रूप
अप्पडिहयवरणाणंदंसणधराणं—अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक

विअट्टछउमाणं—छद्म (कषाय) से सर्वथा निवृत्त

जिणाणं—राग द्वेष आदि शत्रुओ को स्वयं जीतने वाले

जावयाण—दूसरो को जिताने वाले

तिण्णाणं—स्वयं संसार सागर से तिरे हुए

तारयाण—दूसरो को तारने वाले

बुद्धाणं—स्वय तत्त्व के ज्ञाता

बोहियाणं—दूसरो को तत्त्वज्ञान देने वाले

मुत्ताणं—स्वयं कर्मों से छूटे हुए

मोयगाणं—दूसरों को कर्मों से छुड़ाने वाले

सव्वन्नूणं—सर्वज्ञ

सव्वदरिसीणं—सर्वदर्शी, तथा

सिवमयलमरुअं—उपद्रवरहित, अचल और रोगहीन

अणंतमक्खय—अनन्त और अक्षय

अव्वावाहमपुणराविति—बाधा रहित तथा पुनर्जन्म से रहित

सिद्धिगइनामधेयं ठाण—सिद्धिगति नामक स्थान को

संपत्ताणं—प्राप्त हुए

नमो जिणाणं—जिन भगवान् को नमस्कार हो

जीय भयाणं—जीवो को अभय देनेवाले

यह 'नमुत्थुण' सिद्ध भगवान् के लिए कहा। इसी प्रकार दूसरी बार अरिहन्त भगवान् के लिए कहना चाहिए। अन्तर यह है कि 'ठाणं सपत्ताणं' की जगह 'ठाणं संपाविउकामाणं' ऐसा बोलना चाहिए। इसका अर्थ है—'सिद्धि स्थान को प्राप्त होने वालो को।' फिर 'नमुत्थुण मम धम्मगुरु-धम्मायरिय धम्मोवदेसगस्स जाव संपाविउकामस्स' अर्थात् मेरे धर्मगुरु, धर्माचार्य और धर्मोपदेशक यावत् मोक्ष प्राप्त करने के अभिलाषी आचार्य महाराज को नमस्कार हो।

इस प्रकार वन्दना-नमस्कार करके, पूर्व में आचरण किये हुए सम्यक्त्व और व्रतों मे आज इस समय तक, जानते-अजानते, स्ववश, परवश भी कोई अतिचार लगा हो, उसकी आलोचना-विचारणा करके उससे निवृत्त होता हूं। आत्मा की साक्षी से उसकी निन्दा करता हूं, गुरु की साक्षी से उसकी गर्हा करता हूं।

इस तरह कह कर भविष्य के लिए प्रत्याख्यान करता हूं। माया, मिथ्यात्व और निदान, इन तीनो शल्यो का सर्वथा परित्याग करता हूं इस प्रकार अपने अन्त.करण को पूरी तरह निर्मल बनाकर 'सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि' अर्थात् हिसा का सर्वथा त्याग करता हूं, 'सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि' मृषावाद का सर्वथा त्याग करता हूं, 'सव्वं अदिण्णादाणं पक्चक्खामि' अदत्तादान का सर्वथा त्याग करता हूं, 'सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि' मैथुन का सर्वथा त्याग करता हूं, 'सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, परिग्रह का सर्वथा त्याग करता हूं, 'सव्वं कोहं माण मायं लोहं पच्चक्खामि' अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ का सर्वथा त्याग करता हूं, 'रागद्दोसं, कलहं, अब्भक्खाणं, पेसुन्न' परपरिवायं, रइमरइं, मायामोसं, मिच्छादंसणसल्लं, अकरणिज्जं, जोगं पच्चक्खामि' सब राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति, अरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शनशल्य और अकरणीय योग का प्रत्याख्यान करता हूं। 'जावज्जीवं तिविह तिविहेण' जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से, 'न करेमि न कारवेमि, करंत पि अन्न न समणुजाणामि मणसा, वयसा कायसा' अर्थात् उक्त अठारह ही पापो का सेवन न करूंगा, न कराऊंगा और न करने वाले की अनुमोदना करूंगा; मन से, वचन से काय से। इस तरह अठारह ही पापो का त्याग करता हू।

तत्पश्चात्—'सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइम चउव्विह पि आहारं पच्चक्खामि' अर्थात् सर्वथा प्रकार से–विना किसी आगार के अन्न, पानी पक्वान्न, मुखवास का तथा (पि-अपि शब्द से) सूंघने की वस्तु का, आंख में

डालने के अंजन आदि का भी प्रत्याख्यान करता हूं। इस तरह चारों ही प्रकार के आहार का सर्वथा परित्याग कर देता हूं।

आहार का त्याग करने के पश्चात् निम्नलिखित पाठ का उच्चारण करके शरीर का भी प्रत्याख्यान कर देता हूं :—

जं पि यं इम सरीरं—यह जो मेरा शरीर
इट्ठ—इष्ट रहा
कंतं—सती को पति के समान वल्लभ रहा है
पियं—प्यारा
मणुण्णं—मनोज्ञ
मणाम—मनोरम
धिज्ज—धैर्यदाता
विसासियं—विश्वसनीय
सम्मयं—माननीय
बहुमयं—लोभी को धन के समान बहुत माननीय
अणुमय—अनुमत-दुर्गुणी समझ कर भी भला माना
भंडकरंडगसमाणं—जिसे आभूषणो की पेटी की तरह हिफाजत से रक्खा
रयणकरंडगभूयं—रत्नो के पिटारे के समान माना, (और जिसके विषय मे यह सावधानी रक्खी कि—)
मा णं सीया—इसे सर्दी न लग जाय
मा णं उण्हा—गर्मी न लग जाय
मा ण खुहा—भूख का कष्ट न हो
मा णं पिवासा—प्यास का कष्ट न हो
मा ण वाला साप (आदि विषैला कीडा) न काट खाय
मा णं चोरा—चोर (आदि) कष्ट न पहुचावे
मा णं दंसमसगा—डांस-मच्छर न काटे

मा णं वाहियं पित्तियं—वात पित्त
कप्फियं संभीयं सन्निवाइयं—कफ, श्लेष्म, सन्निपात आदि
विविहा रोगायंका परिसहा उवसग्गा—विविध प्रकार के रोगों और
आतंकों, परीषहों और उपसर्गों तथा अप्रिय
फासा फुसंतु—स्पर्शों का संयोग न हो (उसी शरीर को अब)
चरमेहिं उस्सासनीसासेहि वोसिरामि—अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त
त्याग करता हूं अर्थात् शारीरिक ममत्व का त्याग करता हूं
कालं अणवकंखमाणे—जल्दी मृत्यु हो जाय, ऐसी इच्छा न करता हुआ
विहरामि—विचरता हू।

(१) **इहलोगासंसप्पओगे**—इस संथारे के फलस्वरूप, मेरी कीर्ति, ख्याति, प्रतिष्ठा हो, लोग मुझे बड़ा त्यागी, वैरागी समझें, धन्य धन्य कहे, इस प्रकार इस लोक सम्बन्धी आकाक्षा करने से अतिचार लगता है।*

(२) **परलोगासंसप्पओगे**—मृत्यु के पश्चात् मुझे इन्द्र का पद मिले, उत्कृष्ट ऋद्धि का धारक देव बनूं, चक्रवर्त्ती या राजा होऊ, सुन्दर शरीर की प्राप्ति हो, संसार के भोगोपभोग प्राप्त हों, इत्यादि-परलोक सम्बन्धी आकांक्षा करने से यह अतिचार लगता है।*

(३) **जीवियासंसप्पओगे**—संथारे मे अपनी महिमा पूजा होती देख कर वहुत समय तक जीवित रहने की इच्छा करने से भी अतिचार लगता है।*

(४) **मरणासंसप्पओगे**—क्षुधा, तृषा, आदि की पीड़ा से व्याकुल होकर जल्दी मर जाने की इच्छा करने से भी अतिचार लगता है।*

(५) **कामभोगासंसप्पओगे**—काम-भोगों की इच्छा करने से भी अतिचार लगता है।*

---

* अधिक जीना या जल्दी मरना किसी की इच्छा के अधीन नही है। इच्छा करने से आयु कम ज्यादा नही हो सकती, सिर्फ कर्म का बन्ध होता है। अतएव व्यर्थ कर्म बन्ध नही करना चाहिये।

सलेखनाव्रत जीवन का अंतिम और महान् व्रत है। वह मृत्यु को सुधारने की उत्कृष्ट कला है। इस कला की साधना अतीव सावधानी के साथ करनी चाहिए। उक्त पांच अतिचारों मे से किसी भी अतिचार का सेवन नही करना चाहिए। सथारे का प्रधान फल आत्मशुद्धि और आत्मकल्याण है। उससे आनुषंगिक फल के रूप मे जो सासारिक सुख प्राप्त होने वाले है, वे तो इच्छा न करने पर भी स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। उन फलो की इच्छा करने से व्रत मलिन हो जाता है और व्रत का प्रधान फल मारा जाता है। अतएव किसी भी प्रकार की सासारिक कामना नही रखते हुए, जिनेन्द्र भगवान् के गुणो मे ही अपने चित्त को रमाकर, ससार के अनित्य स्वरूप का विचार करते हुए, धर्म ध्यान मे ही संथारे का समय व्यतीत करना चाहिए। कहा भी है—

किं वहुना लिखितेन, सक्षेपादिदमुच्यते।
त्यागो विषयमात्रस्य, कर्त्तव्योऽखिलमुमुक्षुभिः॥

अर्थात्—अधिक लिखने से क्या लाभ ! सक्षेप मे यही कहना पर्याप्त है कि मोक्ष की अभिलाषा रखने वालो को विषय मात्र का त्याग कर देना चाहिए।

---

(१४५)

समाधि-मरण के ७३ बोल

जीव-अजीव की पहचान

जीव-ज्ञानादि चेतना सहित, निश्चल नय से सिद्ध समान व्यवहार नय से पुंण्य पाप का भोक्ता है।

धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि पांच द्रव्य अजीव, चेतन-रहित, जड़ स्वभाव है।

जीव का विशेष रूप

१. एगोऽहं—मैं अकेला हू।
२. सासओ अप्पा—मेरी आत्मा शाश्वत है।

३. नाण दंसण संजुओ—मैं ज्ञान दर्शन से युक्त हूं।
सेसा मे वाहिरा भावा–वाकी सब पदार्थ बाहरी हैं।

४. सव्वे संजोग लक्खणा—सबों में संयोग वियोग रहा हुआ है।

५. संयोगमूलो जीवाणं पत्ता दुख परंपरा—संयोग में मूच्छित होना दुःख की परम्परा का कारण है, पुद्गलों का संयोग सम्बन्ध मेरे स्वरूप से भिन्न है।

६. तम्हा संजोग संवंधं सव्वं तिविहेण वोसिरे—इसलिये सब बाहरी संयोगो का तीन करण तीन योग से त्याग करता हूं।

७. मैं चेतन हूं, पुद्गल का स्वभाव अचेतन है।

८. मैं अरूपी हूं, पुद्गल रूपी है।

९. मैं अमूर्त्त हूं, पुद्गल मूर्त्त है।

१०. मैं स्वाभाविक हूं, पुद्गल विभाविक है।

११. मैं शुचि-पवित्र हूं, पुद्गल अशुचि-अपवित्र है।

१२. मैं शाश्वत हूं, पुद्गल अशाश्वत है।

१३. मेरा स्वरूप ज्ञानादि है, पुद्गल पूरण गलन स्वभाव वाला है।

१४. मैं अचलित स्वरूप वाला हूं, पुद्गल चलित रूप वाला है।

१५. मैं ज्ञानादि स्वरूप वाला हूं, पुद्गल वर्णादि रूप है।

१६. शुद्धोऽहं—मैं शुद्ध मिर्मल हूं।

१७. वुद्धोऽहँ—मैं वुद्ध हूं, ज्ञानानन्द रूप हूं।

१८. निर्विकल्पोऽहं—मैं विकल्प रहित हूं।

१९. देहातीतोऽहं—मैं शरीरादि से रहित हूं।

२०. मैं रागद्वेष, अज्ञान, आश्रव से भिन्न हूं,

२१. मैं ज्ञानादि वीर्यमय रूप हूं।

२२. मैं शुद्ध हूं, कर्म मल से रहित हूं।

२३. मैं निरंजन निराकार हूं ।
२४. मैं अविनाशी हूं ।
२५. मैं अजर-जरा बुढापा रहित हूं ।
२६. मैं अनादि हूं—मेरी आदि-आरम्भ नही है ।
२७ मैं अनन्त—अन्त रहित हूं ।
२८. मैं अक्षय—नाश रहित हूं ।
२९. मै अक्षर—कभी नष्ट न होने वाला हूं ।
३०. मैं अचल हूं ।
३१. मैं अकल्प्य हूं—मेरी कल्पना नही की जा सकती ।
३२. मैं अमल—कर्ममल रहित, द्रव्य एवं भावमल से रहित हूं ।
३३. मैं अगम अगोचर हू ।
३४. मै अनामी हू—मेरा नाम नही है ।
३५. मैं अरूपी हूं—विभाव दशा में भी रूप रहित हूं ।
३६. मैं अकर्मी—कर्म रहित हूं ।
३७. मैं अवन्धक हूं—मेरे किसी प्रकार का बन्धन नही है ।
३८. मैं अनुदय—उदय भाव रहित हूं ।
३९. मैं अयोगी—योगो से रहित हूं ।
४०. मै अभोगी—भोगों से रहित हू ।
४१. मैं अरोगी हूं ।
४२. मैं अभेदी हूं—किसी के द्वारा मै भेदा नही जा सकता ।
४३. मैं अवेदी हू—वेद रहित हूं ।
४४. मैं अछेदी हूं—मैं किसी के द्वारा छेदा नही जा सकता ।
४५. मै अदाह्य हूं—मुझे अग्नि जला नही सकती ।
४६. मै अक्लेद्य हूं—मुझे पानी गला नही सकता ।
मै अशोष्य हूं—मुझे कोई सुखा नही सकता ।

४७. मैं अखेदी हूं—खेद रहित हूं।

४८. मैं असखा हूं—मेरा वाहरी कोई मित्र नहीं है। मेरी आत्मा ही मेरा मित्र है।

४९. मैं सवल हू—मुझे कोई बांध या छोड़ नही सकता।

५०. मैं अलेशी हूं—लेश्या रहित हूं। लेश्या पुद्गल है, मैं ज्ञानानन्द हूं।

५१.. मैं अशरीरी—शरीर रहित हूं, यह शरीर मेरा नही है, मैं शरीर से भिन्न हूं।

५२ मैं अभाषी हूं।

५३. मैं अनाहारी हूं—आहार करना मेरा स्वभाव नही है।

५४. मैं अव्यावाध—अनन्त सुख वाला हूं।

५५. मै अनवगाही स्वरूप हूं—द्रव्य मेरे में अवगाहन नही कर सकता है।

५६. मैं अगुरु लघु गुण वाला हूं—मैं न हल्का हूं और न भारी हूं।

५७ मैं अपरिणामी हूं—मेरे में कोई परिवर्तन नहीं होता।

५८. मैं अतीन्द्रिय हूं—मेरे मे इन्द्रियो का विकार नही है।

५९. मैं अप्राणी हूं—द्रव्य प्राण रहित हूं।

६०. मैं अयोनि हूं।

६१. मैं असंसारी हूं—पूर्ण आत्माराम हूं-आत्मा के गुणों में रमण करने वाला हूं।

६२. मैं अमर हूं—जन्म मरण से रहित हूं।

६३. मैं अपार हूं—सव परम्परा से रहित हूं।

६४. मैं अव्यापी—अपने स्वरूप में व्याप्त हूं-वैभाविक परिणामों मे एवं जड़ पुद्गल में व्याप्त नही हूं।

६५. मैं अनास्ति हूं—मेरे स्वद्रव्यादि सदा विद्यमान है।

६६. मै अकम्प्य हूं—संसार मे ऐसी कोई शक्ति नही जो मुझे कम्पा सके, मैं अनन्त शक्ति वाला हूं।

६७. मैं अविरोध हूं—कर्म शत्रु मुझे रूंध नहीं सकते। मेरे पारिणामिक भाव हैं।

६८. मैं अनाश्रवी—निर्लेप हूं।

६९. मै अलख हू—मेरे स्वरूप को छद्मस्थ नही लख (देख) सकता।

७०. मै अशोक हू—शोक रहित हू। नीरोगी और अमर हूं।

७१. मै अलौकिक हू—लौकिक मार्ग से रहित हू।

७२. मैं लोकालोक के स्वरूप का ज्ञाता हू, एक समय मे लोकालोक के स्वरूप को जानने मे समर्थ हू।

७३. मैं चिदानन्द हूं—ज्ञान गुण मे आनन्द मानने वाला हूं-ज्ञान मे वर्तता हूं।

आप अकेला जन्म ले, मरण अकेला होय।
जग मे अपने जीव का, साथी सगा न कोय॥

मैं अकेला हूं, मेरा कोई नही है। मैं भी किसी का नहीं हू। आत्मा शाश्वत है, ज्ञानदर्शन स्वरूप है। संसार के शेष समस्त पदार्थ मुझ से भिन्न हैं, वे संयोग से उत्पन्न होते और वियोग से बिखर जाते है। फिर पुद्गल से संयोग वियोग होने पर सुखी-दुःखी होने की क्या आवश्यकता है ? जहा अपनापन या ममता है, वहा आपदा भी है, जहा चिन्ता है, वहा शोक भी है, परन्तु यह महान् दुष्ट रोग सम्यग्ज्ञान के विना नही मिट सकता।

अतः हे प्रभो ! मुझ मे ऐसी भावना पैदा हो कि मैं संसार को असार समझ कर हमेशा अपने हृदय को वैराग्य भावना से भरता रहूं।

समाधि मरण भावना

जो सम्यग्दृष्टि आत्मतत्त्व वेत्ता पुरुष है, वे यो विचारते है कि यह प्रत्यक्ष दुर्गन्धमय सप्त धातुओ से वना हुआ पिण्ड जिसके अन्दर अज्ञानी जीव अनेक प्रकार के दु ख और क्लेश पाते हुए भी इस पर अधिकाधिक ममत्व करके अकाम मरण मर कर नरक तिर्यञ्चादिक गति को प्राप्त हो जाते हैं,

जहा असंख्यात और अनन्त जन्म मरण करते हुए महान् दुःख भोगते हैं, फिर भी दुःख का अन्त सहज में नहीं आता। इस लिए मुझे उचित है कि मैं अब अज्ञानता का त्याग करके जो स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है, उसका लाभ लेकर समाधि मरण मरूं तो मुझे यह क्लेश-कष्ट नही भोगना पड़ेगा, अपितु समाधि सहित शुद्ध परिणामों के द्वारा या तो इसी भव से मुक्ति प्राप्त कर सकूंगा, ताकि बारम्बार ऐसा दुःख न उठाना पड़े, या यदि सर्वकर्मों का क्षय नही हुआ तो दिव्य वैक्रिय शरीर धारण कर दिव्य सुखों का उपभोग करूंगा। अतः मृत्यु को दुःख-दाता नही, किन्तु सुखदाता मित्र ही क्यो न मानूं।

सम्यग्दृष्टि अपनी आत्मा को बोध देता है कि हे आत्मन् ! मरना तो मुझे अवश्यम्भावी है, जिसने जन्म लिया है, वह अवश्य ही मरेगा। परन्तु यह मरण राग-द्वेष रहित, समाधि सहित, धर्मध्यान पूर्वक अनशन धारण करके होगा तो मुझे नरक तिर्यञ्चादि गतियो मे जाकर दुःख न देखना पड़ेगा, अपितु मैं समाधिमरण से स्वर्ग में देवों का स्वामी इन्द्र तथा अहमिन्द्र होकर महान सुखों का भोक्ता बनूंगा और शीघ्र ही निकट भविष्य में सब दुःखो का अन्त करने वाली सिद्धगति को प्राप्त करूंगा।

हे प्रभो ! इतने दिन मैं जानता था कि यह शरीर मेरा है, इसलिए इसको खिला कर, पिला कर, शीत ताप से बचा कर, सार सम्भाल कर मैं हर प्रकार से इसकी हिफाजत करता था, किन्तु अब मुझे सत्य भान हुआ कि यह शरीर न तो किसी का हुआ और न किसी का होगा, जो मेरा होता तो मेरे हुक्म में क्यों नहीं चलता, प्रत्यक्ष मे रोग, जरा और मृत्यु को प्राप्त क्यों होता ?

रे आत्मन् ! इस रोग को देख कर जो तूं घबराता हो, सचमुच ही रोग तुझे खराब लगता हो, इस दु.ख से कंटाल गया हो तो अब इन बाह्य औषधियों का सेवन करना छोड़ ! क्योकि जो रोग है, वह कर्माधीन है और औषधियों मे कर्म को दूर करने की शक्ति नही। कदाचित् तेरा उपादान सुधरा हो, असाता वेदनीय का जोर कम पडा हो तो औषधि के निमित्त से एकाध

रोग दूर हो सकता है। इससे क्या हुआ ? मिटा हुआ रोग तो संख्याता असंख्याता काल मे फिर हो जाता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान रूप सर्व रोग और सर्व चिकित्सा के ज्ञाता महावैद्यराज की फरमाई हुई समाधिमरण रूप महा औषधि का सेवन करने से नष्ट हुआ जन्म मरण रूपी रोग फिर नही हो सकता। अतः उस औषधि का तूं सेवन कर, जिससे सब आधि, व्याधि, उपाधि नष्ट होकर अजर, अमर, अनन्त, अक्षय और अव्याबाध सुख की तुझे प्राप्ति हो। अगर वेदना का उठाव ज्यादा होता हो, पीड़ा ज्यादा होती हो तो सकल्प विकल्प और हाय, विलाप न करते हुए अपनी आत्मा को इस तरह समझा कि जैसे तीव्र ताप लगने से सोना निर्मल हो जाता है, वैसे ही इस तीव्र वेदना के कारण यदि इसे शान्त भाव से हाय विलाप रहित होकर सहन करूंगा तो मेरी आत्मा पर लगा हुआ अशुभ कर्म रूप मैल शीघ्र ही दूर हो जायगा। हाय-हाय करने से उदय मे आये हुए कर्मों का जोर तो कम होता ही नही, उल्टा अधिक नवीन कर्मो का बन्ध होता है। अतः हाय-हाय न करते हुए समभाव से ही क्यों न सहन करूं ?

हे चैतन्य ! तूंने नरक में परवशपणे अनन्त वेदना सहन की। परन्तु सम्यक्त्व बिना कुछ गरज नही सरी। जितनी निर्जरा सागरो तक वेदना सहन करने से हुई, उतनी ही नही, उससे अनन्त गुणी अधिक निर्जरा, जो तूं इस समय समभाव रखकर सहन करेगा, तो तुझे होगी। यह जैन सिद्धान्त का अभिप्राय है।

स्वर्ग एव मोक्षादि सुख के देने मे समाधि-मरण के सिवाय संसार मे कोई भी अन्य समर्थ नही है। इसलिए यह अवसर मुझे चूकना नही चाहिए। मरण तो इस आत्मा ने अनन्ती बार किये है। परन्तु विषय कषाय के वश होकर, आशा-तृष्णा सहित, असमाधि मरण किये। इससे मेरी कोई गरज नही सरी, उल्टी भवभ्रमण की सन्तति बढी, चतुर्गति मे गोते खाये। अब सद्गुरु की कृपा से मुझे वास्तविक ज्ञान हुआ है, सो अब सावधान होकर वाछा, तृष्णा रहित बनकर समाधिमरण की आराधना करूं।

यदि कोई परचक्री राजा किसी राजा को पकड़ कर पिंजरे में डाल देता है, जहा उसे खान-पानादि के अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, वह पराधीन बन जाता है उसका कुछ भी जोर नहीं चलता है। उस समय उसकी खबर उसके किसी जबरदस्त मित्र राजा को मिलने पर जैसे वह अपने मित्र को परचक्री राजा की परतन्त्रता से छुड़ाकर सुखी कर देता है, उसी प्रकार कर्म रूपी शत्रु ने मुझे इस देह रूपी पिंजरे मे डाल कर, श्वासोच्छ्वास, क्षुधा, तृषा, ताड़न, तर्जन, रोग, शोक, शीत, ताप, दु.ख और पराधीनता से बाध दिया है। इस बन्धन से छुडाने वाला यह मृत्यु नामक मित्र ही है, जिसकी कृपा से मै स्वतन्त्र और सुखी बन सकूंगा।

चिन्तवन भावना

यह शरीर मेरा नही है, मैं किसी काल मे इस शरीर का नही हूं। यह शरीर स्थूल तथा क्षण भगुर है और मैं स्थिर तथा चैतन्य स्वरूप हूं। जन्म जरा मरण से उत्पन्न हुआ तथा रोग आधि-व्याधि से प्रकट हुआ दु:ख इस देह को होता है, मुझे नही। संसार मे सम्पत्ति या विपत्ति संयोग या वियोग से जो कुछ सुख-दुःख उत्पन्न होते है, वे सब पूर्व जन्म मे उपार्जन किये गये पुण्य-पाप के फल है।

यह मेरा किया हुआ ऋण ही है जो मैंने पहले असाता वेदनीय कर्म बाधा था। इस समय यह असाता वेद कर मैं उसी ऋण से हल्का हो रहा हू। इस प्रकार मन मे दृढता धारण करूं।

मै (चैतन्य) एक ज्ञायिक स्वभाव वाला हू, उसी का कर्ता-भोक्ता, और अनुभविता हू, सो ज्ञायिक का स्वभाव तो अविनाशी है। उसका किसी भी तरह विनाश नही होता। त्रिकाल मे अबाधित है फिर यह शरीर रहा तो क्या और गया तो क्या? रहते और जाते मेरा स्वभाव एक-सा है और एक-सा रहेगा, तब शरीर का विनाश होता देख चिन्ता किस बात की करूं?

---

(१४६)

दस पच्चक्खाण सूत्र

१. नमोक्कार सहियं

(नवकारसी)

उग्गए सूरे नमोक्कार सहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असरा, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेणं वोसिरामि ।

२. पोरिसि सूत्र

(पोरसी)

उग्गए सूरे पोरिसि पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं, पाण, खाइम, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

३. पुरिमड्ढ सूत्र

(दो पोरसी)

उग्गए सूरे पुरिमड्ढ पच्चक्खामि । चउव्विह पि आहार असण, पाण, खाइम, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेण साहुवयणेणं महत्तरागारेण, सव्व समाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

४. एगासण सूत्र

एगासणं पच्चखामि तिविहपि आहार असणं, खाइमं साइम अन्नत्थ-ऽणाभोगेणं सहसागारेण, सागारियागारेणं, आकुंचण पसारणेणं गुरुअब्भुट्ठा-णेण, परिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्व समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

५. एगट्ठाण सूत्र

एगासण एगट्ठाण पच्चक्खामि, तिविहपि आहार असणं खाइम, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेण, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, परिट्ठा-वणियागारेणं, महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

६. आयंबिल सूत्र

आयंबिलं पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, उक्खित्त विवेगेणं, गिहि-संसट्ठेणं, परिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्व-समाहिवत्तियारेणं वोसिरामि ।

७. अभत्तट्ठ सूत्र (उपवास)

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्त-रागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

८. दिवसचरिम सूत्र

दिवसचरिमं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाण, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्व समाहिवत्ति-यागारेणं वोसिरामि ।

९. अभिग्गह सूत्र

अभिग्गहं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्व समाहिवत्ति-यागारेणं वोसिरामि ।

१०. विगइय सूत्र

विगइओ पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थ संसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

११. प्रत्याख्यानपारण सूत्र

उग्गए सूरे नमोक्कारसहियं.................पच्चक्खाणं कयं तं पच्चक्खाणं सम्मं मणेण, वायाए, कायेण फासिय, पालियं, तीरियं, किट्टियं, सोहियं, आराहियं । जं च न आराहियं, तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

सूचना—रिक्त स्थान का अभिप्राय यह है कि जो पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) किया हो, उसका नाम बोले, जैसे कि नमोक्कार सहिय, पोरिसी, एगासणं आदि ।

१२. सागारी संथारा करने का हिन्दी पाठ

आहार, शरीर, उपधी, पचखूं पाप अठार ।
मरण पाऊँ तो वोसिरे, जीऊँ तो आगार ।।

सूचना—जब कोई अचानक संकट-काल आ जाए, या बीमारी आदि की भयंकर स्थिति हो, तो सागारी संथारा ऊपर के पाठ से किया जाता है । रात को सोते समय भी प्रात.काल उठने तक सागारी सथारा किया जाता है । सागारी सथारा तीन बार नवकार मत्र पढकर पारना चाहिए ।

१३. ११वां पौषध व्रत लेने का पाठ

एक्कारसं पोसहोववासव्वयं, असण-पाण-खाइम-साइम-पच्चक्खाणं, अबभ पच्चक्खाण, मणिसुवण्णाइ - पच्चक्खाणं, मालावण्णग - विलेवणाइ-पच्चक्खाणं, सत्थ - मूसलाइ - सावज्ज जोग पच्चक्खाण ।

जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

सूचना—पौषध लेने और पारने की विधि सामायिक की विधि के अनुसार ही है । गृहस्थोचित वस्त्र कोट, पेंट पाजामा और पगडी आदि उतार कर, शुद्ध दुपट्टा और धोती आदि धारण करके पौषध व्रत लेना चाहिए । नवकार मत्र से लेकर सब पाठ सामायिक ग्रहण करने के अनुसार ही पढने चाहिए । केवल जहा सामायिक मे 'करेमि भंते' बोला जाता है वहा ऊपर लिखित पौषध लेने का पाठ बोलना चाहिए । इसी प्रकार पौषध पारते समय जहां सामायिक पारने का 'एयस्स नवमस्स' पाठ बोला जाता है, वहा नीचे लिखा पौषध पारने का पाठ बोलना चाहिए ।

१४. पौषध व्रत पारने का पाठ

एक्कारसस्स पोसहोववासव्वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तंजहा—

अप्पडिलेहियं-दुप्पडिलेहियं-सिज्झा संथारए, अप्पमज्झियं-दुप्पमज्झियं सिज्जा संथारए, अप्पडिलेहियं दुप्पडिलेहियं उच्चार पासवण भूमि, अप्पमज्जियं दुप्पमज्जियं उच्चार पासवण भूमि, पोसहोववासस्स सम्मं अणुपालणा न कया तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

१५. संवर करने का पाठ

द्रव्य से पांच आस्रव सेवन का पच्चक्खाण, क्षेत्र से..........काल से ....भाव से उपयोगसहित, गुण से निर्जरा के हेतु तथा जब तक पांच नवकार महामन्त्र न पढ़ लूं तब तक दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

सूचना—क्षेत्र और काल के स्थान मे जो जगह छोड़ी है, वहां क्रमशः जितने क्षेत्र की मर्यादा करनी हो, उतने क्षेत्र का परिमाण और जितने काल का संवर करना हो, उतने काल का परिमाण मूल पाठ में ही कह देना चाहिए। सात बार नवकार मन्त्र पढ़कर संवर खोलना चाहिए।

---

(१४७)

चौबीस तीर्थङ्कर कल्याणक तप

चैत्र

तीर्थङ्कर	तिथि	कल्याणक	मतान्तरेण तिथि
२३	वदि ४	च्यवन	
२३	वदि ४	केवल	

(८)

८	वदि	५	च्यवन
१	वदि	८	जन्म
१	वदि	६	दीक्षा
१७	सुदि	३	केवल
१४	सुदि	५	मोक्ष
२	सुदि	५	मोक्ष
३	सुदि	५	मोक्ष
५	सुदि	६	मोक्ष
५	सुदि	११	केवल
२४	सुदि	१३	जन्म
६	सुदि	१५	केवल

वैशाख

१७	वदि	१	मोक्ष
१०	वदि	२	मोक्ष
१७	वदि	५	दीक्षा
१०	वदि	६	च्यवन
२१	वदि	१०	मोक्ष
१४	वदि	१३	जन्म
१४	वदि	१४	दीक्षा
१४	वदि	१४	केवल
१७	वदि	१४	जन्म
४	सुदि	४	च्यवन
१५	सुदि	७	च्यवन
४	सुदि	८	मोक्ष
५	सुदि	८	जन्म
५	सुदि	६	दीक्षा

२४	सुदि १०	केवल
२३	सुदि १२	च्यवन
२	सुदि १३	च्यवन

जेठ

११	वदि ६	च्यवन
२०	वदि ८	जन्म
२०	वदि ९	मोक्ष
१६	वदि १३	जन्म
१६	वदि १३	मोक्ष
१६	वदि १४	दीक्षा
१५	सुदि ५	मोक्ष
१२	सुदि ९	च्यवन
७	सुदि १२	जन्म
७	सुदि १३	दीक्षा

असाढ़

१	वदि ४	च्यवन
१३	वदि ७	मोक्ष
२१	वदि ९	दीक्षा
२४	सुदि ६	च्यवन
२२	सुदि ८	मोक्ष
१२	सुदि १४	मोक्ष

श्रावण

११	वदि ३	मोक्ष
१४	वदि ७	च्यवन
२१	वदि ८	जन्म
१७	वदि ९	च्यवन

५	सुदि	२	च्यवन	
२२	सुदि	५	जन्म	
२२	सुदि	६	दीक्षा	
२३	सुदि	८	मोक्ष	
२०	सुदि	१५	च्यवन	

भादवा

१६	वदि	७	च्यवन	
८	वदि	७	मोक्ष	
७	वदि	८	च्यवन	
९	सुदि	९	मोक्ष	

आसोज

२२	वदि	३०	केवल	
२१	सुदि	१४	जन्म	

कार्तिक

३	वदि	५	केवलज्ञान	
२२	वदि	१२	च्यवन	
६	वदि	१२	जन्म	
६	वदि	१३	दीक्षा	(१२)
२४	वदी	३०	मोक्ष	
९	सुदि	३	केवल	(२)
१८	सुदि	१२	केवल	

मिगसर

९	वदि	५	जन्म	
९	वदि	६	दीक्षा	
२४	वदि	१०	दीक्षा	
६	वदि	११	मोक्ष	

१८	सुदि १०	जन्म
१८	सुदि १०	मोक्ष
१८	सुदि ११	दीक्षा
१९	सुदि ११	जन्म
१९	सुदि ११	दीक्षा
१९	सुदि ११	केवल
२१	सुदि ११	केवल
३	सुदि १४	जन्म
३	सुदि १५	दीक्षा

पौष

२३	वदि १०	जन्म
२३	वदि ११	दीक्षा
८	वदि १२	जन्म
८	वदि १३	दीक्षा
१०	वदि १४	केवल
१३	सुदि ६	केवल
१६	सुदि ९	केवल
२	सुदि ११	केवल
४	सुदि १४	केवल
१५	सुदि १५	केवल

माघ

६	वदि ६	च्यवन
१०	वदि १२	जन्म
१०	वदि १२	दीक्षा
१	वदि १३	मोक्ष
११	वदि ३०	केवल

४ सुहि २ जन्म
१२ सुदि २ केवल
१५ सुदि ३ जन्म
१३ सुदि ३ जन्म
१३ सुदि ४ दीक्षा
२ सुदि ८ जन्म
२ सुदि ९ दीक्षा
४ सुदि १२ दीक्षा
१५ सुदि १३ दीक्षा

फाल्गुण

७ वदि ६ केवल
७ वदि ७ मोक्ष
८ वदि ७ केवल
९ वदि ९ च्यवन
१ वदि ११ केवल
२० वदि १२ केवल
११ वदि १२ जन्म
११ वदि १३ दीक्षा (३०)
१२ वदि १४ जन्म
१२ वदि ३० दीक्षा
१८ सुदि २ च्यवन (१)
१९ सुदि ४ च्यवन
३ सुदि ८ च्यवन
२० सुदि १२ दीक्षा
१९ सुदि १२ मोक्ष

(१४८)

तिथि आदि का विचार

जैन ज्योतिष में पन्द्रह तिथियों के पांच प्रकार बताए गए हैं :—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। इनमें रिक्ता ४, ९, १४ शुभ कार्य में वर्जनीय है, बाकी सब शुभ हैं। कौन से दिन कौन-सी तिथि होती है, इसके लिए नीचे का यंत्र देखिये—

१	६	११	नन्दा
२	७	१२	भद्रा
३	८	१३	जया
४	९	१४	रिक्ता
५	१०	१५	पूर्णा

सिद्धि-योग

नन्दा तिथि को शुक्रवार हो, भद्रा को बुद्धवार हो, जया को मंगलवार हो, रिक्ता को शनिवार और पूर्णा को गुरुवार हो, तो सिद्धि योग माना जाता है। सिद्धि योग में किए हुए शुभ कार्य सफल होते हैं। यन्त्र से स्पष्टतया समझ लीजिए कि कौन-सी तिथि और कौन-से बार को सिद्धि-योग होता है।

सिद्धि-योग

१	६	११	शुक्रवार
२	७	१२	बुद्धवार
३	८	१३	मंगलवार
४	९	१४	शनिवार
५	१०	१५	गुरुवार

मृत्यु-योग

१	६	११	रवि, मगल
२	७	१२	सोम, गुरु
३	८	१३	बुधवार
४	९	१४	शुक्रवार
५	१०	१५	शनिवार

सूचना— मृत्यु-योग अशुभ माना जाता है, इसलिए कोई भी शुभ कार्य इन दिनों मे प्रारम्भ नही करना चाहिये ।

सूर्य-दग्धा तिथि—धन तथा मीन संक्रान्ति की दूज, वृष तथा कुम्भ की चौथ, मेप तथा कर्क की छठ, कन्या तथा मिथुन की आठम, वृश्चिक तथा सिंह की दशमी, मकर तथा तुला संक्रान्ति की वारस सूर्यदग्धा तिथि होती है। इन तिथियो का सभी शुभ कार्यों मे निषेध है।

चन्द्र-दग्धा तिथि—धन तथा कुम्भ राशि का चन्द्रमा होने पर दूज, मेप तथा मिथुन राशि का चन्द्रमा होने पर चौथ, तुला तथा सिंह राशि का चन्द्रमा होने पर छठ, मीन तथा मकर राशि का चन्द्रमा होने पर आठम, वृप तथा कर्क राशि का चन्द्रमा होने पर दशमी, वृश्चिक तथा कन्या राशि का चन्द्रमा होने पर वारस चन्द्र-दग्धा तिथि मानी जाती है। शुभ कार्य आरम्भ करते समय इनका भी निषेध है।

अमृत-सिद्धि-योग—रविवार को हस्त नक्षत्र हो, गुरुवार को पुण्य हो, बुधवार को अनुराधा हो, शनिवार को रोहिणी हो, सोमवार को मृगशिर हो, शुक्रवार को रेवती हो, और मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो—तो अमृत सिद्धि योग वनता है। इस योग मे किए गए कार्य शीघ्र सिद्ध हो जाते हैं।

विजय-योग—विजय योग नित्य प्रति आता है। प्रत्येक दिन के चार प्रहर होते हैं। उनमें पहले दो प्रहर की आखिरी घड़ी और आगे के दो प्रहर की पहली घड़ी, विजय योग की होती है। इस योग में किये हुए कार्य सफल होते हैं। जैन ज्योतिष मे इसकी बड़ी महिमा है।

चन्द्रविचार—राशि	दिशा
मेप, सिंह, धनु	पूर्व मे

वृष, कन्या, मकर	दक्षिण मे
मिथुन, तुला, कुम्भ	पश्चिम मे
वृश्चिक, कर्क, मीन	उत्तर मे

सूचना :—यात्रा मे सम्मुख चन्द्रमा हो तो अर्थ का लाभ होता है, दाहिनी तरफ हो तो सुख तथा सम्पत्ति, पीठ पीछे हो तो प्राणो की पीड़ा और बाई तरफ हो तो धन का क्षय होता है।

दिशा-शूल विचार—सोम और शनिवार	—	पूर्व दिशा मे
गुरुवार	—	दक्षिण दिशा मे
रवि और शुक्रवार	—	पश्चिम दिशा मे
बुध और मगलवार	—	उत्तर दिशा मे

सूचना :—यात्रा मे यानि परदेश गमन मे दिशा-शूल सामने और दाहिने अच्छा नही होता है। यदि किसी आवश्यक कार्य के लिए दिशा-शूल के होते भी जाना पडे तो एक प्राचीन कथन के अनुसार नीचे लिखी वस्तुओ का वार के क्रम से सेवन करें।

गुड़ मगल, बुध खांड, वृहस्पति राई खाजे,
शुक्र वायबिडग, शनिश्चर दही खाजे।
रवि तावूल लीजे, सोम दर्पण देखीजे, एत्ता कर,
आवश्यक हो तो दिशा शूल भी जाजे॥

दिन का चौघड़िया

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

सूचना :—ऊपर के कोष्टक से यह समझना चाहिये कि जिस दिन जो वार हो, उस दिन उसी वार के नीचे लिखा हुआ चौघड़िया (चार घड़ी का समय) सूर्योदय के समय मे वैठता है वह पहला चौघड़िया समझना चाहिये। उसके उतरने के वाद उस वार से छठे वार का चौघड़िया वैठता है वह उस वार का दूसरा चौघड़िया समझना चाहिये। दूसरे के उतरने के वाद उस छठे वार से छठे वार का चौघडिया वैठता है, वह उस वार का तीसरा चौघड़िया समझना चाहिये। यही क्रम आगे भी समझना।

उदाहरण के लिए देखिये—रविवार के दिन पहला उद्वेग नामक चौघड़िया है। उसके उतरने के वाद रविवार से छठा वार शुक्र है, जिसका

चौघड़िया चल है, सो यह रविवार का दूसरा चौघड़िया हुआ, इसी क्रम से प्रत्येक वार के दिन भर का चौघड़िया जान लेना चाहिये।

एक चौघड़िया डेढ़ घण्टे तक रहता है; अर्थात् सवेरे के छह बजे से लेकर शाम के छह बजे तक बारह घण्टो मे आठ चौघडिये व्यतीत होते हैं। इनमें से अमृत, शुभ, और लाभ ये तीन चौघडिये उत्तम हैं। तथा उद्वेग, रोग, काल, ये तीन चौघड़िये अशुभ हैं। चल नामक चौघड़िया मध्यम है। कोई भी शुभ कार्य अच्छे चौघडियो मे करना अच्छा माना जाता है।

रात्रि का चौघड़िया

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

सूचना :—इस कोष्ठक मे पहले कोष्ठक से केवल इतना ही अन्तर है कि एक बार के पहिले चौघडिये के उतरने के बाद उस वार से पाचवें वार

का दूसरा चौघड़िया बैठता है यानि आरम्भ होता है। शेष सब विषय ऊपर दिन के चौघड़िया के अनुसार ही है।

सब कामों में वर्जित ज्वालामुखी योग—प्रतिपदा तिथि (एकम) को मूल नक्षत्र, पंचमी को भरणी, अष्टमी को कृत्तिका, नौमी को रोहिणी, दसमी को अश्लेषा नक्षत्र हो तो ज्वालामुखी योग होता है।

दिशाओं मे वर्जित नक्षत्र—रोहिणी नक्षत्र हो तो पूर्व मे, श्रवण हो तो पश्चिम मे, चित्रा हो तो दक्षिण मे और हस्त हो तो उत्तर दिशा मे नही जाना चाहिये।

किस दिशा में कौन-सा वार लाभप्रद—मंगल और बुधवार पूर्व दिशा मे, सोम और शनिवार दक्षिण दिशा मे, गुरुवार पश्चिम दिशा मे, रविवार और शुक्रवार उत्तर दिशा मे यात्रा हेतु लाभप्रद माना जाता है।

---

(१४६)

चौबीस तीर्थङ्करों के नाम

१. श्री ऋषभ देवजी
२. ,, अजितनाथजी
३. ,, संभवनाथजी
४ ,, अभिनंदनजी
५. ,, सुमतिनाथजी
६ ,, पद्मप्रभुजी
७. ,, सुपार्श्वनाथजी
८. ,, चन्द्रप्रभुजी
६. ,, सुविधिनाथजी
१०. ,, शीतलनाथजी
११. ,, श्रेयासनाथजी
१२. ,, वासुपूज्यजी
१३. श्री विमलनाथजी
१४. ,, अनन्तनाथजी
१५. ,, धर्मनाथजी
१६. ,, शान्तिनाथजी
१७. ,, कुन्थुनाथजी
१८. ,, अरहनाथजी
१६. ,, मल्लिनाथजी
२०. ,, मुनि सुव्रतजी

२१. श्री नमिनाथजी
२२. ,, अरिष्टनेमिजी
२३. श्री पार्श्वनाथजी
२४ ,, महावीरस्वामीजी

बीस विहरमानों के नाम

१ श्री सीमंधरस्वामी
२. ,, युगमधरस्वामी
३. ,, बाहुस्वामी
४. ,, सुबाहुस्वामी
५ ,, स्वयंप्रभस्वामी
६. ,, अनंतवीर्यस्वामी
७ ,, ऋषभाननस्वामी
८. ,, सूरप्रभस्वामी
९. ,, सुजातस्वामी
१० ,, वज्रधरस्वामी
११ श्री चंद्राननस्वामी
१२ ,, चंद्रबाहुस्वामी
१३ ,, भुजगस्वामी
१४. ,, ईश्वरस्वामी
१५. ,, विशालधरस्वामी
१६. ,, नेमीश्वरस्वामी
१७ ,, वीरसेनस्वामी
१८. ,, महाभद्रस्वामी
१९. ,, देवयशस्वामी
२०. ,, अजितवीर्यस्वामी

ग्यारह गणधरों के नाम

१. श्री इन्द्रभूतिजी
२. ,, अग्निभूतिजी
३. ,, वायुभूतिजी
४ ,, व्यक्तस्वामीजी
५. ,, सुधर्मास्वामीजी
६ श्री मण्डितपुत्रजी
७ ,, मौर्यपुत्रजी
८ ,, अकंपितजी
९ ,, अचलभूतिजी
१० ,, मेतार्यजी
११ ,, प्रभासजी

सोलह सतियों के नाम

१ श्री ब्राह्मीजी
२. ,, सुन्दरीजी
३. ,, कौशल्याजी
४. श्री सीताजी
५ ,, राजुलमतीजी
६ ,, कुन्तीजी
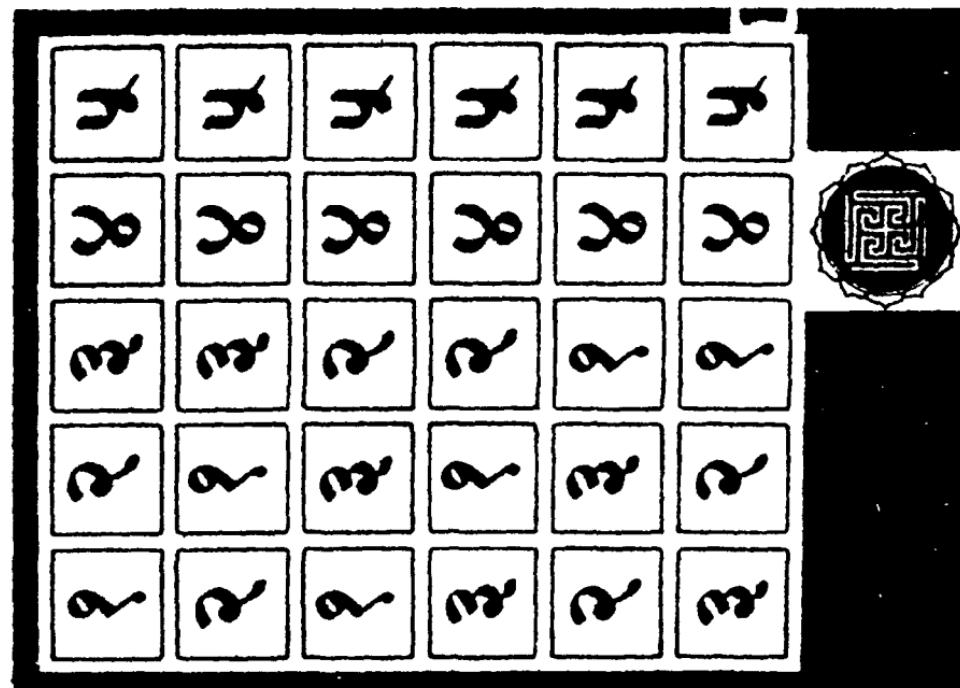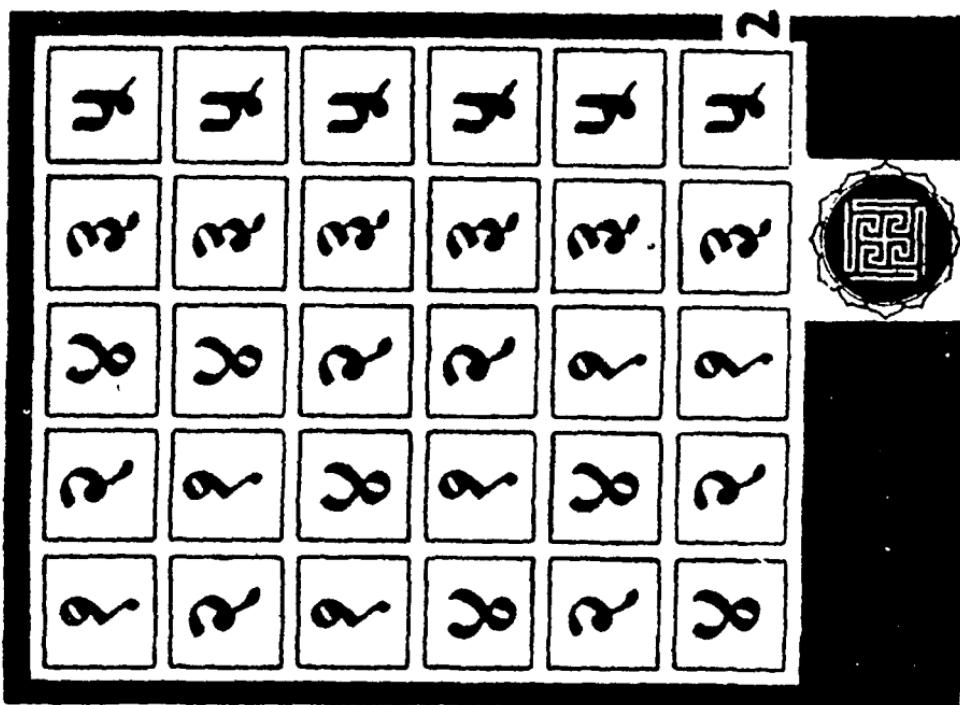
७. श्री द्रौपदीजी
८ ,, चन्दनबालाजी
९ ,, मृगावतीजी
१० ,, पुष्प चूलाजी
(श्री चेलनाजी)
११ श्री प्रभावतीजी
१२. श्री सुभद्राजी
१३. ,, दमयंतीजी
१४. ,, सुलसाजी
१५. ,, शिवादेवीजी
१६. ,, पद्मावतीजी

आनुपूर्वी

जहा १ है वहां णमो अरिहंताणं कहें ।
जहां २ है वहां णमो सिद्धाणं कहें ।
जहा ३ है वहां णमो आयरियाणं कहे ।
जहां ४ है वहां णमो उवज्झायाणं कहें ।
जहां ५ है वहां णमो लोऐ सव्व साहूणं कहे ।

आनुपूर्वी पढ़ने का फल

आनुपूर्वी गुणजो जोय छम्मासी तप नो फल होय ।
सदेह मत आणो लीगार निर्मल मने जपो नवकार ॥
जिनवाणी का सार है, मन्त्रराज नवकार ।
भाव सहित जपिये सदा यही जैन आचार ॥
मन्त्रराज नवकार हृदय मे, शान्ति सुधारस बरसाता ।
लौकिक जीवन सुखमय करके, अजर-अमर पद पहुंचाता ॥
अशुभ कर्म के हरण कूं मन्त्र बड़ो नवकार ।
वाणी द्वादश अग में देख लियो तत्व सार ॥
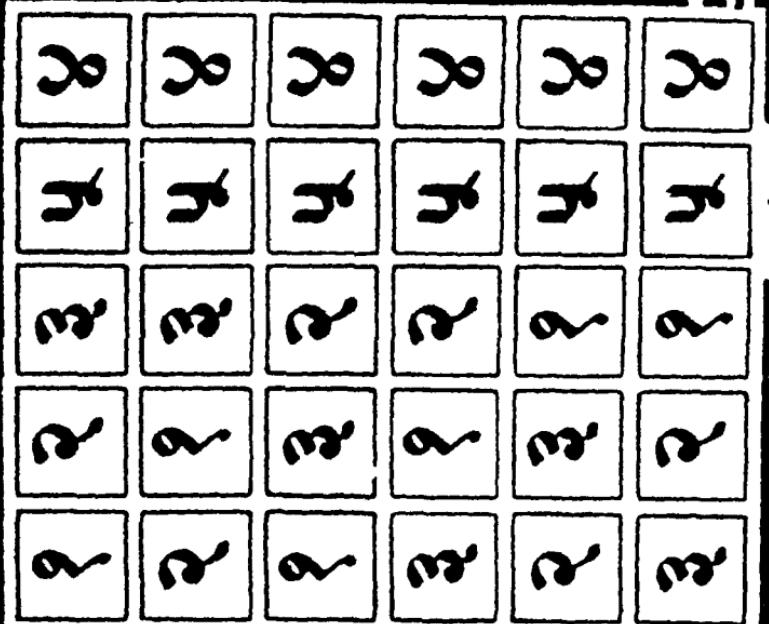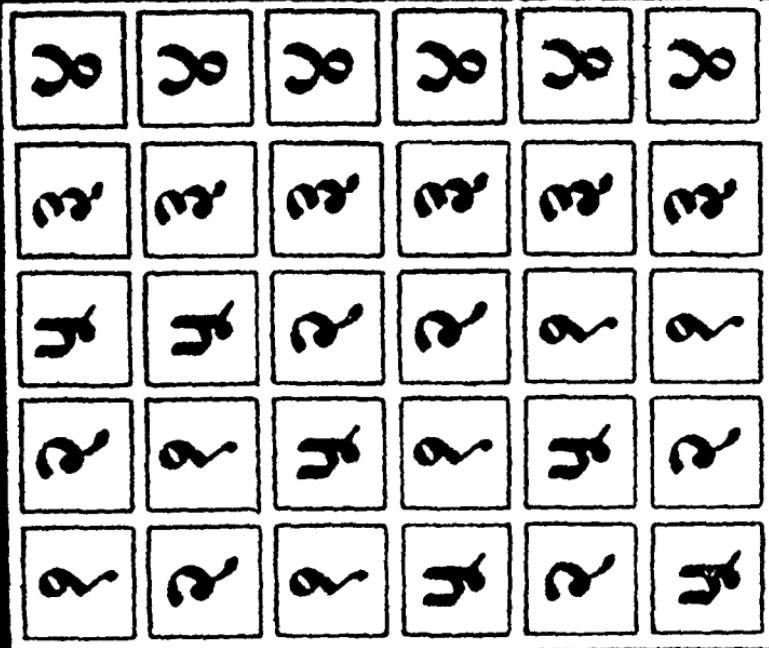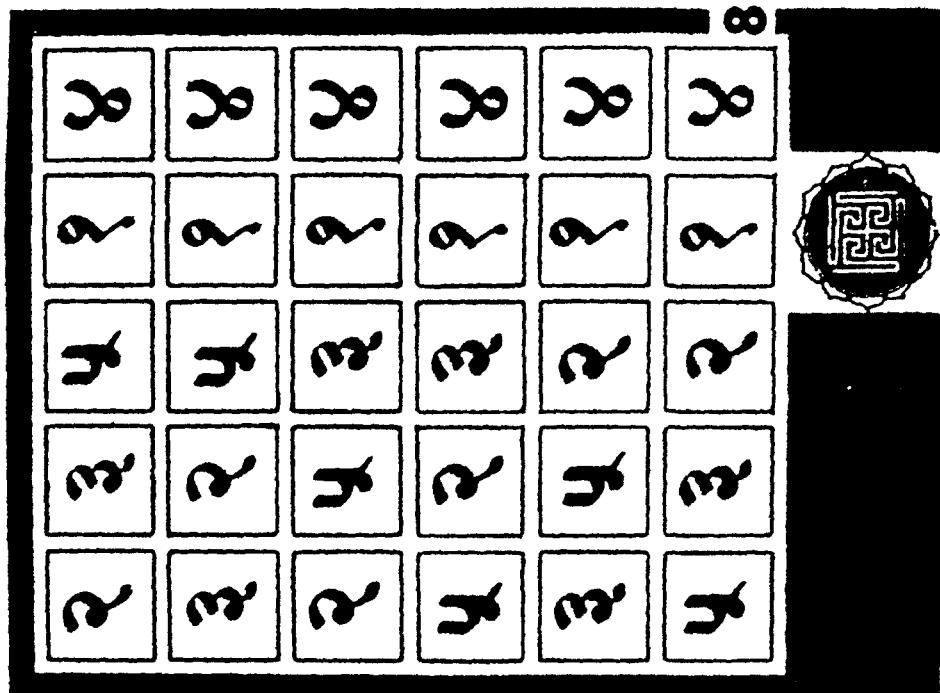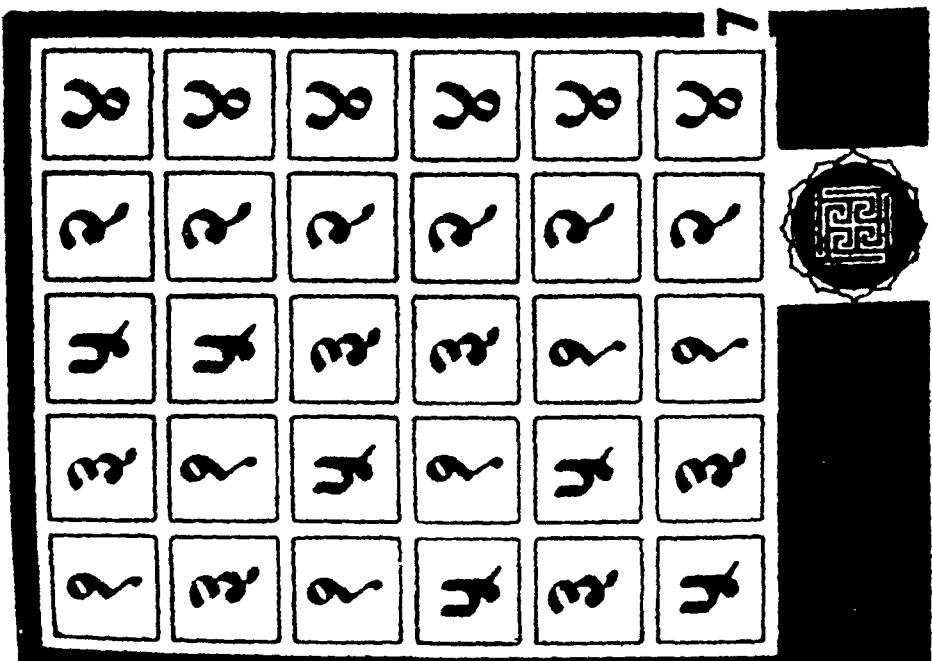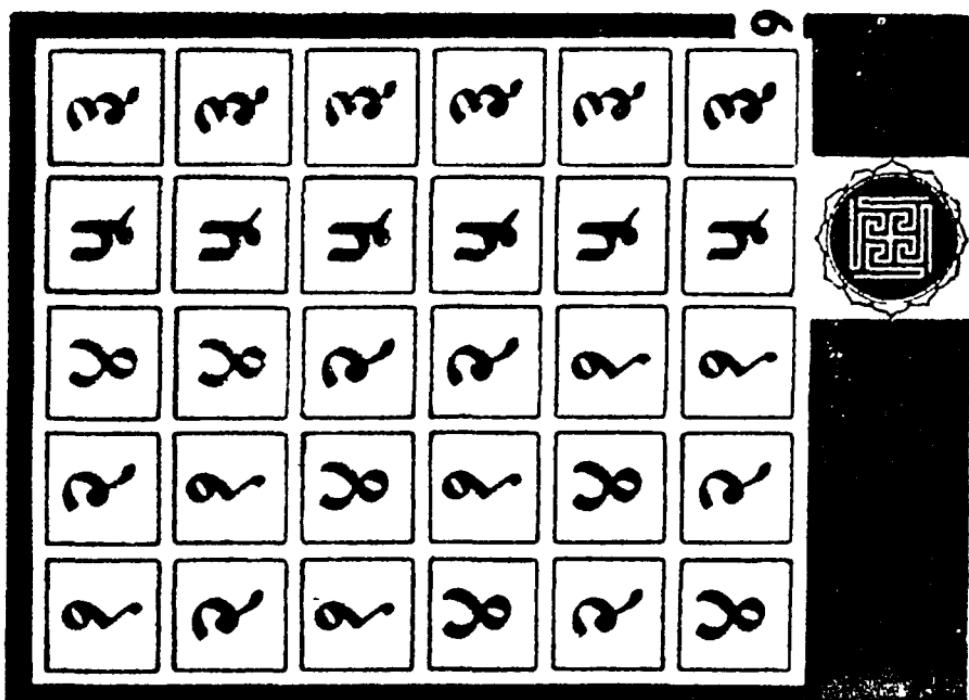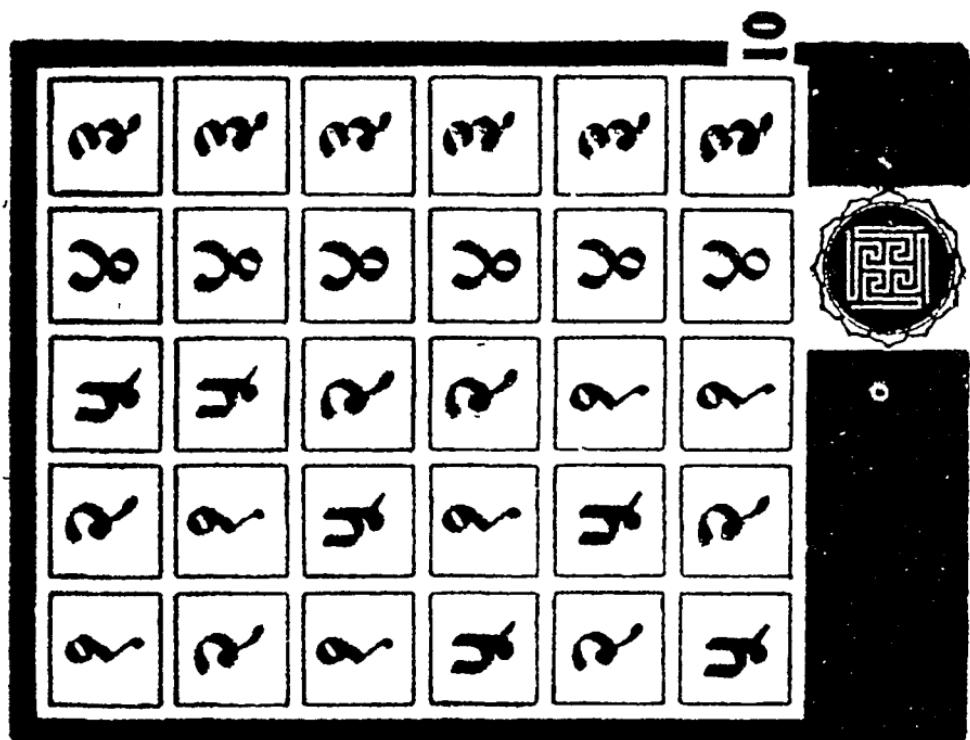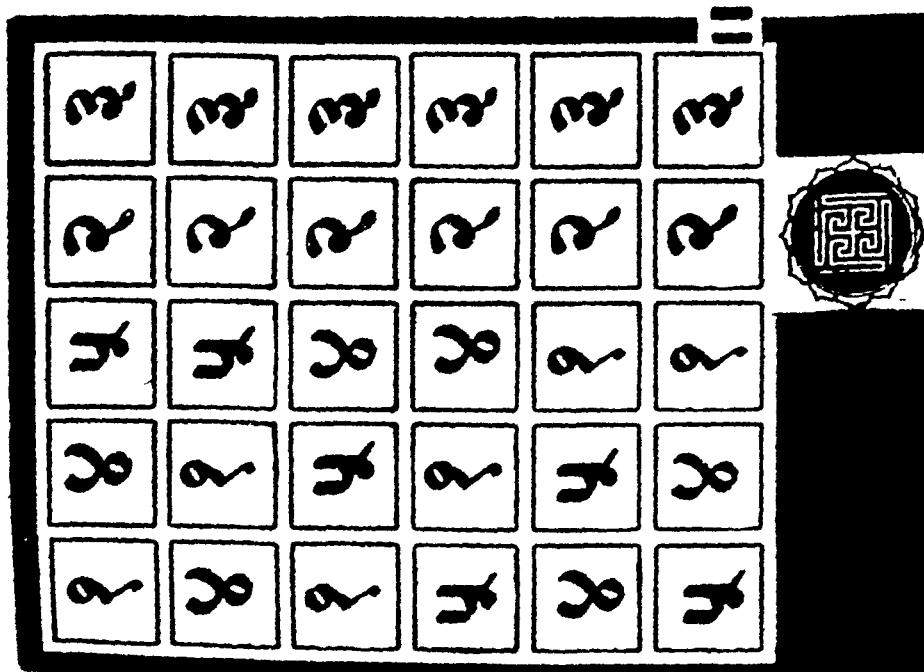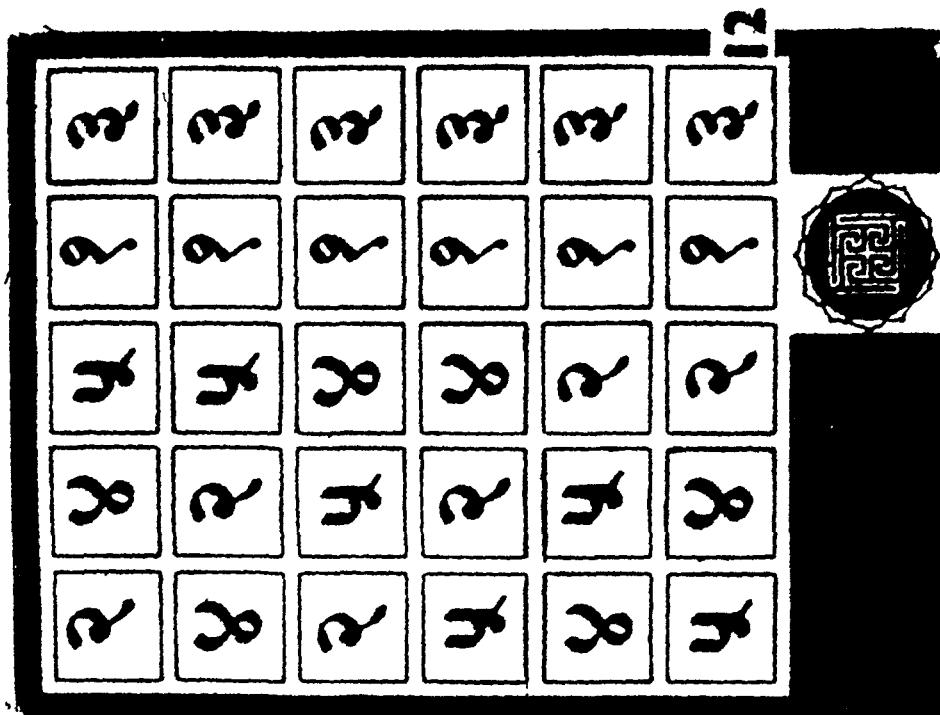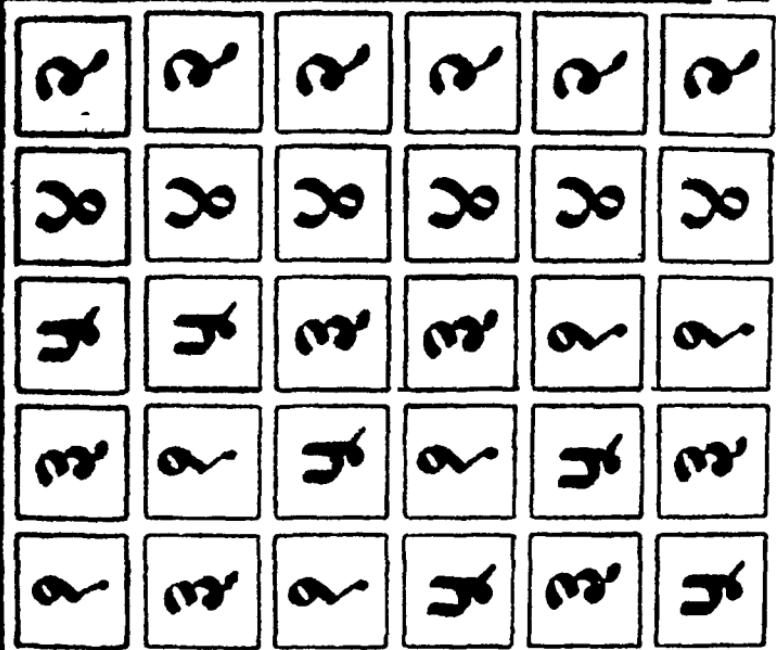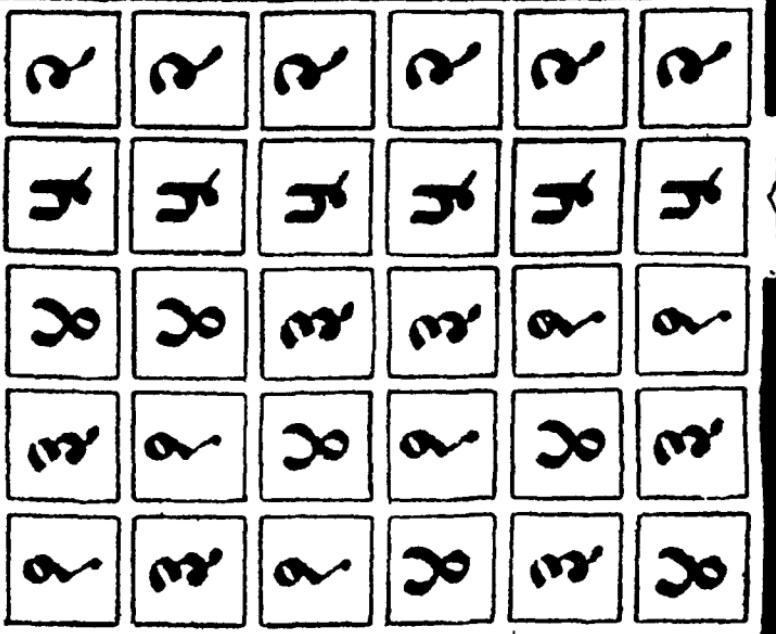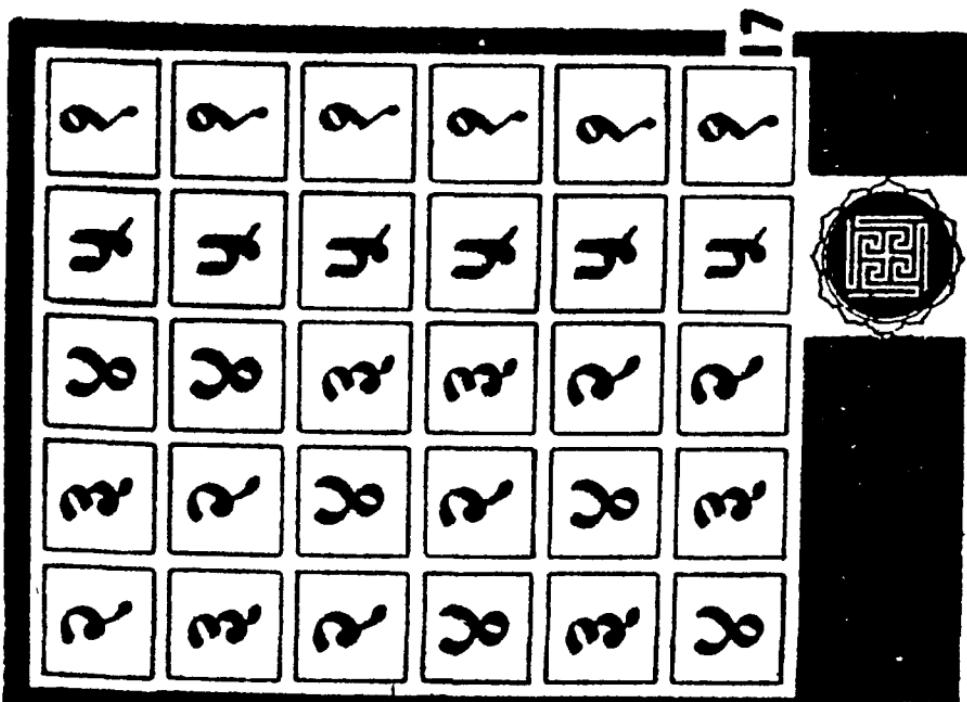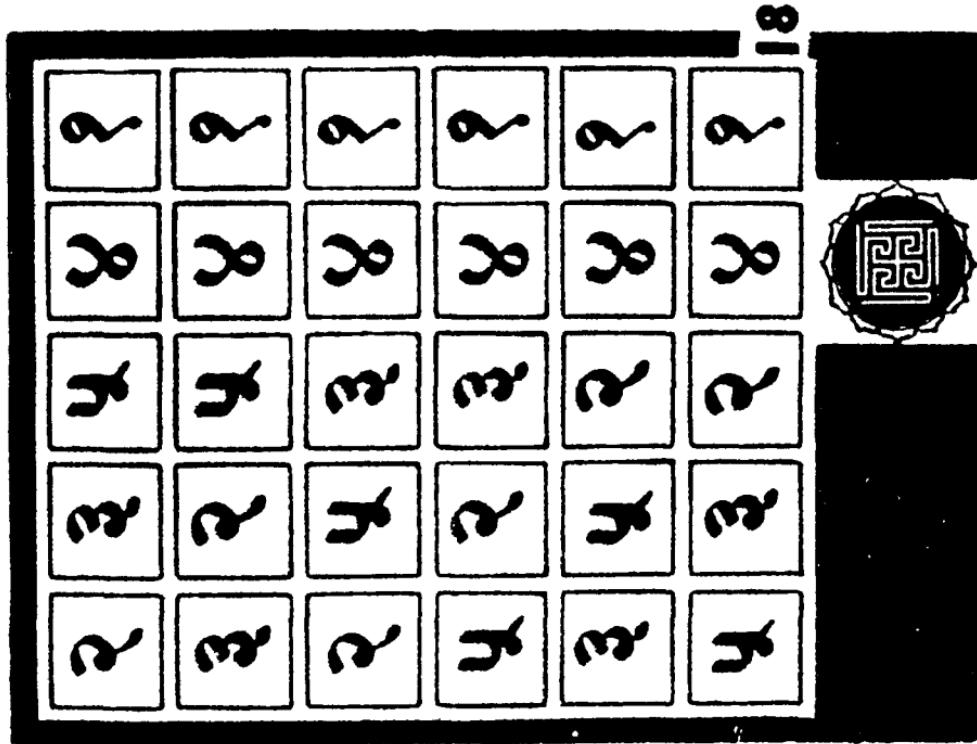
————

3

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

4

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

5

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

6

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

8

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

7

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

9

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

10

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

12

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

11

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

14

२	२	२	२	२	२
४	४	४	४	४	४
५	५	३	३	१	१
३	१	५	१	५	३
१	३	१	५	३	५

13

२	२	२	२	२	२
५	५	५	५	५	५
४	४	३	३	१	१
३	१	४	१	४	३
१	३	१	४	३	४

15

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

16

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

18

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

17

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

20

१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२
५	५	४	४	३	३
४	३	५	३	५	४
३	४	३	५	४	५

19

१	१	१	१	१	१
३	३	३	३	३	३
५	५	४	४	२	२
४	२	५	२	५	४
२	४	२	५	४	५

(१५०)

अस्वाध्याय के ३४ कारण

(क) आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय की काल मर्यादा

१. बड़ा तारा टूटे तो	.... एक पहर तक
२. उदय अस्त के समय लाल दिशा हो तो	... जब तक रहे
३. अकाल मे मेघ गर्जना हो तो	.... दो पहर तक
४. अकाल मे बिजली चमके तो	एक पहर तक
५. अकाल मे बिजली कडके तो	.... दो पहर तक
६. शुक्ल पक्ष की एकम् दूज व तीज की रातें	... एक पहर रात्रि तक
७. आकाश मे यक्ष का चिह्न हो तो	.... जब तक दिखाई दे
८. काली धूअर हो तो	.... जब तक रहे
९. सफेद धूअर हो तो	.... जब तक रहे
१०. आकाश मण्डल धूलि से आच्छादित हो तो	.... जब तक रहे

(ख) औदारिक एवं ग्रहण सम्बन्धी

११. तिर्यञ्च जीवो के हड्डी, रक्त एव मास ६० हाथ के भीतर हो तो	.... जब तक रहे
१२. मनुष्य के हड्डी, रक्त एवं मास १०० हाथ के भीतर हो तो	.... जब तक रहे
१३. मनुष्य की हड्डी, यदि जली या धुली न हो तो	.... १२ वर्ष तक
१४. अशुचि की दुर्गन्ध	... जब तक आए या दिखाई दे तब तक
१५. श्मशान भूमि	सो हाथ से कम दूर हो तो

१६. चन्द्र ग्रहण खण्ड अवस्था में	....	८ पहर तक
पूर्ण अवस्था में		१२ पहर तक
१७. सूर्य ग्रहण खण्ड अवस्था मे	....	१२ पहर तक
पूर्ण अवस्था में		१६ पहर तक
१८. राजा अथवा गणाधिपति का अवसान होने पर	....	जब तक उत्तराधिकारी घोषित न हो तब तक
१९. युद्ध स्थान के निकट	....	जब तक युद्ध चले तब तक
२०. उपाश्रय अथवा स्वाध्याय स्थान मे पंचेन्द्रिय का शव पड़ा होने पर	....	जब तक पड़ा रहे तब तक

(ग) अन्य

२१. आषाढ मास की पूर्णिमा	....	१ दिन रात
२२. भाद्रपद मास की पूर्णिमा	....	१ दिन रात
२३. आश्विन मास की पूर्णिमा	....	१ दिन रात
२४. कार्तिक मास की पूर्णिमा	....	१ दिन रात
२५ चैत्र मास की पूर्णिमा	....	१ दिन रात
२६ आषाढ़ पूर्णिमा के वाद की प्रतिपदा	....	१ दिन रात
२७. भाद्रपद पूर्णिमा के वाद की प्रतिपदा	....	१ दिन रात
२८. आश्विन पूर्णिमा के वाद की प्रतिपदा	....	१ दिन रात
२९. कार्तिक पूर्णिमा के वाद की प्रतिपदा	....	१ दिन रात
३०. चैत्र पूर्णिमा के वाद की प्रतिपदा	....	१ दिन रात
३१. प्रातः	....	१ मुहूर्त्त भर
३२. मध्याह्न	...	१ मुहूर्त्त भर
३३. संध्या	....	१ मुहूर्त्त भर
३४. अर्द्ध रात्रि	...	१ मुहूर्त्त भर

नोट.– (१) उपरोक्त अस्वाध्याय के ३४ कारणों के समय को छोड कर वाकी समय मे स्वाध्याय करना चाहिये। खुले मुंह नही वोलना चाहिये एव दीपक के उजाले मे नही वाचना चाहिये।

(२) मेघ गर्जनादि मे अकाल आर्द्रा नक्षत्र से पूर्व और स्वाति नक्षत्र से वाद का माना गया है।

---

(१५१)

शिवमस्तु सर्वजगत. परहित-निरता' भवन्तु भूतगणा. ।
दोषाः प्रयान्तु नाश, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥